अलंकार-मंजूषा १

ला० भगवानदीन

अलंकार-मंजूषा

अर्थात्

हिंदी-साहित्य की परीक्षाओं के परीक्षार्थियों के लिये

अलंकार-विषय का एक ग्रंथ

जिसमें

हिंदी-भाषा के अलंकारों की विशद

व्याख्या की गई है

—:※:—

लेखक

स्वर्गीय ला० भगवानदीन

—:※:—

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

—:o:—

नवीं बार २०००] सं० २००४ वि० [मूल्य २) रुपया

मिलने का पता

१—रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

२—बा० चन्द्रिका प्रसाद, मैनेजर

साहित्य भूषण कार्य्यालय,

बनारस सिटी

प्रथम संस्करण		१०००
द्वितीय संस्करण		१०००
तृतीय संस्करण सन् १९२३	ई०	१०००
चतुर्थ संस्करण सन् १९२५	ई०	१०००
पंचम संस्करण सन् १९२७	ई०	२०००
षष्ठ संस्करण सन् १९३२	ई०	१०००
सप्तम संस्करण सन् १९३३	ई०	१०००
अष्टम संस्करण सन् १९३७	ई०	२०००
नवम् संस्करण सन् १९४८	ई०	२०००

मुद्रक—

सदलराम जायसवाल,

राम प्रिंटिंग प्रेस, प्रयाग।

रामं

पुस्तक-सूची

—:०:—

अलंकार-सूची

—:o:—

वक्तव्य

हिंदी-काव्य का रसास्वादन करने के लिये अलंकारों का जानना बहुत ज़रूरी है। अनेक अलंकार-ग्रंथ मौजूद हैं; उनके होते हुए भी यह ग्रंथ हमने क्यों लिखा, इसका कारण यह है कि इस विषय के प्रायः समस्त ग्रंथ ऐसे देखे जाते हैं जिन्हें पढ़ाने में शिक्षकों को संकोच-भाव धारण करना पड़ता है, अर्थात् कोई गुरु अपने शिष्य को, कोई पिता अपने पुत्र को या कोई बड़ा भाई अपने छोटे भाई को निःसंकोच-भाव से नहीं पढ़ा सकता। युवती कन्याओं को वे ग्रंथ पढ़ाते हुए इतना संकोच हो सकता है कि उन्हें वे ग्रंथ आद्योपांत पढ़ाए ही नहीं जा सकते।

'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' ने कुछ परीक्षाएँ प्रचलित की हैं, जिनमें नवयुवक लड़के और नवयुवती कन्याएँ सम्मिलित होने लगीं हैं। हिंदी-काव्य के कुछ अच्छे ग्रंथ भी पाठ्य-पुस्तकों में रखे गए हैं। परंतु अलंकार-विषय समझे बिना काव्य को पूर्णतया समझ लेना दुरूह ही है, और यह विषय शिक्षक के समझाये बिना आ नहीं सकता। कोई गुरु अलंकार-विषय का कोई ग्रंथ शिष्य को निःसंकोच-भाव से पढ़ा नहीं सकता, यही कठिनता दूर करने के लिये हमने यह ग्रंथ लिखा है।

प्राचीन ग्रंथों की अपेक्षा इस ग्रंथ में नीचे लिखी विशेषताएँ हैं—

१—अलंकार की परिभाषा चुनकर अत्यंत स्पष्ट और सरल पद्यों में लिखी गई है।

२—पुनः जहाँ ज़रूरत जान पड़ी है, वहाँ गद्य में उसकी विशद व्याख्या कर दी गई है।

३—प्रत्येक अलंकार के कई एक उदाहरण दिए गए हैं।

४—उदाहरण प्राचीन काव्य से चुने गये हैं।

५—जहाँ तहाँ विषद टिप्पणियाँ और सूचनाएँ भी दी गई हैं।

६—अलंकारों की बारीकियाँ और भेद गद्य में समझाए गए हैं।

७—यह समस्त ग्रंथ कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को निःसंकोच-भाव से पढ़ा सकता है।

८—उर्दू, फ़ारसी तथा अँगरेज़ी भाषा के अलंकारों के साथ हिंदी-अलंकारों का मिलान भी दर्शाया गया है।

९—कई अलंकारों के विषय में प्राचीनों से मत-भेद और अपनी स्वतंत्र सम्मति भी लिखी गई है।

१०—कुछ अलंकारों के दोष भी लिखे गये हैं।

मनुष्य से भूल होती है। इस ग्रंथ में भी भूलें होंगी। सूचित किए जाने पर अगले संस्करण में भूलों का सुधार कर दिया जायगा।

विनीत—

भगवानदीन

प्राक्कथन

ईश्वर की कृपा तथा सर्व-काव्य-प्रेमियों की गुणग्राहकता से मुझे आज यह सुअवसर प्राप्त हुआ है कि इस ग्रंथ की सातवीं आवृत्ति कराने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिये मैं पाठकों को धन्यवाद देता हूँ।

इस पुस्तक में मैंने कुछ टाइपों का हेर-फेर कर दिया है, क्योंकि पहले टाइप बेढंगे तौर पर लगे हुए थे, जिससे पुस्तक कुछ भद्दी सी जँचती थी। जहाँ कहीं कुछ छापेखाने की अशुद्धियाँ ज्ञात हुई हैं, उसे भी ठीक करा दिया है। पुस्तक के साथ 'दीन' जी की संक्षिप्त जीवनी और 'मंजूषा' की आलोचना भी लगा दी है। जीवनी 'दीन' जी के प्रिय शिष्य पं० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र बी० ए०, साहित्य-रत्न ने लिखी है। इस पुस्तक में जो अशुद्धियाँ ठीक की गई हैं, इन्हीं के मतानुसार की गई हैं। इसके प्रूफ-संशोधन में भी इन्हीं से हमें सहायता मिली है। इस बार आवश्यकतानुसार इस पुस्तक में टिप्पणियाँ भी लगाई गई हैं। इस कार्य को भी उक्त मिश्रजी ने बड़े परिश्रम, प्रेम और निःस्वार्थ भाव से कर दिया है। हमें मिश्रजी से जो सहायता मिली है उसके लिए हम मिश्रजी को धन्यवाद देते हैं। जो अशुद्धियाँ अब भी रह गई होंगी, उन्हें अगले संस्करण में ठीक कर दिया जावेगा। इस पुस्तक में छपते-छपते कुछ फार्मों के ओकार और अनुस्वार टूट गए हैं, जिसे पाठकगण स्वयं सुधार लें।

काशी
गुरुपूर्णिमा, सं० १९९० वि०

विनीत—
चन्द्रिकाप्रसाद
मैनेजर—साहित्य-भूषण-कार्यालय,
बनारस सिटी

संपादकीय

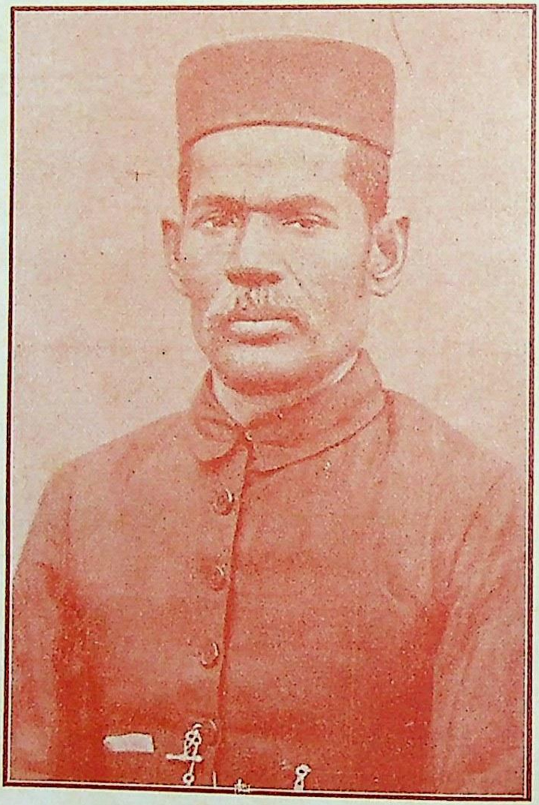
'मंजूषा' का चौथा संस्करण प्रकाशित होने पर लालाजी ने यह विचार प्रकट किया कि हम 'मंजूषा' के अलंकारों का वर्गीकरण करना चाहते हैं। साथ ही उदाहरणों का क्रम ठीक करके इसमें उपयुक्त टिप्पणियाँ भी लगा देने की इच्छा है। उस समय 'मंजूषा' की एक-एक प्रति इसी विचार से उन्होंने अपने पाँच शिष्यों को दी थी। अगले संस्करण का समय आने पर लालाजी ने वर्गीकरण की चर्चा फिर छेड़ी। उस समय मैंने अपनी प्रति में जो संकेत लिखे थे, उन्हीं के आधार पर एक सूची बनाकर उनकी सेवा में समर्पित की। पर शीघ्रता के कारण पुस्तक छप गई, वर्गीकरण वाला विचार अगले संस्करण के लिये रोक रखा गया।

हिंदी-साहित्य के दुर्भाग्य से सं० १९८७ में लालाजी का काशीवास हो गया, इसलिये वर्गीकरण की योजना जहाँ-की-तहाँ पड़ी रह गई। इधर 'मंजूषा' का छठा संस्करण निकलने पर मुझसे उसकी भूमिका लिखने का अनुरोध किया गया। उस समय मैंने अपने लेख में टिप्पणियों के अभाव की चर्चा की थी। इस संस्करण के समय उक्त कार्य गुरुवाइनजी ने मेरे ही गले मढ़ दिया। जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार करके किया! मूल-पुस्तक के अलंकारों का वर्गीकरण करने का मुझे क्या अधिकार! इसलिये केवल उदाहरणों, सूचनाओं तथा विवेचनों को क्रम से लगाकर कठिन शब्दों की पाद-टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। चित्रालंकार के पद्यों में 'कामधेनु' टिप्पणियाँ इसलिये नहीं दी गईं कि उनके अर्थ में बड़ी खींच-तान करनी पड़ती; और उनका अर्थ न जानने से विद्यार्थियों की कोई हानि भी नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ पद्यों के पाठ ठीक न जँचने के कारण लालाजी द्वारा संपादित मूल-ग्रंथों के आधार पर परिवर्तित कर दिए गए हैं।

समय-समय पर मेरी अनुपस्थिति में कुछ फार्मों के छपने से कहीं-कहीं कुछ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। पाठक उन्हें सुधार लें। यदि मेरे इस प्रयत्न के कारण विद्यार्थियों को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

गुरु पूर्णिमा, १९९० वि०
ब्रह्मनाल, काशी

विश्वनाथप्रसाद मिश्र



लाला भगवानदीन

National Press, Allahabad.

'दीन' जी और 'मंजूषा'

(जीवनी)

लाला भगवादीन का जन्म बड़ी तपस्या के उपरांत हुआ था। इनकी माता ने इनके ऐसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति के लिये भगवान् भुवन्-भास्कर का बड़ा कठोर व्रत किया था। अधिक अवस्था हो जाने पर भी कोई संतति न होने से इनके पिता मुंशी कालिकाप्रसादजी बड़े चिंतित रहा करते थे, पर एक साधु के आदेशानुसार उन्होंने अपनी पत्नी को रविवार के दिन उपवास करने और सूर्य को अखंड दीपज्योति दिखलाने की आज्ञा दी। ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप में वे उदयोन्मुख सूर्य की ओर प्रज्ज्वलित घृत-दीप लेकर खड़ी हो जाया करतीं, और ज्यों-ज्यों सूर्य भगवान् आकाश में पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते जाते वे भी उनका ही अनुगमन करके उनके सम्मुख दीप-ज्योति दिखाती रहतीं। संध्या-समय पूजनोपचार के पश्चात् वे उसी स्थान पर रात्रि में शयन भी करतीं। दो रविवारों तक तो उन्होंने यह घोर व्रत बड़ी सहिष्णुता के साथ किया, पर तीसरे रविवार को वे चक्कर आ जाने से गिर पड़ीं।

इस कठिन तपोव्रत का फल यह हुआ कि संवत् १६२३ विक्रमीय की श्रावण शुक्ला छठ को उन्होंने पुत्र-रत्न प्रसव किया। भगवान् (सूर्य) का दिया हुआ समझकर पुत्र का नाम 'भगवानदीन' रखा गया।

'दीन' जी के पूर्वपुरुष श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ थे और उन्हें नबाबी के ज़माने में 'बख्शी' की उपाधि मिली थी। वे लोग पहले रायबरेली में रहा करते थे, किंतु सन्

सत्तावनवाले विद्रोह के समय उन लोगों ने अपना निवासस्थान छोड़ दिया और रामपूर में जा बसे। वहाँ से वे फतेहपुर शहर से कोई दस कोस की दूरी पर बहुवा नामक कस्बे के पास 'बरवट' नाम के एक छोटे से गाँव में बस गए। इसी गाँव में 'दीन' जी का जन्म हुआ था।

'दीन' जी के पिता साधारण स्थिति के मनुष्य थे, इस कारण उन्होंने घर पर ही लड़के को पढ़ाना आरंभ किया। कायस्थ होने के कारण 'बिस्मिल्लाह' उर्दू और फ़ारसी से ही हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनकी स्नेहमयी माता का गोलोकवास हो गया। जीविका-वश इनके पिता बुँदेलखंड में रहा करते थे; इसलिये वे पुत्र को भी अपने साथ लेते गए। ये अपने फूफा के यहाँ फ़ारसी पढ़ने लगे, पर चार वर्ष पश्चात् ये फिर घर भेज दिए गए। वहाँ दो वर्ष तक मदरसे में पढ़ते रहे और घर पर अपने दादा से हिंदी भी सीखते रहे। सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फतेहपुर के हाई स्कूल में भरती किए गए। मिडिल पास करने के बाद इनका विवाह भी कर दिया गया था। सात वर्ष में एंट्रेंस पास कर लेने पर ये प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला में कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजे गए। इनके पिता ने इनकी देख-रेख का भार अपने घनिष्ठ मित्र 'पुत्तू सोनार' को सौंप दिया था, जो बड़ी सावधानी और विश्वास-पात्रता के साथ 'दीन' जी को शिक्षा दिलाते थे, इनका पहला विवाह तक 'पुत्तू बापू' ने ही कराया था, पिताजी दूर रहने के कारण शीघ्रता में वहाँ पहुँच ही नहीं पाए।

'पुत्तू बापू' ने 'दीन' जी को अपनी गृहस्थी का भार सँभालने की आज्ञा दी। तदनुसार ये पढ़ते भी थे और

गृहस्थी सँभालने का प्रयत्न भी करते रहते थे। इसी से एफ़. ए. के आगे 'दीन' जी की पढ़ाई न चल सकी। अंत में ये 'कायस्थ-पाठशाला' में अध्यापक हो गए। डेढ़ साल के अनंतर ये प्रयाग के ही 'गर्ल्स-हाई-स्कूल' में फ़ारसी की शिक्षा देने लगे। चित्त न लगने के कारण छः मास पश्चात् ये छतरपुर (बुँदेलखंड) में 'महाराज-हाई-स्कूल' के सेकेंड मास्टर होकर चले गए। वहाँ जाने पर इनकी स्त्री का देहांत हो गया। इनका दूसरा विवाह क़स्बा शादियाबाद (गाज़ीपुर) में मुंशी परमेश्वर दयाल साहब की पुत्री से हुआ और इन्हें अपनी दूसरी स्त्री को साथ ही रखना पड़ा। इनकी दूसरी पत्नी प्रसिद्ध कवियित्री 'बुँदेला बाला' थीं। 'दीन' जी ने स्वयं इन्हें कई ग्रंथ पढ़ाए थे, जिनमें 'विहारी-सतसई' मुख्य थी।

लाला जी के दादा बड़े राम-भक्त और रामायण-प्रेमी थे। वे इनसे नित्य रामायण का पाठ सुना करते थे। 'दीन' जी का रामायण के प्रति तभी से अनुराग हो गया था। इन्होंने रामायण के सुंदरकांड की शिक्षा अपने पूज्य पिताजी से ही पाई थी। वे भी परम भगत थे। यद्यपि हिंदी का ज्ञान इन्हें पर्याप्त हो गया था, पर अभी पूरी विद्वत्ता प्रस्फुटित नहीं हुई थी। इनका अनुराग कविता की ओर लड़कपन से ही था, पर उसका परिमार्जन आवश्यक था। छतरपुर में इन्होंने अपने मित्रों के अनुरोध से कविता संबंधी दो सभायें स्थापित कीं—पहली 'कवि-समाज' और दूसरी 'काव्य-लता'। साथ ही 'भारती-भवन' नामक एक पुस्तकालय भी स्थापित किया। ये तीनों स्थान काव्यचर्चा के अड्डे थे। उक्त दोनों सभाओं में नौसिखुए कवि कविता करके सुनाया करते थे और पं० गंगाधर व्यास उनका

संस्कार कर दिया करते थे। प्रायः समस्या-पूर्तियाँ पढ़ी जाती थीं। व्यासजी से इन्होंने रामायण और अलंकारों का भी अध्ययन किया था। उर्दू में 'दीन' जी पहले से ही कविता किया करते थे। अब हिंदी में भी इनकी-काव्य-प्रतिभा चमक उठी। इन्होंने कई छोटी-मोटी काव्य-पुस्तकें लिख डालीं, जिनमें से 'भक्ति-भवानी' और रामचरणांक-माला विशेष उल्लेखनीय हैं। पहली पुस्तक पर इन्हें कलकत्ते की 'बड़ाबाज़ार लाइब्रेरी' ने एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया था।

कुछ दिनों बाद छतरपुर से भी 'दीन' जी का मन उचट गया। वस्तुतः ये एक विस्तृत साहित्य-क्षेत्र में कार्य करने के अभिलाषी थे, अतः ये काशी चले आए। यहाँ ये 'सेंट्रल-हिंदू-कालेज' में फ़ारसी के शिक्षक हो गए और 'नागरी प्रचारिणी-सभा' में प्राचीन काव्य-ग्रंथों का संपादन भी करने लगे। इसी समय इन्होंने प्रसिद्ध वीर-काव्य 'वीर-पंचरत्न' के लिखने में हाथ लगाया था, जिसके लिखने का अनुरोध बुँदेला बाला ने किया। कुछ दिनों के पश्चात् जब नागरी-प्रचारिणी-सभा 'हिंदी-शब्द-सागर' बनवाने लगी, तब ये भी उसके उपसंपादक चुने गए। बहुत-कुछ काम हो चुकने पर इन्होंने अपनी स्पष्टवादिता के कारण संपादन से हाथ खींच लिया। इस कार्य से छूटते ही 'हिंदू-विश्वविद्यालय' में हिंदी के लेकचरर हो गए, जहाँ ये अंत तक रहे।

काशी में इन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं को प्रोत्साहन देने के लिये 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' की स्थापना की। कुछ दिनों के लिये ये गया भी गए थे, और वहाँ की प्रसिद्ध पत्रिका, 'लक्ष्मी' का संपादन भी किया था। अंत में ये काशी में स्थायी रूप से रहने लगे और यहीं आपका

'काशीवास' भी हुआ। अंतिम दिनों में ये अपने गाँव 'बरवट' गए हुए थे। वहाँ से आपके बाएँ अंग में एक प्रकार का ज़हरबाद (Erysipelas) हो गया था। बाईस दिनों की विकट वेदना के बाद सं० १९८७ के श्रावण मास की शुक्ला तृतीया को आपने अपने 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' में शरीर छोड़ा।

लालाजी हिंदी के बड़े भारी काव्य मर्मज्ञ थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। ये कवि, लेखक, समालोचक, संपादक, अध्यापक और व्याख्याता भी थे। इन्होंने कितने ही ग्रंथ रचे हैं। केशवदास के दुर्बोध ग्रंथों की सरल टीकाएँ लिखी हैं और रीति ग्रंथ बनाये हैं। इनके ग्रंथों में से प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम ये हैं—'वीर-पंचरत्न', 'नवीन-बीन', 'केशव-कौमुदी', 'प्रिया-प्रकाश', 'विहारी-बोधिनी'. तुलसीदास के ग्रन्थों की टीका, 'सूक्ति-सरोवर', 'सूर-पंचरत्न', 'केशव-पंचरत्न' 'अलंकार-मंजूषा' 'व्यंगार्थ-मंजूषा' आदि। इनके संपादित ग्रंथ तो बीसियों हैं। फुटकर कविताएँ इन्होंने बहुत लिखी हैं, जिनमें से थोड़ी बहुत समय-समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। इधर ये 'मित्रादर्श' और 'महाराष्ट्र देश की वीरांगनाएँ' नामक दो बड़े काव्य लिख रहे थे, पर वे अब अधूरे पड़े हैं।

लालाजी बड़े सीधे-सादे, उद्योगशील, सत्यवादी, निष्कपट, स्पष्टवादी, सच्चरित्र और स्वस्थ शरीर के पुरुष थे। वृद्धावस्था में भी 'दीन' जो जो इतना अधिक साहित्यिक कार्य कर रहे थे, इसका मुख्य कारण इनका स्वास्थ्य था। अपने जीवन भर में लंबी बीमारी इन्हें दो ही बार भोगनी पड़ी। एक बार इन्हें क्षयरोग हो गया था, जो बहुत दिनों में अच्छा हुआ और दूसरी बार ज़हरबाद हुआ, जो शरीर के साथ ही गया। लालाजी के कोई संतति नहीं है। काशी आने पर बालाजी का

शरीरांत हो जाने पर लालाजी ने उन्हीं की बहन से तीसरी शादी की, जिन्हें ये विधवा करके छोड़ गए। बाला जी से एक पुत्र हुआ था, जो दस मास बाद मर गया। पहली शादी जो केसवाही, जि० हमीरपुर में हुई थी, उससे एक लड़की भी थी, जो व्याही जाने के कुछ दिनों बाद मर गई।

(आलोचना)

शैली अथवा रीति का विवेचन करने के लिये गद्य की विशेष आवश्यकता हुआ करती है। संस्कृत-साहित्य में पहले सभी विषय पद्य में ही रहा करते थे, इसलिये उनके निमित्त सूत्रों का आविष्कार किया गया। यही कारण था कि उनकी व्याख्या के लिये कारिका और वृत्ति की आवश्यकता पड़ी। यद्यपि संस्कृत साहित्य में विवेचना के उपयुक्त गद्य का विकास नहीं हो पाया था, पर विवेचना उसमें बहुत विस्तार से हुई है। रीतिशास्त्र के ग्रंथों में जिस तर्कसिद्ध शैली का आश्रय लिया गया था, उसने इस विषय में बहुत पूर्णता ला दी थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत-रीतिकारों के संबंध में एक बात विशेष रूप से और उल्लेखनीय है। प्रत्येक रीतिकार केवल शास्त्रीय विवेचना में ही लगता था, स्वय काव्य निर्माण में वह अपना हाथ नहीं डालता था। रीति या शैली की पद्धतियों का निरूपण पूर्ववर्ती कवियों या लेखकों के ग्रंथों के ही आधार पर होता है, वे ही उसके लिये प्रमाण होते हैं। इसलिये रीतिकार वर्ग का उनसे सर्वथा भिन्न रहना ही श्रेयस्कर होता है। हिंदी में उक्त दोनों ही बातें नहीं थीं। न तो गद्य में उनका विवेचन ही होता था और न लक्ष्य-ग्रंथकार एवं लक्षण-ग्रंथकारों के वर्ग ही अलग-अलग थे। इसका परिणाम यह हुआ कि

रीति-शास्त्र का विवेचन हिंदी में भली-भाँति हुआ ही नहीं। केवल संस्कृत-साहित्य के कुछ ग्रंथों का आधार लेकर पद्य में लक्षणों का एक छोटा-मोटा ढाँचा खड़ा कर दिया जाता था। गद्य में कुछ न लिखने का कारण यह था कि प्राचीन काल में हिंदी के गद्य का विकास ही नहीं हुआ था, वह पद्य के ही योग्य था, गद्य के योग्य नहीं। इसलिये ज्यों ही गद्य ने कुछ विकसित रूप धारण किया, उसमें लोग रीति के विवेचन की प्रवृत्ति दिखलाने लगे।

अलंकार लिखने अथवा बोलने की एक विशेष शैली है। इसके संबंध में भी वही बात समझनी चाहिये जो हम ऊपर लिख आये हैं। कुछ विद्वान अलंकारिक अथवा रसाभ्यासी ऐसे अवश्य दिखाई देते हैं जिन्होंने विवेचन पर ध्यान दिया था; जैसे—श्रीपति सूरति, मिश्र, कुलपति आदि पर गद्य का उपयुक्त साधन न होने से वे बेचारे भी असफल हो रहे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के बाद गद्य ने ऐसा रूप धारण कर लिया था कि हिंदी में भी भली-भाँति शास्त्रीय विवेचन हो सके, इसलिये अलंकार आदि के जो ग्रंथ इधर बने उनमें गद्य का भी भरपूर आश्रय लिया गया। सबसे पहला ग्रंथ 'जसवंत-जसोभूषण' है। इसमें संस्कृत की तर्कात्मक शैली का आधार इतना अधिक लिया गया है कि उसे अच्छा अलंकाराभ्यासी ही समझ सकता है, सब नहीं। इसके पश्चात् सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'अलंकार-प्रकाश, और बाबू जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का 'काव्य-प्रभाकर' प्रकाशित हुआ। 'अलंकार-प्रकाश' आचार्य मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' के आधार पर बना है। यह ग्रंथ है तो अवश्य विवेचनात्मक, पर इसमें संस्कृत के पारि-

भाषिक शब्दों और जटिल शैली का ऐसा अनुकरण किया गया है कि यह भी दुरूह हो गया है। गद्य में रीति-शास्त्र के लिखने का जो उद्देश्य है, वह इससे भी पूरा नहीं हुआ। 'भानु' जी ने अलंकारों के कई उदाहरण दिए हैं और विषय को सरल बनाने का उद्योग भी किया है, पर विवेचन की कमी के कारण और अलंकारों का व्यापक अभ्यास न होने से इसमें भी बहुत कुछ अपूर्णता रह गई है। कहने का तात्पर्य यह कि किसी नवसिखुए के लिये अलंकार का ज्ञान प्राप्त कराने में ये तीनों ही ग्रंथ बहुत-कुछ असमर्थ थे। यही नहीं इन ग्रंथों में एक बड़ी भारी त्रुटि यह थी कि उदाहरण शृंगारिक भी रखे गए थे। कहीं-कहीं तो घोर शृंगार भी आ गया था। स्वाध्याय में तो यह बात नहीं खटक सकती थी, पर पाठशालाओं और विद्यालयों में पढ़ाते समय इस त्रुटि पर बहुत-से लोगों का ध्यान जाया करता था।

इस बात पर सब से प्रथम 'दीन' जी की दृष्टि गई। उन्होंने विद्यार्थियों के योग्य 'अलंकार-मंजूषा' नामक प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ में यों तो कितनी विशेषताएँ हैं, जिनका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपने 'वक्तव्य' में किया है, किंतु उनमें से दो-तीन विशेषताएँ ऐसी हैं जिन्होंने ग्रंथ का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ा दिया है। एक तो इसमें एक भी शृंगारी पद्य नहीं रखा गया है। दूसरे इसमें उदाहरण इतने अधिक दिए गए हैं कि विषय को हृदयंगम करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं रह जाती। साथ-ही-साथ उन उदाहरणों का लक्षणों के साथ भली-भाँति समन्वय भी दिखाया गया है। लालाजी ने दो मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नता भी भली-भाँति समझाई है। कहने का तात्पर्य यह

है कि पुस्तक को सर्वांगीण सुंदर, सुबोध और समयोपयुक्त बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। 'दीन' जी ने संस्कृत-साहित्य की वादात्मक पद्धति नहीं ग्रहण की है, क्योंकि ऐसा करने से विषय विद्यार्थियों के लिये बहुत जटिल हो जाता; पर यथास्थान नये-पुराने आचार्यों के मतों पर प्रकाश अवश्य डाला है। कई स्थानों पर नई खोज भी की गई है; जैसे—स्मरण, दीपक आदि में। फिर भी संस्कृत-शास्त्र का अच्छा अध्ययन न होने के कारण दो-एक स्थानों पर इन्होंने भ्रम-वश कुछ-का-कुछ लिख दिया है। जैसे, श्लेष के दो भेद (शब्द और अर्थ) आपने इस प्रकार किए हैं—'जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है (शब्द-श्लेष) और जहाँ कवि का तात्पर्य कई अर्थों से होता है (अर्थ-श्लेष)।' अलंकाराभ्यासी जानते हैं कि वस्तुतः बात ऐसा नहीं है। इसी प्रकार क्रम (यथासंख्य) के 'भग्न-क्रम' और 'विपरीत' नामक भेद हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि हिंदी में विद्यार्थियों के योग्य ऐसी उत्तम अलंकार की पुस्तक आज तक नहीं निकली, यद्यपि अलंकार के ग्रंथ नित्य ही निकल रहे हैं। अलंकारों में प्रवेश पाने के लिये 'मंजूषा' अद्वितीय पुस्तक है।

'अलंकार-मंजूषा' में एक विशेषता और है। अलंकारों के उदाहरण बहुत ही साफ़, और प्रचलित रखे गए हैं। 'तुलसी' का 'रामचरित-मानस' साहित्य-संसार और जन-समाज दोनों में बहुत प्रचलित है। सभी लोगों की जिह्वा पर उसके अधिकांश छंद चढ़े रहते हैं। 'अलंकार-मंजूषा' में बहुत कम ऐसे अलंकार हैं जिनमें 'रामचरित-मानस' के उदाहरण न हों। इसके अतिरिक्त शेष उदाहरण भी प्रचलित ग्रंथों के ही हैं। इसका कारण यह कि 'दीन' जी ने 'मंजूषा' का निर्माण केवल अलंकार-ग्रंथों

के सहारे पर ही नहीं कर दिया है। वे स्वयं उस विषय के भीतर पैठे हैं और उसे व्यावहारिक क्षेत्र में भी लाए हैं। बहुत दिनों तक विद्यार्थियों को अलंकार पढ़ाने और उसका क्रियात्मक अभ्यास कर लेने पर इस ग्रंथ का प्रणयन किया गया है। 'दीन' जी बड़े अच्छे अलंकाराभ्यासी थे, उनका अलंकार-ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वे हिंदी के इस नये युग के एक आचार्य थे। इधर आए दिन अलंकाराचार्यों की उत्पत्ति हो रही है। पर हमारा विश्वास है कि किसी को भी बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस वर्षों तक विद्यार्थियों को अलंकाराभ्यास कराने का अवसर न मिला होगा। सब में केवल 'पुस्तक-पांडित्य' ही देखने को मिलेगा। 'दीन' जी को अलंकारों का इतना अनुराग था कि उन्होंने अपनी प्रत्येक टीका में पद्यों का अलंकार-निर्णय भी किया है। लालाजी में 'पुस्तक-पांडित्य' नहीं, वरन् 'प्रयोग-पांडित्य' था। यही कारण है कि उनकी पुस्तक अधिक व्यावहारिक है। 'मंजूषा' का प्रचार विद्यार्थि-वर्ग में बहुत अधिक है। इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं, इसी से अनुमान किया जा सकता है कि लोग इसका कितना आदर और व्यवहार करते हैं।

ब्रह्मनाल, काशी
गुरु-पूर्णिमा १६८८ वि० } **विश्वनाथप्रसाद मिश्र**

श्रीराम

अलंकार-मंजूषा

(पहला पटल)

—:*:—

अलंकार

किसी वाक्य के वर्णन करने का 'चमत्कारिक' ढंग 'अलंकार' कहलाता है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि "जिस सामग्री से किसी वाक्य में रोचकता वा चमत्कार आ जाय वह सामग्री 'अलकार' कहलाती है।"

जैसे गहने पहनने से किसी व्यक्ति का शरीर कुछ अधिक रोचक देख पड़ता है, वैसे ही अलंकार से वाक्य की रोचकता बढ़ ज़ाती है। 'अलंकार' काव्य का एक आवश्यक अंग है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि बिना अलंकार के कविता बन ही नहीं सकती, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अलंकार से कविता की मनोहरता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

मुख्य अलंकार तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) जहाँ शब्दों में चमत्कार पाया जाय, वहाँ शब्दालंकार कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उन शब्दों को बदल कर उनके स्थान में उनके पर्यायवाची शब्द रख दिए जायँ, तो वह चमत्कार न रहेगा।

(२) जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय, वहाँ 'अर्थालंकार' माना जाता है। इसका तात्पर्य यह कि वह चमत्कार

निकाल कर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वह वाक्य बिल्कुल सादा और अरोचक हो जायगा। जैसे कहना यह है कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है", तो इस वाक्य को सीधे यों न कहकर कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है," यों कहें कि (क) अमुक व्यक्ति दूसरा बृहस्पति है, (ख) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से लज्जित होकर बृहस्पति पीले हो गए हैं, (ग) अमुक व्यक्ति बृहस्पति के समान है, (घ) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से हारकर बृहस्पति दिन में अपना मुँह नहीं दिखलाते, (ङ) अमुक व्यक्ति मनुष्य नहीं बृहस्पति है इत्यादि; तो इस प्रकार के कथनों में कुछ विशेष चमत्कार आ जाता है। इसी चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं। यह अलंकार अर्थ पर निर्भर रहता है, इसलिये इसके शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदल दिए जा सकते हैं।

(३) ऊपर कहे हुए अलंकारों में से किसी प्रकार के एक से अधिक अलंकारों के सम्मेलन को 'उभयालंकार' कहते हैं, परन्तु उसमें नियम यह है कि जिस अलंकार की मुख्यता समझी जायगी वही अलंकार मान लिया जायगा।

शब्दालंकार

नीचे लिखे हुए मुख्य १० शब्दालंकार सर्वमान्य हैं :—

(१) अनुप्रास (२) चित्र (३) पुनरुक्ति-प्रकाश (४) पुनरुक्तिवदाभास (५) प्रहेलिका (६) भाषा-समक (७) यमक (८) वक्रोक्ति (९) वीप्सा और (१०) श्लेष।

(१) अनुप्रास

दो०—व्यंजन सम वरु स्वर असम, अनुप्रासऽलंकार।
छेक, बृत्ति, श्रुति, लाट अरु, अंत्य पाँच बिस्तार॥

विवरण—जहाँ व्यंजनों की समानता हो, चाहे उनके स्वर मिलें या न मिलें, उसे 'अनुप्रास-अलंकार' कहते हैं। इसके ५ भेद हैं—(१) छेक (२) वृत्त (३) श्रुति (४) लाट (५) अंत्य।

सूचना—फ़ारसी अरबी, तथा उर्दू में अनुप्रास और यमक-अलंकारों को "तजनीस" कहते हैं। हिंदी की तरह इन भाषाओं में भी इन अलंकारों के अनेक भेद हैं।

(१) छेकानुप्रास

दो०—बर्न अनेक कि एक की आवृत्ति एकै बार।
सो छेकानुप्रास है, आदि अंत निरधार॥

विवरण—जहाँ एक अक्षर की वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो चाहे अंत में। जैसे—

१—दोहा—राधा के बर-बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।
दाख[1] दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'बर' और 'बैन' में 'ब' की, 'चीनी' और 'चकित' में 'च' की, 'दाख' और 'दुखी' में 'द' की, 'मिसरी' और 'मुरी' में 'म' की, तथा 'सुधा' और 'सकुचाय' में 'स' की आवृत्ति शब्दों के आदि में हुई है।

२—दोहा—जन-रंजन भंजन-दनुज,[2] मनुज-रूप सुर भूप।
विश्वबदर-इव[3] धृत-उदर[4], जोवत सोवत सूप॥

इस उदाहरण के 'रंजन' और 'भंजन' में 'दनुज' और 'मनुज' में, 'बदर' और 'उदर' में, 'जोवत'[5] और 'सोवत' में अंत के दो-दो अक्षरों की आवृत्ति एक बार है। 'रूप' और 'भूप' में अंत में एक अक्षर की आवृत्ति है। 'विश्व और 'बदर' में, 'सोवत' और 'सूप' में आदि में एक एक अक्षर की आवृत्ति है।

---

१ मुनक्का। २ राक्षस। ३ बेर के समान। ४ पेट। ५ देखता है।

३—कवित्त—बाँधे द्वार का करी[१], चतुर चित्तकाक[२] री,
सो उम्मिर बृथा करी न राम की कथा करी।
पाप को पिनाक[३] री, न जानै नाक[४] नाकरी,[५]
सुहारिल[६] की नाकरी[७], निरन्तर ही ना करी॥
ऐसी सूमता करी, न कोऊ समता करी,
सु 'बेनी' कविता करी, प्रकास तासु ताकरी[८]।
देव-अरचा[९] करी, न ज्ञान-चरचा करी,[१०]
न दीन पै दया करी न बाप की गया करी॥

विवरण—इसमें 'का करी' और 'काक री' में तीन अक्षरों की आवृत्ति, 'बृथा' और 'कथा' में 'थ' की आवृत्ति, 'सूमता' और 'समता' में तीन अक्षरों की आवृत्ति, 'अरचा' और 'चरचा' में दो की आवृत्ति, 'दया' और 'गया' में एक अक्षर की आवृत्ति अंत में है। 'दीन' और 'दया' में 'द' की आवृत्ति आदि में है।

(२) वृत्यनुप्रास

दो०—वर्न अनेक कि एक की, जहँ सरि कैयो बार।
सो है वृत्यनुप्रास जो, परै वृत्ति-अनुसार॥

विवरण—छेकानुप्रास की तरह आदि वा अंत में एक वर्ण की वा अनेक वर्णों की समता वृत्तियों के अनुकूल कई बार पड़े, उसे वृत्यानुप्रास कहेंगे।

सूचना—इस अलंकार को समझने के लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि हिन्दी कविता में वृत्तियाँ तीन हैं—

---

१ हाथी। २ कौवे के समान। ३ पुराना धनुष। ४ इज्ज़त। ५ स्वर्ग। ६ एक पक्षी जो अपने चंगुल में लकड़ी लिए रहता है। ७ लकड़ी। ८ ताको, देखो। ९ पूजा। १० गया में पितृ श्राद्ध करना।

(१) उपनागरिका। (२) परुषा और (३) कोमला। इन्हीं तीनों के अन्य नाम क्रम से वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी हैं।

(१) माधुर्यगुणसूचक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण जिस कविता में हों उसे 'उपनागरिका वृत्ति' कहते हैं।

(२) टवर्ग, द्वित्त वर्ण, रेफ और श, ष इत्यादि वर्ण और लंबे समास तथा संयुक्त वर्ण जिसमें अधिक हों उसे परुषावृत्ति कहते हैं।

(३) य, र, ल, व, स, ह और छोटे समास वा समास रहित शब्द जिसमें अधिक हों उसे 'कोमलावृत्ति' कहते हैं।

शृंगार, करुणा और हास्य-रस की कविता उपनागरिका में, रौद्र, वीर आर भयानकरस की कविता परुषा में और शांत, अद्भुत और वीभत्स-रस की कविता कोमलावृत्ति में अच्छी लगती है।

(उपनागरिकावृत्ति के अनुकूल)

१—धर्म धुरीन[1] धीर नय-नागर[2]। सत्य सनेह सीलसुखसागर॥
विरति[3] बिबेक विनय विज्ञाना। बोध जथारथ[4] बेद पुराना॥

२—पद—रघुनंद आनन्द-कन्द कोसल[5]-चन्द दसरथ-नन्दनं।

३—कवित्त—भनत 'मुरार' देस-देसन में कीर्ति गाई,
ऐसी चपलाई कहौ छाई है कवन में।
नट में न नारि में न नय[6] में न नैनन में
मृग में न मारुत में मीन में न मन में॥

---

१ धर्म की धुरा धारण करने वाले, धर्मिष्ठ। २ नीति-निपुण। ३ वैराग्य। ४ यथार्थ, ठीक। ५ अयोध्या का राज्य। ६ नीति।

४—पद—सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।

५—क०—देव-वंदिनी के निमि[१] बंस-चंदिनी के जुग,
नीके पद-कंज, मिथिलेस-नंदनी के हैं।

६—दो०—लोपे[२] कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल॥

(परुषावृत्ति के अनुकूल)

१—दो०—बक्र[३] बक्र[४] करि पुच्छ करि, रुष्ट-ऋच्छ[५] कपि-गुच्छ[६]।
सुभट-ठट्ट[७] घन-घट्ट[८]-सम, मर्दहिं रच्छन[९] तुच्छ॥

२—क०—बारि[१०] टारि डारौं कुंभकर्नहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादैं आजु यौं बल-अनन्त[११] हौं।
कहै 'पदमाकर' त्रिकूटहू[१२] को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन[१३] को अन्त हौं॥
अच्छहिं[१४] निरच्छ[१५] कपि रुच्छ[१६] ह्वै उचारौं इमि,
तोम तिच्छ तुच्छन[१७] को कछुवै न गंत[१८] हौं।
जारि डारौं लंकहिं उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावनैं तो मैं हनुमंत हौं॥

३—छं०—मुंड कटत कहुँ रुंड नटत[१९] कहुँ सुंड पटत घन[२०]।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसतसुख-वृद्धि रसत[२१] मन॥

---

१ जनक के पूर्वपुरुष। २ पूजा के लुप्त होने पर। ३ वक्त्र, मुख। ४ टेढ़ा। ५ क्रुद्ध-भालु। ६ समूह। ७ झुंड। ८ बादलों की घटा। ९ राक्षस। १० जल। ११ अत्यंत बलवाला। १२ लंका के तीन ऊँचे गिरि-शिखर (सुवेला, लंका निकुंभिला) १३ निशाचर। १४ अक्षयकुमार। १५ निःसहाय। १६ रुष्ट। १७ तीक्ष्ण और तुच्छों का समूह। १८ गिनता हूँ। १९ नाचते हैं। २० बहुत से। २१ फैलती है, सरसती है।

भूत फिरत करि बूत[1] भिरत सुर-दूत घिरत[2] तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत[3] धुनि-डंडि[4] मचत तहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति, 'भूषन' तेज कियो अटल।
सिवराज साहि-सुव खग्ग-बल;[5] दलि अडोल बहलोल-दल[6]॥

४—छं०—क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं रुद्ध[7] मुरत भट।
खग्ग बजत अरि बग्ग[8] तजत सिर पग्ग[9] सजत चट॥
ढुक्कि[10] फिरत मद झुक्कि[11] भिरत करि कुक्कि[12] गिरत गनि।
रंग-रकत[13] हर-संग छकत चतुरंग थकत भनि॥
इमि करि संगर[14] अति ही विषम, 'भूषन' सुजस कियो अचल।
सिवराज साहि-सुव खग्ग-बल, दलि अडोल बहलोल-दल॥

५—छं०—खग काक कंक[15] सृगाल। कटकटहिं कंठिन कराल॥

(कोमला-वृत्ति के अनुकूल)

१—चौ०—सत्य-सनेह सील-सुख-सागर।

२—दो०—स्यामल-गौर किसोर बर,[16] सुन्दर सुखमा-ऐन[17]।

३—क०—ख्याल ही की खोल[18] में अखिल[19] ख्याल खेलि-खेलि,
गाफिल ह्वै भूलौ दुख-दोष की खुस्याली तैं।
लाख-लाख भांति अभिलाष लखे लाख अरु,
अलख[20] लख्यौ न लखी लालन[21] की लाली तैं।
हरि-हर 'देव' प्रभु सों न पल पाली प्रीति,

१ बल, ज़ोर। २ घिरते हैं, जुटते हैं। ३ गणों से युक्त होकर ४ द्वंद्व युद्ध। ५ खड्ग के जोर से। ६ सेना। ७ लड़ने में लगे हुए। ८ घोड़े की डोर (बाग) ९ पगड़ी। १० छिपकर। ११ मदमस्त होकर। १२ कूक, शब्द। १३ रक्त, खून। १४ युद्ध। १५ गृद्ध। १६ श्रेष्ठ। १७ शोभा के घर। १८ चोगा। १९ संपर्ण। २० ब्रह्म। २१ रत्न।

दै-दै करताली न रिझायौ बनमाली[1] तैं।
झूठी झिलमिल[2] की झलक ही मैं भूलौ जल-
मल की पखाल[3] खल खाली[4] खाल[5] पाली तैं॥

४—क०—बावन से रावन से रामजू सों खेलि-खेलि,
खलनि की खालनि खिलौना ज्यों खिलाइगे।
काटें काल-व्याल ऐसे, बली बलभद्र-ऐसे,
बलि ऐसे बालि से बबूला[6]-से बिलाइगे॥

इन उदाहरणों में र, ख और ल की अनेक आवृत्तियाँ हैं।

५—दो०—जप-माला छापा-तिलक, सरै न[7] एकौ काम।
मन कांचै नांचै वृथा, सांचै रांचै[8] राम।

सूचना—छेक और वृत्ति-अनुप्रासों को अँगरेज़ी में 'अलिटरेशन' (Alliteration) कहते हैं। नीचे लिखा हुआ उदाहरण शेक्सपियर ने लार्ड ऊलजी को लक्ष्य करके बहुत अच्छा लिखा है—

Begot by butcher, by bishop bred.
How high His Highness holds his haughty head[9].

(३) श्रुत्यनुप्रास

जहाँ तालु-कंठादि की, व्यंजन-समता होय।
सोई श्रुत्यनुप्रास है, कहत सुघर कवि-लोय॥

विवरण—जहाँ तालु, कंठ आदि स्थानों से उच्चरित

१ श्रीकृष्ण। २ यमक। ३ मशक। ४ केवल। ५ चमड़ा। ६ बुल-बुल। ७ नहीं होता। ८ अनुरक्त होता है। ९ कसाई से उत्पन्न और पुरोहित के पाले हुए श्रीमान् अपना क्रोध से भरा दिमाग़ इतना ऊँचा कैसे किये हुए हैं।

होनेवाले व्यँजनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की समता हो, उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं। स्मरण रहना चाहिए कि—

(१) अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (:) का उच्चारण कंठ से होता है।

(२) इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ और श का उच्चारण तालु से होता है।

(३) ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष का मूर्द्धा से होता है।

(३) ऌ, त, थ, द, ध, न, ल और स का दाँतों से होता है।

(५) उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म का उच्चारण ओठों से होता है।

(६) ए, ऐ का उच्चारण कंठ और तालु से होता है।

(७) ओ और औ का उच्चारण कंठ और ओंठ से।

(८) व का दांत और ओंठ से।

(९) पंचम वर्ण और अनुस्वार का नासिका से।

सूचना—इस विचार से जब कविता में ऐसे शब्द रखे जाते हैं जो एक स्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से बने हों, तो उस कविता में एक प्रकार की धारा-प्रवाहिनी शक्ति और मधुरता आ जाती है और उसका सुनना कानों को प्रिय लगता है। इसके विरुद्ध टवर्गवाले शब्द कानों में खटकते हैं।

'तुलसिदास' सीदत[१] निसि-दिन देखत तुम्हारि निठुराई।

इसमें अधिकतर दंत्य **अक्षर** आये हैं इससे यह पद बहुत मीठा जान पड़ता है। और—

पर क्या न विषयोत्कृष्टता[२] करती विचारोत्कृष्टता[३] ?

१ दुःख पाता है। २ विषय की उत्तमता। ३ विचार की उत्तमता।

इस रचना में शब्दों का संगठन वैसा नहीं है, इसलिये कानों को कटु जान पड़ता है। इसी तरह और भी समझ लो। 'तुलसी' और 'पद्माकर' की कविता में यह गुण अधिक है।

(४) लाटानुप्रास

दो०—सब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहिं भेद।
सो लाटानुप्रास है, भाषत सुकवि अखेद ॥

विवरण—(पहले कहे हुए अनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं, पर लाटानुप्रास शब्द का अनुप्रास है। शब्द और उसका अर्थ वही रहे, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय, उसे 'लाटानुप्रास' कहते हैं। यह अनुप्रास 'लाट'[1] देशवाले कवियों का निकाला हुआ है। इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

उदाहरण—

१—दो०—तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निसदिन हरि-गान।
तीरथ-व्रत-साधन कहा, बिन निसदिन हरि-गान ॥

यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति है केवल तात्पर्य में भेद है; अर्थात् जो मनुष्य रात-दिन हरि-यश-गान करता रहे तो उसके लिये तीर्थ, व्रत और साधन आवश्यक नहीं हैं, जिस तीर्थ, व्रत और साधन में रात-दिन हरि-यश-गान का विधान न हो वह तीर्थ, व्रत और साधन व्यर्थ है।

२—दो० राम हृदय जाके बसैं, विपति सुमंगल ताहि।
राम हृदय जाके नहीं, बिपति सुमंगल ताहि ॥

जिसके हृदय में राम बसते हैं, उसके लिये विपत्ति भी

१ गुजरात में भडौंच और अहमदाबाद नगर जहाँ हैं वहीं यह देश था।

सुमंगल हो जाती है और जिसके हृदय में राम नहीं हैं उसके लिये सुमंगल भी विपत्ति ही है।

३—दो०—औरन के जांचे[1] कहा, नहिं जाँच्यो सिवराज।
औरन के जांचे कहा जो जाँच्यो सिवराज॥

४—दो०—मुधा[2] तीर्थ को भ्रमन है, रहैं हरी चित जासु।
मुधा तीर्थ को भ्रमन है, रहैं न हरि चित जासु॥

कभी-कभी कोई एक शब्द अन्य शब्दों के साथ समास द्वारा मिल जाता है; जैसे—

४—क०—तुरमती[3] तहखाने गीदर गुसुलखाने,[4]
सूकर सिलहखाने[5] कूकत करीस[6] हैं॥
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,[7]
पाढ़े[8] पीलखाने औ करंजखाने[9] कीस हैं॥
'भूषन' सिवाजी गाजी[10] खग्ग सों खपाए खल,
खाने-खाने खलन के खेरे[11] भए खीस[12] हैं॥
खड़गी[13] खजाने खरगोस खिलवतखाने,[14]
खीसैं खोले[15] खसखाने खाँसत खबीस[16] हैं॥

इस कवित्त में 'भूषण' ने सब प्रकार के अनुप्रास एकत्र दिखलाए हैं। तहखाने, गुसुलखाने, सिलहखाने, हरमखाने, सुतुरखाने, पीलखाने, करंजखाने, खिलवतखाने, खसखाने

१ याचना करने से, माँगने से। २ व्यर्थ। ३ तुर्की तुरमता, बाज की तरह एक शिकारी चिड़िया। ४ स्नान करने का घर। ५ हथियार रखने का स्थान। ६ श्रेष्ठ हाथियों की तरह कूँ कूँ करते हैं। ७ ऊँटों के रहने का बाड़ा। ८ एक प्रकार का हरिण। ९ मुर्गों के रहने की जगह। १० धर्मयुद्ध में लड़नेवाला। ११ छोटा गाँव। १२ नष्ट हो गए। १३ गैंड़ा। १४ एकांत स्थान। १५ दाँत निकाले। १६ दुष्ट जीव।

इत्यादि शब्दों में 'खाने' शब्द का अर्थ सब जगह एक ही है, परन्तु भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ समास होने से उन शब्दों के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाने से लाटानुप्रास है।

तुरमती तहखाने, गीदर गुसुलखाने, सूकर सिलहखाने, हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने, करंज खाने कीस हैं, खरगोस खिलवतखाने, इत्यादि शब्दों में छेकानुप्रास है।

अन्तिम दोनों चरणों में 'ख' की आवृत्ति अनेक बार होने से वृत्त्यनुप्रास।

(५) अंत्यानुप्रास

दो०—व्यंजन स्वरयुत एक-से, जो तुकांत में होंहिं।
सो अंत्यानुप्रास है, अरु तुकांतहू ओहि॥

विवरण—प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। चारों चरणों के अंत्याक्षर 'तुकांत' कहलाते हैं। इसी तुकांत को अंत्यानुप्रास कहते हैं। भाषा-काव्य में तुकांत बहुत अच्छा लगता है। इसी को फ़ारसी तथा उर्दू में 'क़ाफ़िया' कहते हैं। भाषा-काव्य में छः प्रकार के तुकांत हो सकते हैं—

(१) सर्वांत्य–जैसे किसी सवैया वा कवित्त (मनहरण) के चारों तुकांत एक से होते हैं।

(२) समांत्य-विषमांत्य–अर्थात् पहले और तीसरे चरण का और दूसरे और चौथे चरण का तुकांत एक हो; जैसे—

(क) जेहि सुमिरत सिधि होय, गन-नायक करि-बर-बदन[1]।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन॥

[1] श्रेष्ठ हाथी के से मुखवाले।

(ख) मूक होहिं वाचालु,[१] पंगु चढ़ै गिरिवर गहन[२]।
जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलि-मल-दहन[३]॥

(ग) कुन्द-इन्दु सम[४] देह, उमा-रमन[५] करुना-अयन[६]।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन-मयन[७]॥

(३) समांत्य—जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरण का तुकांत समान हो, जैसे दोहे का होता है।

(क) एक छत्र एक मुकुट मनि, सब बर्नन पर जोउ[८]।
तुलसी रघुबर-नाम के, बरन[९] बिराजत दोउ॥

(ख) या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे[१०] स्याम-रंग[११] त्यों-त्यों उज्वल होय॥

(४) विषमांत्य—जिसमें पहले चरण और तीसरे चरण का तुकांत एक सा हो; जैसे—

(क) सो०—सुनि केवल के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना-ऐन, चितै जानकी लखन तन[१२]॥

(ख) धरनि धरहु मन-धीर, कह बिरंचि[१३] हरि-पद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहिं[१४] दारुण विपति॥

(५) सम विषमांत्य—जिसमें पहले और दूसरे का और तीसरे और चौथे चरणों का तुकांत एक सा हो; जैसे—

(क) चौपाई—

गुनहु[१५] लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू।
टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू॥

---

१ बहुत बोलने वाला। २ दुर्गम। ३ पाप का मल जलाने वाले। ४ कुंद पुष्प और चंद्रमा के समान (गौर वर्ण)। ५ पार्वती के पति। ६ दया के घर। ७ कामदेव को नष्ट करने वाले। ८ देखो। ९ अक्षर। १० भीगे, अनुरक्त हो। ११ काला रंग श्रीकृष्ण का स्वरूप। १२ ओर। १३ ब्रह्मा। १४ काटते हैं, नष्ट करते हैं। १५ मानते हैं, समझते हैं।

(ख) हरिगीतिका छंद—

पद-कमल धोइ चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं।
मोहिं राम राउरि आन[1] दसरथ-सपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहिं लखन पै, जब लगि न पांव पखारिहौं।
तब लगि न 'तुलसीदास' नाथ, कृपालु पार उतारिहौं॥

(६) भिन्नांत्य—भिन्न-तुकांत वा बेतुकी जिसमें चारो चरणों में भिन्न-भिन्न तुकांत हों। इसे अँगरेज़ी में 'ब्लैंक-वर्स' (Blank verse) कहते हैं। हिंदी के प्राचीन कवियों ने ऐसी कविता नहीं लिखी, हाल में कुछ लोग लिखने लगे हैं; जैसे—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में लिखी है।

सूचना—भिन्न-तुकांत कविता के लिये कुछ वर्णिक छन्द ही उपयुक्त जान पड़ते हैं, जैसे—शार्दूलविक्रीड़ित, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, इंद्रवज्रा, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका इत्यादि। मात्रिक छन्दों में भिन्न-तुकांत कदापि अच्छा नहीं लगता।

(२) चित्र

दो०—चित्र बरन-विन्यास है, कमलादिक आकार।
गोरखधंधा-सम निरस, त्यागत सुकवि विचार॥

विवरण—छन्द-रचना में ऐसे वर्ण लाना जिनके द्वारा विशेष-विशेष विन्यास से विशेष चित्र बन जाएँ।

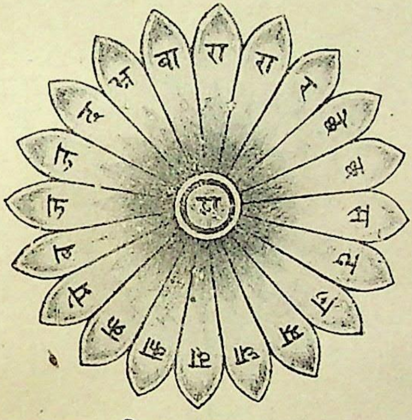
(१) चित्रकाव्य—इसमें 'अलंकारत्व' नहीं है केवल कवि की चतुराई और परिश्रम का परिचय मिलता है। इस काव्य-द्वारा कमल, छत्र, चक्र, चँवर, खड्ग, तखत, दंड, रथ, ध्वजा, हाथी, घोड़ा, मनुष्य, हंस, दर्पण, वृत्त इत्यादि के चित्र बन

१ आपकी शपथ।

सकते हैं। विस्तार-भय से सबके उदाहरण न देकर केवल कुछ ही देते हैं।

कमल-बंध—(दोहा)

राम-राम-रम छेम-छम, सम दम जम श्रम-धाम।
दाम काम क्रम-प्रेम बम, जम-जम दम भ्रम-बाम ॥❀



चित्र-संख्या—१ †

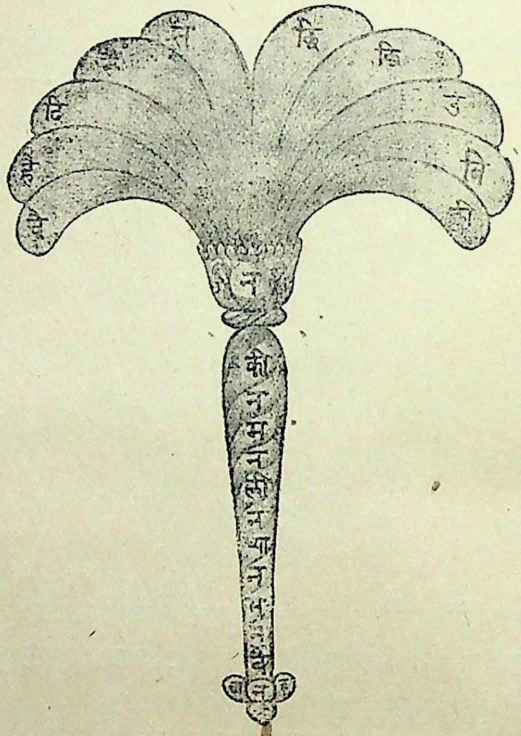
इस दोहे के प्रत्येक दल में दस शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर 'म' है, इसलिये चामर, चक्र, दर्पण इत्यादि कई एक अन्य चित्र भी बन सकते हैं।

❀ राम-राम रटना क्षेम करने में समर्थ है, सम, दम और यम (नियम) तो श्रम के घर हैं। धन कमाना और कर्म से प्रेम करना व्यर्थ है। यम तो यम (काल) है और दम तो (झूठा) भ्रम और टेढ़ा है।

† 'कमल-बंध' में प्रत्येक दल के छोर में एक एक अक्षर रखा जाता है और कोश (मध्य) में भी एक अक्षर रहता है। प्रत्येक अक्षर को कोश के अक्षर के साथ मिला कर क्रम से पढ़ते हैं (देखो चित्र)।—संपादक।

चामर-बंध—(दोहा)

नैन-बान-हन बैन भन, ध्यान-लीन मन कीन।
चैन हैन दिन-रैन तन, छिन-छिन उन बिन छीन ॥*



चित्र-संख्या—२ †

* (उस विरहिणी को) नयन रूपी बाणों ने हनन किया है, वह (अंड बंड) बातें बका करती है। उसने मन को (नायक के) ध्यान में लीन कर दिया है। उसके शरीर को रातोदिन चैन नहीं मिलता। उसके बिना यह क्षण-क्षण क्षीण हो रही है।

† चामरबंध दंड के नीचे से आरंभ होता है। नोक के अक्षर को

ऊपर लिखे हुए दोहे की भाँति इस दोहे से भी कमल का चित्र बन सकता है। इन्हीं दोनों दोहों से दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, हलकुंडी, चामर, चौकी, कपाट इत्यादि बहुत से चित्र बन सकते हैं।

इस दोहे में भी कमल-बंध की सी रचना है। प्रत्येक दल में दस शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर एक ही 'न' है। इससे भी कमल-बंध बन सकता है (चामर-चित्र देखो)।

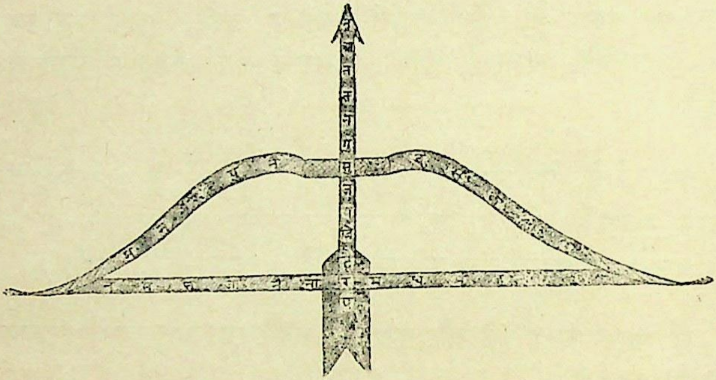
सूचना—कमल बंध और दर्पण-बंध को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत मुदौवर' कहते हैं।

(धनुष-बंध—दोहा)

परम-धर्म हरि हेरहीं, 'केसव' सुनै पुरान।
मन-मन जानै नार द्वै, जिय जसु गुनत न आन ॥*

मुष्टि के आधार के मध्य में स्थित अक्षर से मिला कर पढ़िए। फिर बाईं ओर के अक्षर को मध्य के अक्षर से मिलाइये और तत्पश्चात् दाहिनी ओर के अक्षर को उससे मिलाकर पढ़िये। इसके अनंतर क्रम से दंड के अक्षरों को ऊपर की ओर पढ़ते जाइए। शीर्ष स्थान में पहुँचकर बालों के छोर में स्थित अक्षरों को शीर्ष में स्थित अक्षर से मिला कर बाईं ओर से क्रम पूर्वक पढ़िए।

* परमधर्म-स्वरूप भगवान् को खोजे और पुराणों को सुने। मन-ही-मन दो नारियों (स्त्री और माया) को जान ले और हृदय से अन्य के यश का गान न करे।



चित्र-संख्या—३*

इस चित्र में बाण दो जगह धनुष से मिलता हुआ गया है। कटनेवाले स्थानों के अक्षरों को दो बार पढ़ो।

इसी चित्रालंकार के अंतर्गत प्राचीन कवियों ने अनेक भेद माने हैं, जिनमें मुख्य-मुख्य ये हैं।

(१) निरोष्ठ—जिसके पढ़ने में परस्पर ओंठ न छू जायँ; जैसे—

(कवित्त) लोक-लीक[1] नीकी लाज लीलत हैं[2] नंदलाल,
लोचन ललित लोक-लीला के निकेत[3] हैं।

---

* पहले बाण की फोंक के अक्षर को प्रत्यंचा के बीचोबीच स्थित अक्षर से मिलाइए और प्रत्यंचा में दाहिनी से होकर वक्राकार दंड के अक्षरों को बाईं ओर की कोटि तक पढ़ जाइये। फिर प्रत्यंचा में आकर मध्य में स्थित अक्षर से बाण में ऊपर की ओर बढ़िए और अनी तक पढ़ते चले जाइए।

१ लोक-मर्यादा। २ लज्जा छुड़ा देते हैं। ३ घर।

सौंहनि को सोच ना सँकोच लोकालोकनि[1] को,
देत सुख, ताको सखी दूनो दुख देत हैं ॥
'केसोदास' कान्हर[2] कनेर ही के कोरक-से,[3]
अंगरंग राते अंग अंतरंग सेत हैं[4] ।
देखि-देखि हरि की हरनता[5] हरिननैनी,
देखत ही देखो नहीं हियो हरि लेत हैं[6] ॥

ऐसी कविता में प, फ, ब, भ, म इत्यादि अक्षर न लाने चाहिए।

सूचना—इसको फ़ारसी तथा उर्दू में 'बसेउसशफ़्तैन' कहते हैं।

इससे ठीक विरुद्ध ऐसी कविता भी हो सकती है, जिसके प्रत्येक शब्द के पढ़ने में ओंठ से ओंठ मिलें। ऐसी रचना 'सोष्ठ' कहलाएगी।

(२) अमत्त—जिसमें मात्राएँ न हों; जैसे—

कवित्त—जग जगमगत भगत-जन-रस-बस,[7]
भव-भय-हर कर,[8] करत अचर चर।
कनक-बसन[9] तन असन-अनल-बड़,[10]
बट-दल-बसन सजल-थल थलकर[11] ॥

---

१ बदनामी। २ कृष्ण। ३ कनेर के फूल की तरह। ४ अंग के रंग से, बाहरी दिखावे से तो लाल (अनुरक्त) हैं और भीतर से उज्ज्वल (अनुराग-रहित) हैं। ५ मनोहरता। ६ देखो क्या ये देखते ही हृदय नहीं हर लेते? ७ भक्तों की भक्ति के वश होकर संसार में जगमगाता है (अवतार लेता है)। ८ हाथ सांसारिक भय को हरता है। ९ अर्थात् पीतांबर। १० दावानल खा जानेवाले (श्रीकृष्ण एक बार गोपों के लिये दावानल पी गए थे)। ११ जिसने मारकंडेय के लिये स्थल सजल किया और स्वयं वट के पत्ते में बास किया।

अजर-अमर-अज-बरद[1] चरन-धर,[2]
परम-धरम-गन-बरन सरन पर[3] ।
अमल-कमल-बर-बदन, सदन-जस,[4]
हरन-मदन-मद[5] सदन-कदन-हर ॥

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी तथा उर्दू में 'मुकत्ता' कहते हैं ।

(४) अंतर्लापिका—

दो—उत्तर आवै अंत में, प्रस्न जहाँ हाँ होय ।
सोई अंतर्लापिका, कहत सुकबि सब कोय ॥

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न के अंतर्गत ही हो, उसे 'अंतर्लापिका' कहते हैं; जैसे—

१—सो०—भूषित का हरि अंग ?, कोह भरे का तिय करै ?
काते होय अनंग ?, को मराल-हित ? 'मानसर' ॥

यहाँ-चार प्रश्न हैं—हरि के अंग को कौन भूषित करता है ? उत्तर—'मा'=लक्ष्मी । क्रोधित होकर स्त्री क्या करती है ? उत्तर—'मान' । काम किससे पैदा होता है ? उत्तर—'मानस'= मन । हंस का हितू कौन है ? उत्तर—'मानसर' । इसलिये 'मानसर' इसका उत्तर है ।

२—दो०—कौन जाति सीता सती ? दयो कौन को तात ।
कौन ग्रंथ बरन्यो हरी ? 'रामायन' अवदात[6] ॥

---

१ ब्रह्मा और महादेव जिसके चरण को धरते हैं । २ परम धर्म का वरण करनेवाले (ब्राह्मणों) के लिये जो शरण्य है । ३ यश के घर । ४ अपने सौंदर्य से काम का मद हरनेवाले । ५ काम के नाश को हरनेवाले, काम को प्रद्युम्न रूप से पुनः उत्पन्न करनेवाले (श्रीकृष्ण) ६ सुंदर ।

सती सीताजी किस जाति की स्त्री थीं? इसका उत्तर है—'रामा' (जो सबके मन को अपने में रमा ले)। उनके पिता ने किसको दिया था? उत्तर है—'रामाय' (राम को)। कौन ग्रंथ में उनका हरण वर्णन किया गया है? उत्तर है—'रामायण'। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में एक-एक अक्षर बढ़ता गया है।

(५) बहिर्लापिका—

दो०—बाहर से उत्तर कढ़ै बहिर्लापिका सोय।

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्नांतर्गत न होकर बाहर से निकले उसे 'बहिर्लापिका' कहते हैं, यथा—

कवित्त—भाषैं काह सज्जन को[१] ? कौन संभु-बाहन है[२] ?,
काको सुख होत[३] ? काकी माल सिव धारो है[४]।
कहा गज-बंधन छबीले[५] ? दृग काके अति[६] ?,
कौन हर-पुत्र[७] ? सीप-सुत को सुप्यारो है[८]॥
सोभा को सुनाम का है[९] ? कृस्न नख धारो कहा[१०] ?,
सिंधु सों मिलत कौन[११] ? काह अनियारो है[१२]।
उत्तर के बर्नन में आदि-अंत छोड़ दीजै,
मध्य लीजै सो हिये मनोरथ हमारो है॥

सूचना—'अंतर्लापिका' और 'बहिर्लापिका' के तीन-तीन भेद हैं:—(१) आद्याक्षरी, (२) मध्याक्षरी और (३) अंत्याक्षरी। कवि जैसा चाहे वैसा लिखे।

---

१ सयाने। २ बरद। ३ सुकृति। ४ कपाल। ५ साँकल। ६ हरिणी। ७ गनेश। ८ मुकता। ९ पानिप। १० पहाड़। ११ सुरिता। १२ नयन। इन सब शब्दों के मध्याक्षर लेने से जो उत्तर निकलता है, वह छंद के अंतर्गत नहीं है, अतः बहिर्लापिका है।

(६) लोमविलोम—

सूधो उलटो बाँचिए, औरै-औरै अर्थ।
ऐसी रचना करि सकै, जो कवि महा समर्थ॥

विवरण—सीधा पढ़े तो और अर्थ, उलटा पढ़े तो और अर्थ होता है। ऐसी रचना कोई समर्थ कवि ही कर सकता है।

सूचना—ऐसी रचना 'भिखारीदास' और 'केशवदास' ने की है, परंतु उसका अर्थ बहुत खींच-खाँच कर लगाना पड़ता है, इससे यहाँ नहीं लिखते। इसको फ़ारसी तथा उर्दू में 'सनअ़त अक्स' कहते हैं।

(७) गतागत—

सीधो उलटो बाँचिए, एकै अर्थ प्रमान।
कहत गतागत ताहि, कबि 'केसवदास' सुजान॥

विवरण—सीधा पढ़ै चाहे उलटा, अर्थ वही रहेगा। इस रचना की 'केशव' ने केवल एक ही सवैया कही है। अर्थ-कठिनता के कारण उसे न लिखकर केवल दो-चार शब्दों के उदाहरण देते हैं; जैसे—

तख़त, दरद, करक, सहस, कसक, कनक, विकटकवि, नवजीवन।

सूचना—फ़ारसी तथा उर्दू में इसको 'मक़बूल मुस्तवी' कहते हैं।

(८) कामधेनु—

ऐसी रचना जिससे अनेक छंद बन सकें; यथा—

मोरपखा	बनमाल	बिराजत	बेनु बजै	गुन भेव	सुपर्सन
१	२	३	४	५	६
संगसखा	नँदलाल	यश्राजत	मोद सजै	यगसेव	तुकर्सन
७	८	९	१०	११	१२
दृद्धि चखा	करि खयाल	हिलाजत	पावतजै	अतितेव	तुहंर्सन
१३	१४	१५	१६	१७	१८
ध्यान रखा	छबिजाल	हिछाजत	स्वांतरजै	बलदेव	सुदर्सन
१९	२०	२१	२२	२३	२४

सूचना—इस सवैया में २४ टुकड़े हैं। जहाँ से चाहो छः टुकड़ों का एक पद बनाकर पढ़ो। इसी तरह चारों पद कह लो, तो २४ छंद बन जावेंगे।

साजत हैं	सिधिपाय	इहाँसबि	मादरता	सुचिबेष	प्रनैवर
१	२	३	४	५	६
आजत हैं	रिधिराय	छजेछबि	हेतरता	बलदेव	सुधाधर
७	८	९	१०	११	१२
छाजत हैं	बरभाय	भनै कवि	सुष्टुमता	सुखदेस	गुनाकर
१३	१४	१५	१६	१७	१८
राजत हैं	यसछाय	यथारबि	रुद्रपता	पनरेस	कृपाधर
१९	२०	२१	२२	२३	२४

सूचना—उपर्युक्त रीति से पढ़ने से इसके भी २४ छंद बन सकेंगे।

(६) दृष्टिकूटक—

दृष्टिकूटक शब्द का अर्थ है, "दृष्टि को छलनेवाला" शब्दों की ऐसी रचना जिसका अर्थ केवल देखने मात्र से न भासे 'दृष्टिकूटक' कहलाती है।

ऐसी रचना शब्दों ही पर निर्भर है, अतः इसकी गणना शब्दालंकारों ही में होनी चाहिए। इसमें अर्थ-कठिनता अत्यधिक रहती है, इसलिए कवि लोग ऐसी कविता की गणना अधम-काव्य में करते हैं, परन्तु विचार करने से उसके शब्दों में अलंकारिता अवश्य पाई जाती है। अतः उसे अलंकार मानना ही चाहिए। भक्तिशिरोमणि 'सूरदास' ने इस अलंकार से अच्छा काम लिया है और इसी अलंकार में साहित्य-लहरी नामक एक ग्रंथ ही रच डाला है। कौन कह सकता है कि सूर-कृत इस ग्रंथ के पदों में अलंकारिता नहीं है। यथाः—

१—दो०—मेष रासि तें पाँच लौं, गने कढ़ै जो नाम[१]।
ता भच्छन[२] द्वादस गए, आए नहिं घनस्याम॥
—(मास)

२—दो०—अहिबल्ली-रिपु[३] की सुता,[४] ताके पति को हार[५]।
ता अरि-पति की भामिनी,[६] सदा बसै तुव द्वार॥
—(लक्ष्मी)

३—पद—कहत किन परदेशी की बात।
मंदिर-अरध[७] अवधि हरि बदि गए[८] हरि-अहार[९] चलि जात॥

१ सिंह। २ भोजन (मांस)। ३ नागबेलि का शत्रु (हिम) ४ उसकी लड़की (पार्वती)। ५ उसके पति (महादेव) की माला (सर्प)। ६ उसके शत्रु (गरुड़) के स्वामी (विष्णु) की स्त्री (लक्ष्मी)। ७ घर का आधा भाग पखाच या पक्खा (पक्ष, १५ दिन)। ८ कह गए। ९ सिंह का भोजन (मांस=महीना)।

अजया-सख[1] अनुसारत[2] नाहीं कैसे कै दिवस सिरात[3] ।
ससि-रिपु[4] वरषभानु-रिपु[5] जुग-सम हर-रिपु[6] किए फिरैं घात ॥
मघ-पंचम[7] लै गए स्याम घन ताते जिय अकुलात ।
बेद नखत ग्रह जोरि अरध करि[8] को बरजै हम खात ।
सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीजत[9] पछितात ॥

(३) पुनरुक्ति-प्रकाश

दो०——एक शब्द बहु बार जहँ, परै रुचिरता अर्थ ।
पुनरुक्ति-परकास सो, बरनैं बुद्धि-समर्थ ॥

विवरण—भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिये एक ही शब्द कई बार कहा जाय । जैसे—

१—दोहा

बनि-बनि-बनि[10] बनिता[11] चलीं, गनि-गनि-गनि डग[12] देत ।
धनि-धनि-धनि अखियाँ, सुछबि सनि-सनि-सनि[13] सुख लेत ॥

२—सवैया

मधुमास[14] मैं 'दासजू' बीस-बिसे[15] मनमोहनआइहैंआइहैंआइहैं ।
उजरे इत भौनन[16] को सजनी सुख-पुंजन छाइहैं छाइहैं छाइहैं ॥
अब तेरी सौं[17] एरी न संकएकंक[18] बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं ।
घनस्याम-प्रभा लखिकै सखियाँ अँखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं ॥

---

१ बकरी का भोजन (पत्ती = पत्री, पत्र) । २ नहीं भेजते । ३ बीतें । ४ चन्द्रमा का शत्रु (दिन) । ५ सूर्य का शत्रु (रात्रि) । ६ कामदेव । ७ मघा नक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र (**चित्रा,** चित्ता, = चित्त) । ८ (नक्षत्र = २७ + वेद = ४ + ग्रह = ६) = ४० ÷ २, = २० बीस (बिष) । विष खाने से कौन मना कर सकता है ? ९ मलती हैं । १० सज कर । ११ स्त्रियाँ । १२ कदम । १३ छबि में सनकर । १४ चैत्र का महीना । १५ निश्चय । १६ उजड़े घरों को । १७ कसम । १८ एक दम ।

सूचना—अँग्रेज़ी में इस अलंकार को 'टाटालोजी' (Tautology) कहेंगे। फारसी तथा उर्दू में 'तजनीस मुकर्रर' कहते हैं।

(४) पुनरुक्तिवदाभास

दो०—जानि परै पुनरुक्ति-सी, पै पुनरुक्ति न होय।
वदाभासपुनरुक्ति तेहि, भूषन कह सब कोय॥

विवरण—जहाँ दो शब्द ऐसे रखे जायँ जो पर्यायवाची हों और एक-सा अर्थ देते हुए दिखाई दें, परन्तु यथार्थ में अर्थ कुछ दूसरा ही हो, उसे पुनरुक्तिवदाभास अलंकार जानो ; जैसे—

१—दो०—क्यों न होय छितिपाल[1] सों, नीतिपाल जग एक[2]।
जाके निकट जु रहत हैं, सुमनस बिबुध अनेक॥

यहाँ 'सुमनस' और 'बिबुध' का पहली दृष्टि में एक ही अर्थ 'देवता' भासता है, परन्तु वास्तव में अर्थ है 'सुन्दर चित्तवाले विशेषज्ञ पंडित।'

२—दो०—बंदनीय केहिके नहीं, वे कविंद मतिमान।
सुरग[3] गएहू काव्य-रस, जिनको जगत[4] जहान[5]॥

यहाँ 'जगत' और 'जहान' पहले एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परन्तु विचार करने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

३—चौ०—पुनि फिरि[6] राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई॥

यहाँ 'पुनि' और 'फिरि' में एक अर्थ का आभास है। 'फिरि' का अन्वय 'आई' के साथ होगा।

४—दो०—अली भौंर गूँजन लगे, होन लगे तुल-पात।
जहँ तहँ फूले रूख तरु, प्रिय प्रीतम किमि जात॥

---

१ राजा। २ अद्वितीय। ३ स्वर्ग। ४ जगमगाता है। ५ संसार में। ६ पलटकर, लौटकर।

यहाँ अली और भौंर, दल और पात, रूख और तरु तथा प्रिय और प्रीतम एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परन्तु विचार करने से जान पड़ता है कि अली = सखी, पात होन लगे = गिरने लगे, रूख = रूखे (सूखे) और प्रिय = प्यारा।

५—कवित्त—भृगु-लात-पद हिय प्रियवर राजत है,
मोर-पंख पच्छ साजे मेरे मन भावै है।
राजै हार बन-माल आड़ तें दिखाई देत,
'कासिराज' तन पर गोरज[1] सोहावै है।
रहै परदोस साँझ-समै मैं बिहारी[2] स्याम,
ललित अरुन अंग ताम्र[3] को लजावै है।
दच्छिन हरित हरे रंग-संग बलदेव[4],
कुंजर मतंग-दंत कंध धरे आवै है।

इसमें लात और पद, पंख और पच्छ, हार और बन-माल, परदोष और साँझ, अरुन और ताम्र, हरित और हरे, कुंजर और मतंग एकार्थवाची शब्द जान पड़ते हैं परन्तु अर्थ पृथक्-पृथक् है। अर्थात् पद = स्थान। पच्छ = पच्छवाले लोग। बनमाल = बन के वृच्छों का समूह। परदोष = पराया दोष। अरुन = लाल रङ्ग। दच्छिण हरित = दाईं ओर। हरे रंग-संग = अत्यन्त प्रसन्न चित्त। कुंजर = बहुत बड़ा।

६—कवित्त—अरिन के दल[5] सैन सङ्ग रमैं[6] समुहाने[7],
टूक-टूक सकल कै डारे घमसान[8] मैं।

---

१ गोधूलि। २ घूमनेवाले। ३ ताँबा। ४ बलराम। ५ शत्रुओं की सेना। ६ साथही शयन में रमते हैं, साथ-साथ मरते हैं। ७ सम्मुख आने पर। ८ युद्ध।

दरबार[1] रूरो[2] महानद परबाह पूरो[3],
बहत है हाथिन के मद जल-दान[4] मैं ॥
'भूषन' भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
सूर[5], रबि केसो तेज[6] तीखन कृपान मैं ।
माल मकरंद कुल-चंद कलानिधि[7] तेरो,
सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं* ।

यहाँ भी दल और सैन, सूर और रबि तथा जगत और जहान में वैसा ही आभास है। समझने में अर्थ अलग-अलग है।

(५) प्रहेलिका (पहेली)

दो०—प्रस्नहिं में उत्तर कढ़ै, कछू सब्द के फेर ।
सो प्रहेलिका दोय बिधि, सब्द अर्थगत हेर ॥

(१) शब्दगत प्रहेलिका

१—चौपाई

देखी एक अनोखी नारी। गुन उसमें इक सबसे भारी ।
पढ़ी नहीं यह अचरज आवै। मरना-जीना तुरत बतावै ॥

उत्तर—हाथ की नारी (नाड़ी)

२—चौ०

बारे[8] से वह सबको भावै। बढ़ा हुआ कुछ काम न आवै ।
मैं कह दिया है उसका नाम। अर्थ करो कै छाँड़ो ग्राम ॥

उत्तर—दिया (दीपक)

---

* इसमें और भी कई जगह पुनरुक्तिवदाभास है, संगर-घमासान, दर-बार, परवाह-पूरो, तेज-तीखन, चंद-कलानिधि ।

१ दरवाज़े में। २ उत्तम, भारी। ३ पूर्ण। ४ संकल्प करते समय का जल। ५ वीर। ६ चमक, कांति। ७ कलाविद्। ८ जलाने से।

३—चौपाई

आदि कटे तें सबको पालै। मध्य कटे तें सबको सालै।
अंत कटे तें सबको मीठा। सो खुसरो मैं आँखों दीठा[1]॥

उत्तर—काजल

४—चहूँ ओर फिरि आई। जिन देखी तिन खाई[2]।

उत्तर—खाई।

(२) अर्थगत प्रहेलिका

१—दो०—लक्ष्मी पति के कर बसै, पाँच बरन[3] गनि लेव[4]।
पहिलो अक्षर छोड़िकै, आय हमैं किन देव॥

उत्तर—दर्शन

२—दो०—सब सुख चाहौ भोगिबो, जौ पिय एकहि बार।
चँद गहै जहँ राहु[5] को, जइयो तेहि दरबार॥

उत्तर—राजा बीरबल का दरबार, जहाँ चंद नाम का एक द्वारपाल था।

३—दो०—ऐसी मूरि[6] बताव सखि, जेहि जानत सब कोय।
पीठि लगावत जासु रस, छाती सीरी[7] होय॥

उत्तर—पुत्र

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी वा उर्दू में 'बीसवाँ' वा 'मुअम्मा' कह सकते हैं।

(६) भाषा-समक

दोहा—सब्दन की बिधि एक जहँ, भाषा बिबिध प्रकार।
वाक्य मनोहर होय तहँ भाषा-समक बिचार॥

१ देखा। २ धोखा खाया। ३ अक्षर। ४ सुदर्शन। ५ राह चलने वाले, आगंतुक। ६ मूल (जड़)। ७ ठंढी।

१—सवैया

जा दिन तें जमुना-तट वाहि बजावत बाँसुरी नेक निहारो।
होशम रफ़्त न माँद बदस्त,[१] भरोस रहै दिन-रैन तुम्हारो॥
'हाफिज़' फ़िक्र कुदाम नुमायम,[२]कोई उपाय चलै न हमारो।
हे सखि कोउ उपाउ रचौ फिरि बारक[३] देखिय नँददुलारो।

२—सवैया

द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां[४] मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना[५] गुल[६] तोड़ती थी खड़ी॥
उन्नद्भ्रू धनुषा कटाक्ष विशिखैर्घायल[७] किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोह-जलधौ[८] हैदर गुजारै शुकर[९]॥

३—सवैया

कासों कहौं मन की कुबिथा अपनो तन आप जराने परो।
खेशो बुजुर्ग अकारिब राह में देखत[१०] खूब लजाने परो॥
वाकी मुरव्वतो उल्फत[११]में हमें 'हाफिज़' हाय बिकाने परो।
दिल रफ़्तर्ज़ेदस्त शुदा अलमस्त[१२] फिसोस[१३]महा पछिताने परो॥

४—सवैया

साँझ समै घर से निकली लिए संग सखी वह साँवरी मूरत।
नाज़ो नियाज़ नमूद बसे[१४]अज़ ताब शुदम् मफ़कूद कदूरत[१५]॥

---

१ होश हाथ से निकल गया। २ न जाने कैसी चिंता लग गई है। ३ एक बार। ४ सुन्दर मनवाली की विचित्रता देखने के लिये वहाँ गया था। ५ वहाँ कोई बालमृग-नयनी। ६ फूल। ७ चढ़ी हुई भौहें रूप धनुष और कटाक्ष रूपी बाणों से घायल किया। ८ मोह रूपी समुद्र में इसी से मैं सदा दुःख पाता हूँ। ९ ईश्वर मंगल करे। १० स्वजन, गुरुजन और समीपी जनों को मार्ग में देखकर। ११ उसकी प्रीति में। १२ मन हाथ से निकल गया, वह मस्ताना बन गया। १३ अफ़सोस, खेद। १४ बहुत से हाव-भाव दिखलाई पड़े। १५ उनकी चमक से (मेरे मनका) मैल दूर हो गया।

मो तन ताकि दियो हँसिकै अभिमान भरी कछु भौंह मरूरत।
होशम रफ़्त न माँद बदस्त[1] शुदा दिल मस्त जे दीदने सूरत[2] ॥

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी में 'मुलम्मा' कहते हैं। 'हाफ़िज़सीराज़ी' का प्रसिद्ध शैर है:—

अला या ऐ व हस्साकी अदिर कासन व नाविलहा।
कि इश्क आसाँ नमूद अव्वल वले उफ़ताद मुश्किलहा ॥ *

इसमें पूर्वार्द्ध अरबी भाषा और उत्तरार्द्ध फ़ारसी है।

(७) यमक

दो०—वहै सब्द फिरि-फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो यमकालंकार है, भेद अनेकन ठौर ॥

विवरण—वैसा ही शब्द पुनः पुनः सुन पड़े, परन्तु अर्थ जुदा-जुदा हो, उसे 'यमक' कहते हैं। इसके सब से अधिक भेद 'केशवदास' ने अपनी 'कविप्रिया' में लिखे हैं।

उदाहरण—

१—दो०—तो पर वारौं[3] उरबसी[4], सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उर[5] बसी ह्वै उरबसी[6] समान ॥

२—दो०—भजन[7] कह्यो तासो भज्या[8] भज्यो[9] न एकौ बार।
दूरि भजन[10] जासो कह्यो, सो तैं भज्यो[11] गँवार ॥

---

* ऐ मदिरा पान करानेवाले! सावधान हो जा। प्याले को पीने के लिये दे और तू भी पी। प्रेम पहले तो सरल जान पड़ा, किंतु अब उसमें कठिनाइयाँ जान पड़ती हैं।

१ होश हाथ से जाता रहा। २ रूप के देखने से मन मतवाला होगया। ३ निछावर करता हूँ। ४ उर्वशी, अप्सरा। ५ हृदय में। ६ पदिक नामक गहना जो माला के बीचो-बीच लटकता है। ७ भजन करने को। ८ उससे दूर भागे। ९ भजन किया। १० दूर भागने के लिये। ११ राजा जनक।

३—चौपाई

मूरत मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह[१] बिदेह[२] बिसेखी[३] ॥
४--दो०—बारन[४] तें बारन[५] कहूँ, होत जु बारन[६] नाहिं।
लागी बार[७] न बधत[८] रिपु, इन्हैं सुबार न[९] माहिं ॥

५—सवैया

बसुधा[१०]-धर[११] मैं बसुधा-धर[१२] मैं,
व सुधाधर[१३] मैं वसुधा[१४] मैं लसै।
अलिबृन्दन[१५] मैं अलिबृन्दन[१६] मैं,
अलिबृन्दन[१७] मैं अतिसै सरसै[१८] ॥
हिय-हारन[१९] मैं हुरिहारन[२०] मैं,
हिमि-हारन[२१] मैं "रघुराज" लसै।
ब्रजबारन[२२] बारन[२३] बारन[२४] बारन[२५],
बारन-बार[२६] बसन्त बसै ॥

६—कवित्त—ऐसी परीं नरम[२७] हरम[२८] पातसाहन[२९] की,
नासपाती खातीं ते बनास पाती[३०] खाती हैं।

---

१ राजा जनक। २ शरीरहीन, शरीर-ज्ञान-शून्य। ३ विशेषतः। ४ बालों (केशों) से। ५ हाथी। ६ निवारण नहीं होता, रोका नहीं जा सकता। ७ देर। ८ मारने में। ९ उस रण में। १० आठ प्रकार से, चारों दिशाओं और चारों उपदिशाओं से। ११ पृथ्वी में। १२ पर्वत। १३ चंद्रमा। १४ जल। १५ भौरों का समूह। १६ कोयलों का समूह। १७ सखियों का समूह। १८ अत्यन्त फैलता है। १९ माला। २० होली खेलने वाले। २१ हिम को हरने वाले, सूर्य। २२ ब्रजवालों में। २३ बालन, बालकों में। २४ बालाओं में। २५ दरवाजों में। २६ बार-बार (सदा)। २७ कोमल, सुकुमार। २८ रानियाँ। २९ बादशाह। ३० बनस्पति।

७—कवित्त—ऊँचे घोर मंदर[१] के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर[२] के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं[३] कंद-मूल भोग करैं[४];
तीन बेर खातीं[५] ते वै तीन बेर खाती हैं[६] ॥
भूखन सिथिल अंग[७] भूखन सिथिल अंग[८],
बिजन डोलातीं[९] ते वै बिजन डोलाती हैं[१०]।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास[११],
नगन जड़ातीं[१२] ते वै नगन जड़ाती हैं[१३] ॥

सूचना—इस अलंकार को अँगरेज़ी में 'पन' (Pun) कहते हैं। उर्दू और फ़ारसी में 'तजनीस ज़ायद' कहेंगे।

मुक्त-पद-ग्राह्य यमक

दो०—चरण अंत अरु आदि मैं, यमक कुंडलित होय।
मुक्तपदग्रह है वही, सिंहवलोकन सोय ॥

१—सवैया—लाल है भाल सिंदूर-भरो-मुख-
सिंधुर[१४] चारु[१५] औ बाँह बिसाल[१६] है।
साल[१७] है सत्रुन को कवि देव,
सुसोभित सोम-कला[१८] धरे भाल है[१९] ॥

---

१ ऊँचे और विशाल मंदिर (राजमहल)। २ ऊँचे और भयावने पर्वत। ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं। ४ कंदा और जड़ें। ५ तीन बार (मर्तबा)। ६ तीन बेर (फल)। ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त) थे। ८ भूख के कारण शरीर शिथिल है। ९ पंखा झलती थीं। १० बिना मनुष्य के स्थान (जंगल) में घूमती हैं। ११ डर। १२ (गहनों में) रत्न जड़वाती थीं। १३ नंगी जाड़ा खाती हैं। १४ हाथी के ऐसा मुख। १५ सुंदर। १६ लंबी। १७ शल्य (दुःखद)। १८ चन्द्रमा की कला (द्वितीया का चन्द्रमा)। १९ शोभा पाता है।

भाल है दीपत सूरज कोटि-सो,
काटत कोटि कुसंकट-जाल[१] है।
जाल[२] है बुद्धि-बिबेकन को यह,
पारवती को लड़ायतो[३] लाल[४] है।

२—सवैया

नामहिं के सुमिरे सुख पाइहौ;
और न काम गिनौ जग कामहिं।
कामहिं कोऊ न आइहैं ये सुत-
मातु-पिता प्रिय बंधु औ बामहिं[५]॥
बामहिं[६] हैं सिगरे[७] भव[८] के,
सुख होत नहीं छनहूँ बिसरामहिं[९]।
रामहिं राम रटौ रे रटौ सब,
वेद-पुरान को है परिनामहिं[१०]॥

३—छप्पय-सारँग[११] से दृग लाल, माल सारँग[१२] की सोहत।
सारँग[१३] ज्यों तनु स्याम बदन[१४] लखि सारँग[१५] मोहत॥
सारँग [१६] सम कटि[१७], हाथ माथ-बिच सारँग[१८] राजत।
सारँग[१९] लाए अंग देखि छबि सारँग[२०] लाजत॥
सारँग[२१] भूषन पीत-पट सारँग[२२] पद सारंग[२३] धर।
'रघुनाथदास' बंदन करत सीतापति रघुबंस बर॥

---

१ जंजाल, झगड़ा-बखेड़ा। २ समूह। ३ प्यारा। ४ पुत्र। ५ स्त्री। ६ प्रतिकूल। ७ सब। ८ संसार। ९ आराम। १० अंतिम उद्देश्य। ११ कमल। १२ सोना। १३ बादल। १४ मुख। १५ चंद्रमा। १६ सिंह। १७ कमर। १८ बाण (हाथ में) चंदन (मस्तक में)। १९ कपूर। २० कामदेव। २१ सुहावने, रंगीन। २२ कमल। २३ धनुष (शार्ङ्ग) धारण करने वाले।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि 'लाटानुप्रास' में केवल शब्दों ही की नहीं वरन् वाक्यों तक की आवृत्ति हो सकती है, केवल अन्वय से अर्थ में हेर-फेर होता है। यमक में जिस अक्षर-समूह का आवर्तन होता है वह चार प्रकार का होता है; [१] दोनों निरर्थक, जैसे—"मधुपराजि पराजित मानिनी[१]" में 'पराजि' का कुछ अर्थ नहीं, यह उत्तम यमक है, [२] एक सार्थक एक निरर्थक जैसे—"है समर-समरस-सुभट[२] तरु-पति वाहनी विख्यात"[३] में पहले 'समर' का अर्थ है युद्ध और दूसरा 'समर' 'समरस' शब्द का एक खंड होने से निरर्थक है, [३] एक पूर्ण शब्द सार्थक दूसरा खंड होकर सार्थक, जैसे 'उरबसी' और 'उर बसी' में। ये दोनों मध्यम यमक हैं और [४] भिन्नार्थवाची दो वा अनेक शब्द, जैसे ऊपर वाली छप्पय में "सारंग" शब्द है। यह अधम यमक है।

सूचना—'सिंहावलोकन' को फ़ारसी में 'सनअत इरसाद' कहेंगे।

(८) वक्रोक्ति

दो०—होय स्लेष सों काकु सों, कल्पित औरै अर्थ।
ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सिगरे सुकवि समर्थ॥

विवरण—कहे हुए वाक्य का श्लेष से वा काकु से और ही अर्थ कल्पित करे अर्थात् जब वक्ता कोई वाक्य एक अर्थ में कहता है और श्रोता उसका दूसरा ही अर्थ लगाता है, तो वहाँ वक्रोक्ति-अलंकार होता है। ऐसा अर्थ श्लेष से वा काकु से हो सकता है।

(२) श्लिष्ट वक्रोक्ति

श्लिष्ट वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है, (१) भंगपद और (२) अभंगपद।

(१) भंगपद वह है जिसके पद को तोड़-फोड़ कर दूसरा अर्थ किया जाय; जैसे—

१ भौंरों के झुंड से व्याकुल मानिनी नायिका। २ युद्ध में डटे रहने वाले वीर। ३ मरुदेश के राजा की सेना।

"गौरवसालिनी[१] प्यारी हमारी सदा तुमहीं इक इष्ट अहौ"।
"हौं न गऊ नहिं हौं अवसा[२] अलिनी[३] हूँ नहीं अस काहे कहौ"॥

श्रीमहादेवजी पार्वती जी से कहते हैं कि हे गौरवशालिनी प्यारी! तुम्हीं हमारी सदा इष्ट देवी हो। पार्वतीजी शब्दों को तोड़ कर हँसी से कहती हैं कि—

न मैं 'गो' हूँ न 'अवशा' हूँ और न 'अलिनी' हूँ, तुम ऐसा क्यों कहते हो।

अर्थात् गौः + अवशा + अलिनी = गौरवशालिनी।

२—दो०—मान तजो गहि सुमति बर[४], पुनि-पुनि होत न देह।
मानत जागी जाग को, हम नहिं करत सनेह[५]॥

कोई व्यक्ति किसी से कहता है—"हे वर! सुमति गहि (कै) मान तजो"। वह व्यक्ति 'मान तजो गहि' शब्दों को तोड़कर 'मानन जोगहि'[६] समझ कर उत्तर देता है।

३—दो०—नारी के अनुकूल तुम, आचरत[७] जु दिनरात।
कौन अरिन[८] सों हित[१०] करत, है बसुधा[११] विख्यात॥

यहाँ उत्तरार्द्ध में 'नारी' शब्द को तोड़ कर न + अरि करके उत्तर दिया।

सूचना—उर्दू तथा फ़ारसी में 'सभंगपद-श्लेष' को 'तजनीस मुरक्कब' और अभंगपद-श्लेष को 'तजनीस ताम' कह सकते हैं।

(२) अभंग पद वह पद है जिसमें शब्द वा पद तोड़ा न जाय किंतु अनेकार्थक कोष से किसी शब्द का अर्थ ऐसा लिया जाय जो कहने वाले के अर्थ से भिन्न हो, जैसे—

१ गौरव युक्त। २ स्वच्छंद। ३ भ्रमरी। ४ हे श्रेष्ठ, सुमति धारण करके मान को छोड़ दो। ५ स्नेह, प्रेम। ६ योग को (सुंदर मतिवाले) मानते हैं। ७ स्त्री। ८ व्यवहार करते हैं। ९ शत्रु। १० प्रेम। ११ पृथ्वी।

१—क०—'खोलो जू किवाँर' 'तुम को हौ एती बार[१]'
'हरि नाम है हमारो' 'बसो कानन[२] पहार मैं'।
'हौं तो प्यारी 'माधव' 'तो कोकिला के माथे-भाग[३]'
''मोहन' हौं प्यारी,' 'परो मंत्र-अभिचार[४] मैं'॥
'रागी[५] हौं रँगीली, तौ जु जाहु काहू दाता पास,
भोगी हौं छबीली, जाय बसो जू पतार[६] मैं।
'नायक' हौं नागरी[७] तो हाँको कहूँ टाँड़ो[८] जाय,
हौं तो 'घनस्याम', बरसो जू काहू खार[९] मैं।

इसमें कृष्ण और राधिका का परिहास वर्णित है। कृष्णजी अपना जो नाम बताते हैं उसीका दूसरा अर्थ लेकर राधिका उत्तर देती जाती हैं। राधिकाजी का अर्थ—हरि=बंदर। माधव=वैशाख-मास। मोहन=मोहन प्रयोग (मारण, मोहन इत्यादि का)। रागी=गवैया। भोगी=सर्प। नायक=बंजारा। घनस्याम=काला बादल।

२—दो०—को तुम? 'हरि'[१०] प्यारी! कहा बानर को पुर काम?
'स्याम' सलोनो, स्याम कपि? क्यों न डरै तव बाम॥

सूचना—इन उपर्युक्त उदाहरणों में यदि श्लिष्ट शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल दें तो काव्य बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा अर्थात् इन छंदों का कवित्व उन्हीं शब्दों पर निर्भर है, इसलिये इनमें शब्दालंकार है।

(२) काकु वक्रोक्ति

दो०—जहाँ कंठध्वनि भिन्न तें, आसय जुदो लखाय।
सो वक्रोक्ती काकु है, कबिवर कहैं बुझाय॥

---

१ इस समय (रात में)। २ जंगल। ३ सिर पर। ४ मंत्र का प्रयोग। ५ प्रेमी। ६ (पाताल) पृथ्वी के नीचे। ७ चतुर स्त्री। ८ अन्न का बोझ पीठ पर लादनेवाले बैलों या पशुओं का झुंड। ९ धूल अर्थात् मैदान। १० कृष्ण और बंदर।

विवरण—जहाँ शब्द के उच्चारण में कंठध्वनि से कुछ और ही अर्थ भासे वहाँ 'काकु' समझो।

सूचना—इसके उदाहरण रौद्ररसपूर्ण वा हास्यरसपूर्ण वाद-विवाद में अधिकता से आया करते हैं। रामायण में अंगद और रावण के संवाद में बहुत से हैं।

१—चौपाई—(अंगद)

कह कपि धर्मसीलता[1] तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर-तिय चोरी[2] ॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़भागी ॥

२—दोहा

सत्य कह्यौ दसकंठ सब, मोहिं न सुनि कछु कोह[3]।
कोउ न हमारे कटक[4] अस, तो सन लरत जो सोह[5] ॥

३—चौपाई

कह कपि तव गुन गाहकताई[6]। सत्य पवनसुत[7] मोहिं सुनाई ॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहिं समान कोउ नाहीं ॥
सो भुजबल राख्यो उर घाली[8]। जीतेउ सहसबाहु बलि वाली ॥

४—चौपाई—(सीता)

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू[9] ॥
५—दो०—काह[10] न पावक[11] जारि सक, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला[12] प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥

---

१ धर्मिष्ठता। २ दूसरे की स्त्री की चोरी द्वारा कमाई हुई। ३ क्रोध ४ सेना। ५ तुझसे लड़ते हुए जो शोभित हो। ६ गुणों का आदर करना। ७ हनूमान। ८ हृदय में रख छोड़ा। ९ भोग-विलास। १० क्या। ११ अग्नि। १२ स्त्री।

६—चौ०—(राम) मानस[1] - सलिल - सुधा - प्रतिपाली[2] ।
जियै कि· लवन-पयोधि[3] मराली[4] ॥
नव रसाल-वन-बिहरन-सीला[5] ।
सोह कि कोकिल बिपिन-करीला[6] ॥

सूचना—अनेक आचार्यों ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है। पर हम इसे शब्दालंकार ही मानते हैं। क्योंकि विशेष कंठध्वनि ही से इसमें अर्थ का हेर-फेर होता है। कंठध्वनि श्रवण का विषय है। श्रवण-मात्र की अलंकारता शब्दालंकार ही मानी जा सकती है।

(६) वीप्सालंकार

दो०—आदर अचरज आदि हित, एक सब्द बहु बार ॥
ताहि वीप्सा कहत हैं, जे सुबुद्धि-भंडार ॥

विवरण—आदर, ताकीद, आश्चर्य अथवा अन्य कोई आकस्मिक भाव प्रकट करने के हेतु एक शब्द कई बार कहा जाय, वही वीप्सालंकार है।

१—(आदर) (क) चौ०—सिव सिव ह्वै प्रसन्न करु दाया[7] ।
(ख) पद—राम राम राम जीह[8] जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै[9] ।
(ग) पद—राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
(घ) पद—राम राम राम राम राम राम जपत।
मंगल-मुद उदित होत कलिमल[10] छल छपत[11] ।

१ मानसरोवर। २ अमृत तुल्य जल से पाली हुई। ३ खारे जल का समुद्र। ४ हंसिनी। ५ नये आम के बागीचे में घूमनेवाली। ६ करील के (काँटेदार) जंगल में। ७ दया। ८ (जिह्वा) जीभ। ९ दुःख पावेगी। १० पाप का मैल। ११ छिप जाते हैं।

५—दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ[१] गए सुरधाम[२]॥

२—(ताकीद) (क) पद—राम कहत चलु राम कहत चलु,
राम कहत चलु भाई रे।
नाहीं तो भव-बिगारि[३] महँ परिहौ,
छूटत अति कठिनाई रे॥

(ख) पद—राम जपु राम जपु राम जपु बावरे[४]।
घोर भव-नीरनिधि[५] राम निजु[६] नाव रे।

३—(आश्चर्य) राम राम ! यह क्या करते हो।

४—(घृणा) छि: छि: उसे मत छुओ !

४—(पश्चात्ताप) राम राम ! यदि मैं जानता कि ऐसा होगा तो मैं यह काम न करता।

६—(अहंकार) भाई भाई, क्या तुम्हीं बड़े बुद्धिमान हो ?

सूचना—इसी प्रकार और भी आकस्मिक भाव प्रकट करने के लिये शब्द दोहराए तेहराए जाते हैं।

(१०) श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामैं अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

विवरण—ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके दो तीन अर्थ हो सकते हों, श्लेष अलंकार कहलाता है। इसके दो भेद होते हैं—

(१) वह जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है। इसकी गणना शब्दालंकारों में हो सकती है।

१ राजा (दशरथ)। २ स्वर्ग। ३ सांसारिक आवागमन। ४ पागल। ५ संसार रूपी समुद्र। ६ निश्चय।

(२) वह जहाँ कवि का तात्पर्य दोनों वा तीनों अर्थों से होता है इसकी गणना अर्थालंकारों में होनी चाहिये।

उदाहरण—

१—चौपाई

रावन-सिर-सरोज-बनचारी[1]। चलि रघुबीर-सिलीमुख-धारी[2] ॥

यहाँ पर 'सिलीमुख' शब्द के दो अर्थ हैं (१) बाण (२) भौंरा। तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे भौंरा दौड़ कर कमल-वन में जाते हैं और कमलों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार रघुनाथजी के शिलीमुख (बाण) रावण के सिरों में घुसने लगे। तुलसीदासजी का मुख्य लक्ष्य बाणों की ओर जान पड़ता है न कि बाण और भौंरा दोनों की ओर। इस हेतु यह श्लेष शब्दालंकार है। इसी प्रकार बिहारी-कृत नीचे लिखे दोहों में एक अर्थ की मुख्यता है, इसलिये इन दोनों का श्लेष शब्दालंकार है।

२—दो०—अजौं तर्यौना[3] ही रह्यौ, श्रुति[4] सेवत इक अंङ्ग[5]।
नाक-बास[6] बेसरि[7] लह्यौ, बसि मुकुतन[8] के संग[9] ॥

इसमें तरयौ ना, श्रुति, नाक, मुकुतन, शब्दों में श्लेष है परंतु बिहारी का मुख्य तात्पर्य कर्णफूल और नथ से है न कि किसी मुमुक्षु[10] से; जैसा कि श्लेष में व्यंजित होता है। इसी से यह शब्दालंकार है। इसी प्रकार नीचे के दोहों में समझना चाहिए।

---

१ रावण के सिर रूपी कमल-वन में घूमने वाली। २ सेना, समूह। ३ (क) कर्णफूल (ख) तरयौना (न तरा)। ४ (क) कान, (ख) वेद। ५ स्वयं अकेला, अबाध्य रीति से। ६ (क) नासिका, (ख) स्वर्ग। ७ (क) नाक का गहना, (ख) जो समता का न हो। ८ (क) मोती, (ख) मुक्त लोग। ९ साथ। १० मुक्ति की इच्छा रखने वाला।

३—दो०—जो चाहौ चटक[१] न घटै, मैलो होय न मित्त[२] ॥
रज[३]-राजस[४] न छुवाइए, नेह[५]-चीकने चित्त ॥
(इसमें 'रज' और 'नेह' शब्दों में श्लेष है)

४—दो०—दूरि भजत[६] प्रभु पीठि दै, गुन[७]-बिस्तारन-काल ।
प्रगटत निर्गुन[८] निकट ही, चंग-रंग[९] गोपाल ॥
(इसमें 'गुन' और 'निर्गुन' शब्दों में श्लेष है)

नीचे लिखे हुए 'रसनिधि'-कृत दोहों में भी ऐसा ही समझो । इनमें 'नेह' शब्द में श्लेष है ।

५—दो०—धनि दृगतारन[१०] के जु तिल[११] जिनमें स्यास-सनेह[१२] ।
बिना नेह[१३] के तिल[१४] किते, परे रहत हैं देह ॥

६—दो०—कहनावत[१५] यह मैं सुनी, पोषत तन को नेह ।
नेह लगाए अब लगी, सूखन सिगरी देह ॥

७—दो०—आपु-बुसाते[१६] सज्जना[१७], नेह न दीजौ जान ।
नेही तिल नेहै तजै खरि ह्वै जात निदान[१८] ॥
(खरि = खली, निर्दई)

८—दो०—चलि न सकै निज ठौर तें, जे तन-द्रुम[१९] अभिराम ।
तहाँ आय रस बरसिबो, लाजिम[२०] तोहि घनस्याम ॥
(रस = पानी, आनंद । घनस्याम = काला बादल, कृष्ण ।)

---

१ चमकीलापन । २ मित्र । ३ धूल । ४ राजसी, हुकूमत । ५ प्रेम, तेल । ६ भागते हैं । ७ (क) गुण, (ख) डोरी । ८ (क) निर्गुण ब्रह्म (ख) डोर कम करने पर, खींच लेने पर । ९ पतंग की तरह । १० पुतली । ११ आँख की पुतली की काली रेखा । १२ प्रेम । १३ तेल । १४ जिससे तेल निकलता है । १५ लोकोक्ति । १६ अपने चलते । १७ हे सज्जनो । १८ अंत में । १९ शरीर रूपी वृक्ष । २० उचित ।

सूचना—जहाँ कवि का स्वयं यह तात्पर्य होता है कि पाठक दोनों वा तीनों अर्थों की ओर ध्यान दें वह श्लेष अर्थालंकार है। प्रसंगवश उसके कुछ उदाहरण यहीं लिखे देते हैं जिससे पाठकगण दोनों के भेद और बारीकी को भली भाँति समझ सकें।

(अर्थगत श्लेष के उदाहरण)

१—श्लोक—यः पूतनामारणलब्धकीर्तिःकाकोदरो येन विनीतदर्पः।
यशोदयालंकृतमूर्तिरव्यात् नाथोयदूनामथवा रघूणाम्॥*

स्वयं कवि कहता है कि इसका तात्पर्य यदुनाथ (कृष्ण) और रघुनाथ (राम) दोनों पर घटित हो सकता है।

केशव-कृत 'रामचंद्रिका' में जब रामचंद्र की सेना समुद्रपार जाकर सुवेला पर्वत पर ठहरी है, उस समय केशव ने एक विद्वत्तामय कवित्त कहा है जिसमें रामजी की सेनाँ के लिये अंतिम चरण में कहा है कि—यह राम की सेना है, कि विभीषण की राज्यश्री हैं, कि रावण की मृत्यु है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कवि का लक्ष्य तीनों अर्थों पर है। इसलिये उसे अर्था-लंकार ही मानना पड़ेगा। केशव कहते हैं—

२—क०—कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन,
मध्य देश केसरी सुगज गति भाई है॥

*इस श्लोक के दो अर्थ हैं, एक राम-पक्ष का दूसरा कृष्ण-पक्ष का। (राम पक्ष)—जो पवित्र नामवाले हैं, जिन्होंने रण में कीर्ति पाई है, जिन्होंने काक (जयंत) का दर्प नष्ट किया, जो यश और दया से युक्त हैं, वे रघुवंशियों के नाथ रामचन्द्र। (कृष्ण-पक्ष में)—जिसने पूतना को मारने में कीर्ति पाई, जिसने काकोदर राक्षस का दर्प दूर किया, यशोदा जिसकी मूर्ति को सजाती हैं वे यदुवंशियों के नाथ श्रीकृष्ण।

विग्रहानुकूल सब लक्ष-लक्ष ऋक्ष-बल,
ऋक्षराजमुखी मुख 'केसोदास' गाई है।
रामचंद्रजू की चमू राजश्री विभीषन की,
रावन की मीचु दरकूच चलि आई है* ॥

---

* (राम-सेना के लिये)—कुंतल, ललित, नील, भृकुटी, धनुष नयन, कुमुद, कटाक्ष, बाण = यूथप वानरों के नाम। सबल = बलवंत। सदाई = सदैव। सुग्रीव, तार, अंगद = बड़े सरदार। भूषनन = सेना में भूषणवत्। मध्यदेस = सेना का मध्य भाग। केसरी, गज = वानरों की जाति। गति भाई है = जिनकी चाल सुंदर है। बिग्रह, अनुकूल = ऋक्ष सेना के यूथप। लक्ष-लक्ष ऋक्ष-बल = लाख-लाख ऋक्षों की सेना। ऋक्षराजमुखी = ऋक्षराज (जामवंत) जिसके मुखिया हैं। मुख गाई है = ये ऋक्ष-सेना के मुख-भाग (अग्र भाग) में हैं। चमू = सेना। दरकूच = कूच दर कूच डेरा डालती हुई। (राज्यश्री के लिये)—कुंतल = केश। ललित = सुंदर। नील = काले। कुमुद = कमल। बल = सौंदर्य। सुग्रीव = सुंदर गर्दन। तार = मोती। अंगद = बाजू बन्द। मध्यदेस = कमर। केसरी = सिंह। गजगति = हाथी सी चाल। बिग्रहानुकूल = शरीर के अंग यथायोग्य हैं। लक्ष······मुखी = लाखों नक्षत्र-सहित चंद्रमा के समान मुखवाली। मुख······गाई है = केशव के दासों (रामभक्तों) के मुख से प्रशंसित। (मृत्यु के लिए)—कुंतल = भाला। ललित = तीक्ष्ण। नील = काले रंग की। भृकुटी = भौंहें चढ़ाये। धनुष = धनुष लिए। नैन = (नय+न) अन्याययुक्त। कुमुद = आनंद रहित, क्रुद्ध। काटाक्ष बान = चितवन बाण-सी। सबल = बलवती। सुग्रीव = गर्दन में सुंदरता। तार = उच्च स्वर। अंगदादि भूषन न = बिजायठ आदि गहने नहीं हैं। मध्य = मध्यम, असुंदर। देस = अंग। केसरी···भाई है = सिंह के हाथी पर टूटने की सी चाल है। बिग्रहानुकूल = बिरोध के लिये अनुकूल समय। लक्ष···बल = जिसमें लाखों ऋक्षों का बल है। ऋक्षराजमुखी = ऋक्ष-सा भयंकर मुख। मुख······गाई है = जिसका मुख सज्जनों ने ऐसा ही कहा है।

(सेनापति कवि सूम और दाता दोनों के लिये कहते हैं)

३—क०—नाहीं नाहीं करैं[1] थोरे माँगे सब देन कहैं,
नंगन को देखि पट देत बार-बार हैं।
जाको मुख देखे भली प्रापति की घरी होत[2],
सदा सुभ जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरें दान पाठ पर बार हैं[3]।
'सेनापति' बैनन की रचना बिचारो,
जामें दाता अरु सूम दोऊ कीन्हें इकतार[4] हैं॥

पट=वस्त्र, किवाड़। सुभ जन मन भाए=दाता-पक्ष में 'सुभ जन मन भाए' और सूमपक्ष में 'सुभ जनम न भाए'। भोगी=भोग-विलास करनेवाला और साँप। कन-कन=कनक न और कणकण (थोड़ा-थोड़ा)। भूषन कवि कहते हैं—

४—क०—सीता, सँग सोभित[5] सुलच्छन सहाय[6] जाके,
भूपर भरत नाम भाई नीति चारु है।
'भूषन' भनत कुल सूर-कुल भूषन है,
दासरथी सब जाके भुज भुव-भारु है॥
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बान रहैं,
सिंधुर हैं बाँधे जाके दल को न पारु है।
तेगहि कै भेंटै जौनराकस मरद जानै,
सरजा सिवाजी राम ही को अवतारु है॥

---

१ 'नहीं' नहीं करते। २ प्राप्ति की घड़ी होती है, प्राप्ति की घड़ी चली जाती है। ३ दान-पाठ पर निछावर कर देते हैं, दान-पाठ में कुछ नहीं देते। ४ एक समान। ५ सीता संग सोभित=लक्ष्मी से युक्त (शिवाजी पक्ष में)। सहायक।

इसमें अंतिम चरण के अंतिम वाक्य से स्पष्ट प्रकट होता है कि कवि का लक्ष्य दोनों ओर है।

सीता संग सोभित=सीता के सँग शोभित। लच्छन=लक्ष्मण, शुभ लक्षण। भरत=भरता है, भरतजी। सूरकुल=सूर्यकुल; वीरगण। दासरथी=दशरथ के पुत्र, रथी हैं दास जिसके। लंक=लंका, कमर। बान रहैं=बाण रहते हैं, वानर हैं। सिंधुर हैं बाँधे=सिंधु को बाँधा, हाथी बाँधे रहते हैं। तेगहि कै भेंटै=तलवार ही से भेंटता है, उसको पकड़ कर भेंटता है। जौनराकस मरद जानै=जो नर अकस में मरद समझता है, जो राक्षसों को मर्दन करना चाहता है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझ लेना चाहिये।

अर्थश्लेष के और अधिक उदाहरण अर्थालंकार में दिए जायँगे।

सूचना—शब्दश्लेप में एक या दो शब्द होते हैं और उनका श्लेषार्थ केवल उन्हीं शब्दो पर निर्भर रहता है। यदि ये शब्द पर्यायवाची शब्दों में बदल दें तो वह अलंकार ही मिट जाता है। इसी से उसे शब्दालंकार मानना पड़ा है। अर्थश्लेष में शब्दों को बदल देने पर भी अलंकार बना रहता है। कहीं ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों को बदल सकते हैं, कुछ को नहीं बदल सकते। ऐसे स्थान पर जिसकी प्रधानता हो वही मानना चाहिए।

—:o:—

(दूसरा पटल)

अर्थालंकार

(१) उपमा

अर्थालँकारों में सर्वोत्तम और अनेक अलंकारों का मूल उपमा अलंकार है। इसीसे इसे पहले लिखते हैं।

दोहा—रूप रंग गुन काहु को, काहू के अनुसार।
तासों उपमा कहत हैं, जे सुबुद्धि-आगार॥
जाको बर्नन दीजिए, सो 'उपमेय' प्रमान।
जाकी समता दीजिए, ताहि कहिय 'उपमान'॥
उपमेयऽरु उपमान मैं, समता जेहि हित होय।
सो 'साधारन-धर्म' है, कहत सयाने लोय॥
सो, से, सी, इव, तूल, लौं, सम, समान उर आन।
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि, 'उपमा-वाचक' जान॥

कहीं-कहीं 'रँग; नाईं, न्याय और मतिन' भी वाचक होते हैं।

विवरण—जब दो वस्तुओं में पृथक्ता रहते हुए भी कोई समता वर्णन की जाय तब उपमा अलंकार होता है। समता आकृति, रंग और गुण की होनी चाहिए। वर्णन करने में जिसकी मुख्यता हो उसे 'उपमेय', जिससे समता दें उसे 'उपमान', जिस हेतु समता दें उसे 'धर्म' और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रकट करें उसे 'वाचक' कहते हैं। जैसे—

१—दो०—बंदौं कोमल कमल से जगजननी के पायँ।

इसमें कवि का मुख्य तात्पर्य 'जगजननी' (पार्वती) के

चरणों के वर्णन से है, इस हेतु 'पायँ' शब्द 'उपमेय' है। कमल 'उपमान', कोमल 'धर्म' और 'से' वाचक है।

सूचना—अँगरेज़ी में इस अलंकार को 'सिमिली' (Simile) और फ़ारसी तथा उर्दू में 'तशबीह' कहते हैं।

उपमा के दो भेद हैं—(क) पूर्णा, (ख) लुप्ता।

(क) पूर्णोपमा

दो०—वाचक साधारन धरम, उपमेयऽरु उपमान।
ये चारो जहँ प्रगट तहँ, पूरन-उपमा जान॥

१—दो०—रामलषन सीता-सहित, सोहत परननिकेत[1]।
जिमि बासव बस अमरपुर[2] सची[3]-जयंत[4]-समेत॥

यहाँ राम, लखन और सीता उपमेय, बासव (इन्द्र) जयंत और सची उपमान, 'सोहत' धर्म और 'जिमि' वाचक, चारों प्रकट हैं। इसी प्रकार और भी जानो। यथा—

२—सो०—उदय सूर[5] सो भाल, सिंदुर-घसो गनेस को[6]।
हरत बिघन को जाल[7], जो जग-व्यापक तिमिर[8] सो॥

यहाँ भाल उपमेय, सूर उपमान, उदय साधारण धर्म, 'सो' वाचक और बिघ्नजाल उपमेय, तिमिर उपमान, हरत धर्म और 'सो' वाचक प्रकट है।

३—सवैया

आनँद देत चकोर-हितून[9] को, है खल-कोकन[10] को दुखवारो।
कंत[11] है संत-कुमोदन[12] कोकल चाँदनी-कित्ति[13] महासित[14] भारो॥
'गोकुल' सील सुधा सरसै बरसै सुख है अति ही उजियारो।
मंद करै अरबिंदन को जस चंद सो संत महीप तिहारो॥

---

१ पर्णकुटी। २ इंद्रलोक। ३ इंद्राणी। ४ इंद्र का पुत्र। ५ सूर्य। ६ सिंदूर लगा हुआ गणेश का मस्तक। ७ समूह। ८ अंधकार। ९ मित्र। १० चक्रवाक। ११ स्वामी। १२ कुईं, सफेद कमल। १३ कीर्ति। १४ उज्ज्वल।

४—चौपाई

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि॥

५—चौपाई

रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर-किसोरक[1] जैसे॥

६—क०—फूलि उठे कमल से अमल[2] हितू[3] के नैन,
कहै 'रघुनाथ' भरे चैनरस सियरे[4]।
दौरि आए भौंर से करत गुनी गुन गान,
सिद्ध से सुजान सुख-सागर सों नियरे[5]॥
सुरभी[6] सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिंता जनक के जियरे[7]।
धनुष पै ठाढ़े राम रबि से लसत आज,
भोर के-से नखत[8] नरिंद[9] परे पियरे[10]॥

७—चौ०—करि-कर[11]-सरिस सुभग भुजदंडा।

८—चौ०—पीपर-पात-सरिस मन डोला।

९—चौ०—बिरही-इव प्रभु करत विषादा॥

(पूर्णोपमा का चक्र)

उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म	उदाहरण
राम	रबि	से	लसत	राम रबि से लसत
नरिंद	भोर के नखत	से	परे पियरे	भोर कैसे नखत नरिंद परेपियरे
भुजदंडा	करिकर	सरिस	सुभग	करिकर सरिस सुभग भुजदंडा
मन	पीपरपात	सरिस	डोला	पीपरपात सरिस मन डोला
प्रभु	बिरही	इव	करत विषादा	बिरही इव प्रभु करत विषादा

१ बच्चा। २ निर्मल। ३ हितुआ, मित्र। ४ शीतल। ५ निकट। ६ गया। ७ हृदय में। ८ प्रातः काल के तारे। ९ राजा। १० पीले। ११ हाथी की सूँड़।

सूचना—उपमालंकार के प्रयोग से निम्नलिखित पाँच लाभ हैं—

(१) अभीष्ट वस्तु का सम्यक् ज्ञान होता है।

(२) दो वस्तुओं की चमत्कारिक तुलना से चित्त प्रसन्न होता है।

(३) उपमा-जनित परिणाम-दर्शन से स्थायी शिक्षा मिलती है।

(४) भाषा में चमत्कार और सौंदर्य आ जाता है।

(५) थोड़े में बहुत सा बोध होता है।

अतः कविता में इस अलंकार की अनिवार्य आवश्यकता है।

(ख) लुप्तोपमा

दो०—बाचक साधारन धरम, उपमेयरु उपमान।
इनमें इक द्वै तीन बिनु, लुप्ता बिबिध-बिधान॥

विवरण—पूर्णोपमा में चार वस्तुएँ होती हैं। इनमें से जहाँ किसी का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा कहते हैं।

इस विषय में भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं। हमारे मत से जो हमें ठीक जँचते हैं उन्हीं को हम यहाँ लिखते हैं।

(१) वाचकलुप्ता

जहाँ बाचक शब्द का लोप हो, जैसे—

१—चौ०—जारि दियो उपसुंद-सुत[1], दुसह-रूप दुख-धाम।
सूर-सिरोमनि रावरे[2], राम काम अभिराम॥

२—चौ०—सरद-मयंक[3]-बदन[4] छबिसीवाँ[5]।

३—चौ०—नव अंबुज अंबक[6]-छबि नीकी।

४—चौ०—सरद-बिमल-बिधु बदन सोहावन।

१ एक दैत्य। २ आपके। ३ चंद्रमा। ४ मुख। ५ सीमा। ६ आँख।

५—दो०—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज[1] नयन।

यहाँ सो, से, सम इत्यादि वाचक शब्दों का लोप किया गया है।

(२) धर्मलुप्ता

जहाँ साधारण धर्म का लोप हो, जैसे—

१—चौपाई

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी[2]। हरषि सुधा-सम गिरा[3] उचारी[4]॥

२—चौ०—तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

३—दो०—गौतम नारी तरि गई, रही जो अघ[5] सों पूरि।
पाय सजीवन-मूरि-सी, प्रभु-पद-पँकज-धूरि॥

४—सवैया

बाहैं भुजंग[6] सी, पल्लव-से कर, आँगुरी पै नख हीरक-दार[7] से।
त्यों 'लछिराम' घटान-से रंग, प्रभा बिहँसे मुकुताहल-थार[8] से॥
ये भ्रमरावलि लौं[9] जुलफैं युग भौंहैं कमान[10] सी आनन[11] मार[12] से
बालमयंक[13] लौं भालथली रघुनाथ के लोचन खंजकुमार[14] से

५—सो०—कुंद इंदु[15] सम देह, उमारमन करुनायतन[16]।

६—चौ०—करिकर[17] सम प्रभुभुज दसकंधर।

इन उदाहरणों में साधारण धर्म का लोप किया गया है। इसी प्रकार और भी लुप्ताओं में केवल नाम ही से उसकी परिभाषा जान लेनी चाहिए।

---

१ कमल। २ महादेव। ३ वाणी। ४ कही। ५ पाप। ६ सर्प। ७ हीरे की माला। ८ मुक्ताफल, मोती। ९ समान। १० धनुष। ११ मुख। १२ कामदेव। १३ द्वितीया का चंद्रमा। १४ खंजन के बच्चे। १५ चंद्रमा। १६ दया के घर। १७ हाथी की सूँड़।

(३) उपमानलुप्ता

१—दो०—वाके से चंचल नयन जग काहू के हैं न।

२—दो०—सुंदर नंदकिसोर सो जग में मिलै न और।

३—सवैया

लक्खन राम से राज समाज में राजत कौन महीप के बारे।[1]

४—चौपाई

समर धीर नहिं जाय बखाना। तेहि सम नहिं प्रतिभट जग आना[2]

(४) उपमेयलुप्ता

१—सो०—चंचल हैं ज्यौं मीन, अरुनारे[3] पंकज सरिस।
निरखि न होय अधीन, ऐसी नर-नागर कवन।

२—सवैया

साँवरे गोरे घटा-छटा से बिहरैं मिथिलेस की बागथली[4] में।

(५) वाचकधर्मलुप्ता

जिसमें वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप किया जाय।

१—चौपाई

ईस-प्रसाद[5] असीस तुम्हारी। सब सुतबधू देवसरि-बारी[6]।

२—चौ०—बिधुबदनी[7] मृगसावक लोचनि।

३—दो०—लखु लखु सखि सारस[8]-नयन इंदु बदन घनस्याम।
बिज्जुहास[9] दाड़िमदसन[10], बिंबाधर[11] अभिराम॥

४—चौ०—केहरि[12]-कंधर चारु जनेऊ।

५—दो०—लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदंब की माल।

सूचना—इसके कथन में बड़ी सावधानी चाहिए। तनक ही भेद से यह अलंकार रूपक अलंकार हो जाता है।

---

१ बालक। २ अन्य। ३ लाल। ४ बाटिका। ५ महादेव जी की प्रसन्नता। ६ गंगाजल। ७ चंद्रमुखी। ८ कमल। ९ बिजली सी हँसी। १० अनार से दाँत। ११ बिंबाफल से ओंठ। १२ सिंह के समान कंधा।

(६) धर्मोपमान लुप्ता

जिसमें धर्म और उपमान का लोप किया जाय।

१—दो०—रे अलि मालति सम कुसुम, ढूँढ़ेहु मिलिहै नाहिं।

यहाँ मालती कुसुम उपमेय, सम वाचक मौजूद है। सुंदर मनोहर आदि धर्म का और 'मिलिहै नाहिं' कह कर उपमान का लोप किया गया है।

२—चौ०—आजु पुरंदर[1] सम कोउ नाहीं।

३—सो०—देखो दाडिम से दसन।

यहाँ 'दसन' उपमेय और 'से' वाचक मौजूद है। स्वेत, चमकीले इत्यादि धर्म का और 'दाडिम बीज' उपमान का लोप है, क्योंकि केवल 'दाडिम' दाँतों का उपमान नहीं कहा जा सकता। दाड़िम शब्द केवल उसका लच्चक है।

४—चौपाई

देख्यौं खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी॥

(७) धर्मोपमेय लुप्ता

जहाँ धर्म उपमेय का लोप किया जाय। जैसे—

१—सवैया

त्यौर तिरीछे किए मुनि संगहि हेरत संभु-सरासन[2] मार[3] से।
त्यौं 'लछिराम' दुहूँ कर बान कमान-सी भौंहै सुब्रह्मवतार से॥
सामुहें श्रीमिथिलापति के डटि ठाढ़े सही रस बीर-सिंगार से।
नीलम चंपक-माल से कौन? स्वयंबर में मृगराज-कुमार[4] से॥

यहाँ मार से, रस बीर-सिंगार से, नीलम चंपक-माल से और मृगराज-कुमार से इत्यादि में उपमान और वाचक मौजूद हैं। धर्म का प्रत्यच्च लोप है। अज्ञान-सूचक 'कौन' शब्द कह कर

१ इंद्र। २ धनुष। ३ कामदेव। ४ सिंह।

उपमेय का लोप किया गया है, जो मुनि-संग, श्रीमिथिलापति सामुहें, और स्वयंबर इत्यादि के साहचर्य से लक्षित होता है।

(८) वाचकोपमेय लुप्ता

जहाँ वाचक और उपमेय का लोप किया जाय जैसे—

१—दोहा—अटा[1] उदित होतो भयो, छबिधर पूरन चंद।

२—दोहा—चढ़ो कदम[2] पै कालिया, विषधर[3] देखो आय।

(९) वाचकोपमान लुप्ता

जिसमें वाचक और उपमान का लोप किया जाय।

१—दोहा—तेरे ये कटु बचनहू, सुनत हियो हरषात।

२—सो०—सूछम हरि-कटि-ऐन[4]।

३—चौपाई

चितवनि चारु मार-मद हरनी[5]। भावत हृदय जाति नहीं बरनी।

४—चौ०—अरुन नयन उर बाहु बिसाला।

५—सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।

६—चौपाई

सूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह[6] बिदेह[7] बिसेषी।

(१०) वाचक धर्म-उपमानलुप्ता

जिसमें केवल उपमेय का जिक्र हो और युक्ति से उपमान का अभाव कहा जाय।

१—सो०—राम सरूप तुम्हार, बचन-अगोचर[8] बुद्धि-पर[9]।

---

१ छत, अटारी। २ कदंब का वृक्ष। ३ सर्प। ४ ठीक सिंह की कमर के समान पतली। ५ कामदेव का मद हरने वाली। ६ जनक। ७ शरीर के ज्ञान से रहित। ८ वचनों से जो न जाना जा सके। ९ बुद्धि से परे।

२—चौपाई

अहै अनूप राम प्रभुताई। बुधि-बिबेक-बल तरकि न जाई[1]।

३—चौ०—देखि अनूप एक अमराई[2]।

४—चौ०—अति अनूप जहँ जनक-निवासू।

५—दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाय।

सूचना—'वाचक-धर्म-उपमेयलुप्ता' का 'रूपकातिशयोक्ति' अलग ही एक अलंकार है। 'धर्म-उपमान-उपमेयलुप्ता' में केवल वाचक रहेगा जिससे कोई अलंकारता नहीं आ सकती, और 'वाचकोपमेयोपमानलुप्ता' में केवल साधारण-धर्म के कथन से अलंकारता आ नहीं सकती।

—:०:—

१ अनुमान नहीं हो सकता। २ आम का बगीचा।

(लुप्तालंकार-सूचक चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	धर्म	वाचक
१—वाचक-लुप्ता	राम	काम	अभिराम	×
	नयन	वारिज	तरुन अरुन	×
२—धर्मलुप्ता	तुम	पुरुष	×	सम
	सो	नारी	×	सम
	देह	कुंद, इंदु	×	सम
३—उपमान-लुप्ता	नंदकिसोर	×	सुंदर	सो
	लक्खन-राम	×	राजत	से
४–उपमेय लुप्ता	×	घटा	साँवरे	से
	×	छटा	गोरे	से
५—वाचक-धर्मलुप्ता	सुतबधू	देवसरि-बारी	×	×
	कंधर	केहरि (कंधर)	×	×
६-धर्मोपमान-लुप्ता	पुरंदर	×	×	सम
	पुरुष	×	×	अस
७–धर्मोपमेय-लुप्ता	नारी	×	×	अस
	×	नीलमचंपक-माल	×	से
८–वाचकोपमेयलुप्ता	×	मृगराज-कुमार	×	से
	×	पूर्णचंद	छविधर	×
९—वाचकोपमानलुप्ता	नयन	×	अरुन	×
	उर	×	बिसाल	×
	बाहु	×	बिसाल	×
१०-वाचकधर्मोपमानलुप्ता	राम-प्रभुताई	×	×	×
	जनकनिवा-	×	×	×
	सू अमराई	×	×	×

उदाहरण

=राम काम अभिराम।

=तरुन अरुन बारिज नयन।

=तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

=कुंद-इंदु सम देह।

=सुंदर नंदकिसोर सो जग में मिलै न और।

=लक्खन-राम से राजसमाज में राजत कौन महीप के बारे।

=साँवरे गोरे घटा-छटा से बिहरैं मिथिलेस की बागथली में।

=सब सुतबधू देवसरि-बारी।

=केहरि-कंधर चारु जनेऊ।

=आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।

=कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी।

=नीलम चंपक-माल से कौन स्वयंबर में मृगराज-कुमार से।

=अटा उदय होतो भयो छबिधर पूरन चंद।

=अरुन नयन उर बाहु बिसाला।

= { अहै अनूप राम प्रभुताई।
अति अनूप जहँ जनक-निवासू।
देखि अनूप एक अमराई।

सूचना—जो पाठक उर्दू हिंदी, अँगरेज़ी तीनों भाषाएँ जानते हों। वे आगेवाले चक्र को भलीभाँति समझ लें—

हिंदी	उर्दू वा फ़ारसी	अँगरेज़ी
उपमा	तशबीह	सिमिली (Simile)
पूर्णोपमा	तशबीह कामिल	कंप्लीट सिमिली (Complete Simile)
उपमेय	मुशब्बह	दी सबजेक्ट कंपेयर्ड (The subject compared)
उपमान	मूशब्बह बिही	दी आबजेक्ट विद ह्विच दी कंपैरीज़न इज़ मेड। (The object with which the comparison is made)
वाचक	हर्फ़ तशबीह	दी वर्ड इंप्लाइंग् कंपैरीज़न (The word implyiug comparison)
धर्म	वजह तशबीह	दी कामन् ऐट्रीब्यूट (The common attribute)
लुप्तोपमा	तशबीह नामुकम्मल	इन्कंप्लीट सिमिली (Incomplete Simile)

(२) मालोपमा

दो०—जहँ एकै उपमेय के, बरनैं बहु उपमान।
भिन्न अभिन्नहु धर्म तें, मालोपमा बखान॥

विवरण—जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है—

(१) भिन्नधर्मा, (२) एकधर्मा

(१) भिन्नधर्मा मालोपमा

जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्-पृथक् धर्मों के वास्ते उपमा दी जाय। जैसे—

१—सवैया

तेज-निधानन[1] में रबि ज्यों छबिवंतन में बिधु[2] ज्यों छबि छाजै।
सैलन[3] में ज्यों सुमेरु लसै बर-वृच्छन में कलपद्रुम राजै॥
देवन में 'मतिराम' कहै मघवा[4] जिमि सोहत सिद्ध[5] समाजै।
राउ छतासुत[6] भाऊ दिवान जहान के राजन में इमि राजै॥

२—दो०—मरकत[7] से दुतिवंत हैं, रेसम से मृदु बाम[8]।
निपट[9] महीन सुतार से, कच[10] काजर से स्याम॥

३—चौपाई

बंदौं खल जस[11] सेस सरोषा। सहस-बदन[12] बरनै परदोषा॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज[13] समाना। पर-अघ सुनै सहसदस काना॥
बहुरिसक्र[14] सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक[15] हित जेही॥

४—दो०—सफरी[16] से चंचल घने, मृग से पीन[17] सुऐन।
कमलपत्र से चारु ये, राधेजू के नैन॥

(२) एकधर्मा मालोपमा

जहाँ सब उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय वा अनुमान कर लिया जाय।

---

१ तेज से युक्त। २ चंद्रमा। ३ पर्वत। ४ इंद्र। ५ एक प्रकार के देवता। ६ छत्रसाल के पुत्र। ७ नीलम। ८ टेढ़े, घुँघराले। ९ अत्यन्त पतले। १० बाल। ११ जैसे। १२ हज़ार मुख से। १३ राजा बेन का पुत्र। १४ इंद्र। १५ जिसे देवताओं की सेना प्यारी है, शराब जिसे अच्छी लगती है। १६ मछली। १७ पुष्ट।

१—हरिगीतिका

हिमवंत जिमि गिरिजा महेहसिं, हरिहिं[१] श्री[२] सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी बिस्व-कल-कीरति नई॥

२—हरिगीतिका

जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद्र बिनु जिमि जामिनी[३]।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥

३—चौपाई

बैनतेय[४] बलि जिमि चह कागू, जिमि सस[५] चहै नाग अरि[६] भागू।
जिमि चह कुसल अकारन कोही[७], सुख संपदा चहै सिवद्रोही।
लोभी लोलुप कीरति चहई, अकलंकिता कि कामी लहई।
हरिपद-बिमुख परमगति चाहा तस तुम्हार लालच नरनाहा[८]॥

४—क०—सारद[९] सो सेस सो, सुधा सो, सक्र सिंधुर[१०] सो,
सुरसरिता[११] सो सूर ससि सो बखान है।
हंसन सो, हीरन सो, हिम सो, हलायुध[१२] सो,
हरगिरि[१३], हास्यहू सो, जपत जहान है॥
भनत 'मुरार' घनसार[१४] सर्दघनहू[१५] सो,
पारद[१६] सो, पय[१७] सो पिनाकी[१८] सो प्रमान है।
आज युद्ध-जीत[१९] जंस तखत महीप तेरो,
दीप-दीप दीपै दीपमालिका समान है॥

---

१ विष्णु को। २ लक्ष्मी। ३ रात्रि। ४ गरुड़। ५ खरगोश। ६ सिंह। ७ क्रोधी। ८ नरनाथ, राजा। ९ सरस्वती। १० इंद्र का हाथी, ऐरावत। ११ गंगा। १२ बलराम। १३ कैलास। १४ कपूर। १५ शरत्कालीन बादल। १६ पारा। १७ दूध। १८ महादेव। १९ युद्ध को जीतनेवाले।

५—सवैया—भृगुनंद[1] कुठार सी, बासव[2] बज्र सी........।
त्रिपुरारि-त्रिसूल सी श्रीपति चक्र सी 'बंक' कहै बड़वानल-सी।
नरसिंह-नखालि[3] सी खेत[4] में काली सी सेस मुखानल की झल[5] सी।
तरवार तिहारिय मान महीपति है बिकराल हलाहल[6] सी।

६—सवैया

सारद नारद पारद अंग सी छीर-तरंग सी गंग की धार सी।
संकर-सैल सी चंद्रिका फैल सी सारस[7]-रैल सी हंस कुमार सी।
'दास' प्रकास हिमाद्रिबिलास सी कुंद सी काँस सी मुक्ति डार सी।
कीरति हिंदु-नरेस की राजति उज्ज्वल चारु चमेली के हार सी।

७—कवित्त—इंद्र जिमि जंभ[8] पर बाड़व[9] सुअंभ[10] पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।
पौन बारिबाह[11] पर संभु रतिनाह[12] पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम-द्विजराज है॥
दावा[13] द्रुमदंड[14] पर चीता मृग-झुंड पर,
'भूषन' बितुंड[15] पर जैसे मृगराज[16] है।
तेज तिमिरंस[17] पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है॥

८—कवित्त—सक्र[18] जिमि सैल पर अर्क[19] तम फैल पर,
बिघन की रैल[20] पर लंबोदर[21] लेखिए।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,

---

१ परशुराम। २ इंद्र। ३ नृसिंह के नखों का समूह। ४ क्षेत्र (युद्ध-भूमि)। ५ आग की लपट। ६ विष। ७ कमल। ८ महिषासुर का पिता जिसे इंद्र ने मारा था। ९ बाड़वाग्नि। १० जल। ११ बादल। १२ कामदेव। १३ दावाग्नि। १४ वृक्ष की लकड़ी। १५ हाथी। १६ सिंह। १७ अंधकार का अंश। १८ इंद्र। १९ सूर्य। २० समूह। २१ गणेश।

'भूषन' ज्यों सिंधु पर कुंभज[1] बिसेषिए ॥
हर ज्यौं अनंग[2] पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ[3] ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग[4] पर,
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिए ॥

(समुच्चयोपमा)

कोई-कोई कवि 'समुच्चयोपमा' नाम का एक और भी अलंकर मानते हैं, जिसका लक्षण यह है कि उपमेय और उपमान की समता कई-एक धर्मों के कारण की जाय। जैसे--

१—दो०—चंपक-कलिका सी अहै, रूप रंग अरु बास[5]।

यहाँ एक ही उपमेय (किसी नायिका) की समता एक ही उपमान (चंपक-कलिया) से रूप, रंग और बास तीन धर्मों के कारण की गई है।

२—दो०—बहुबर्नी[6] सहज-प्रिया, [7]तमगुनहरा[8] प्रमान।
जगमारग-दरसावनी, सूरज-किरन समान ॥

(३) रसनोपमालंकार

दो०—कथित प्रथम उपमेय जहँ, होत जात उपमान।
ताहि कहैं रसनोपमा, जे जग सुकबि-प्रधान ॥

विवरण—कई-एक उपमालंकारों की एक शृंखलाबद्ध श्रेणी को, जिसमें क्रमशः प्रथम कहा हुआ उपमेय उपमान होता जाता है, रसनोपमा कहते हैं।

---

१ अगस्त्य। २ कामदेव। ३ अर्जुन। ४ हाथी। ५ सुगंध। ६ बहुत से रङ्गवाली। ७ प्रजा (मनुष्यों) को प्यारी। ८ तम (अंधकार, तमोगुण) को हरने वाली।

उदाहरण—

६—दो०—मति सी नति[1], नति सो बिनति, बिनती सी रति[2] चारु।
रति सी गति, गति सी भगति, तो मैं पवनकुमारु[3]॥

२—क०—बंस[4] सम बखत[5], बखत सम ऊँचो मन,
मन सम कर[6], कर सम करी[7] दान के।

३—मुकुर[8] सम बिधु, [9]बिधु सरिस मुख, मुख समान सरोज[10]॥

४—सवैया

न्यारो न होत बफारो[11] ज्यों धूम[12] तें, ज्यों जातघने-घन[13] में मिलि
'दास' उसास मिलै जिमिपौन[14] में, पौनज्यों पैठत आँखिन में पिलि
कौन जुदी करै लोन ज्यों नीर में, नीरज्यों छीर में जातखरोखिलि
यों मति मेरी मिली मन मेरे सों, मो मन गो मनमोहन सों मिलि

५—दो०—बच सी माधुरि मूरती, मूरति सी कल कीति[16]।
कीरति लौं सब जगत में, छाय रही तव नीति॥

६—दो०—सुभ स्वरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ग्यान।
सुगुन ग्यान सम उद्यमहु, उद्यम से फल जान॥

(४) अनन्वयोपमा

दो०—जहाँ होय उपमेय को; उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वय कहत हैं; जे जन परम सुजान॥

विवरण—जहाँ उपमान के अभाव के कारण एक ही वस्तु उपमेय और उपमान दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयालंकार होगा।

१—नम्रता। २ प्रेम। ३ हनुमान। ४ कुल। ५ भाग्य। ६ हाथ। ७ हाथी। ८ शीशा। ९ चन्द्रमा। १० कमल। ११ भाफ। १२ धुआँ। १३ बादल। १४ वायु। १५ बढ़िया हो जाता है। १६ कीर्ति।

१—चौपाई

लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन सम ये उपमा उर आनी॥

२—हरिगीतिका

उपमा न कोउ कह 'दास तुलसी' कतहुँ कवि कोबिद[१] लहैं।
बल विनय विद्या सील सोभा-सिंधु इन सम येइ अहैं॥

३—दो०—मिली न और प्रभा रती[२], करी भारती[३] दौर।
सुंदर नंदकिसोर से, सुंदर नंदकिसोर॥

४—दो०—निरवधि[४], गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि।

५—चौ०—स्वामि गुसाइहि सरिस गुसाईं।
मोहिं समान मैं स्वामि दोहाईं॥

६—सवैया

श्रीरघुनाथ-प्रताप लौं भूपर श्रीरघुनाथ प्रताप की लाली।

७—सवैया

मैथिली[५] सी तिहुँ लोकन में मिली मैथिली की सुभ सुंदरताई।

८—सवैया

राम से राम, सिया सी सिया सिर मौर बिरंचि[६] विचारि सँवारे।

(५) उपमेयोपमा

दो—उपमा लागै परस्पर; सो उपमा-उपमेय।

विवरण—जहाँ उपमेय के लिये केवल एक ही उपमान हो, तीसरी सदृश वस्तु का अभाव हो, वहाँ 'उपमेयोपमा' अलंकार कहा जायगा। जैसे—

१—चौ०—वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।

१ पंडित। २ थोड़ी भी। सरस्वती। ४ सीमा रहित। ५ जानकी। ६ ब्रह्मा।

२—सवैया

तो मुख सो ससि सोहत है बलि सोहत है ससि सो मुख तेरो।

३—सवैया

भूपर भाऊ महीपति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो।

४—सवैया

लक्खन-राम कलाधर[1] से सो कलाधर लक्खन-राम सो सोहै।

५—दो०—सुधा सन्त के बैन सम, बैन सुधा सम जान।
बैन खलन के बिषहि से, विष खल बैन समान॥

६—सवैया

अंबरगंग[2] सी हैं सरजू, सरजू सम गंग-छटा नभ[3] साजै।
यों 'लछिराम' सुदेव से सेबक, सेवक से सुभदेव समाजै॥
सोहैं सुरेस[4] से राम-नरेस, सुरेसहु राम-नरेस सो राजै।
औधपुरी अमरावती[5] सी, अमरावती औधपुरी सी बिराजै।

सूचना—ये ऊपर लिखे हुए पाँचों अलङ्कार उपमा ही के भिन्न-भिन्न भेद हैं। प्राचीन कवियों ने उपमा के और भी अनेक भेद माने हैं, पर उनमें कोई विशेष बिलक्षणता नहीं है।

उपमा अलंकार ही कविता की जान और कवियों का पुष्ट आधार है। आगे के अनेक अलंकारों में भी 'उपमा' ही प्राणवत् अंतर्हित रहेगी। इसलिये इनमें उपमेय और उपमान के लिये जो शब्द लिखे जायेंगे वे केवल पर्याय-मात्र होंगे। उन्हें यहीं समझ लेना चाहिए।

उपमेय = { वर्ण्य, प्रस्तुत }, उपमान = { अवर्ण्य, अप्रस्तुत }

१ चंद्रमा। २ आकाश-गंगा। ३ आकाश। ४ इंद्र। ५ इंद्रपुरी।

(६) ललितोपमा

दो०—जहँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा, सकल कबिन के गोत ॥

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, लौं, इव, तुल्य इत्यादि पद न लाकर ऐसे पद लाए जाते हैं जिनसे उपमेय और उपमान में बराबरी मुक़ाबला, मित्रता, ईर्षा इत्यादि सूचक भाव प्रकट होते है उसे 'ललितोपमा' कहते हैं।

दो०—बहसत[1], निदरत, हँसत, अरु छबि-अनुहरत[2] बखानि।
सत्रु, मित्र, अरु होड़कर[3], 'लीलादिक' पद जानि ॥

विवरण—जहाँ बहसत, हँसत, निदरत, छबि अनुहरत, शत्रु है, मित्र है, होड़ लगी है इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द उपमेय और उपमान की बराबरी प्रकट करने के लिये आते हैं, वहाँ 'ललितोपमा' समझना चाहिए। जैसे—

१—क०—साहि तनै सरजा[4] सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी[5] सुर की सभा को निदरति है।
'भूषन' भनत जाके एक-एक सिखर तें,
केते धौं नदी-नद की रेल[6] उतरति है ॥
जोन्ह[7] को हँसति जोति हीरा-मनि मंदिरन,
कंदरन मैं छबि कुहू[8] की उछरति है।
ऐसी ऊँचो दुरग महाबली को जामैं,
नखतावली सों बहस दीपावली करति है ॥

१ बहस करना। २ शोभा की समानता होना। ३ बराबरी करना। ४ शिवाजी की उपाधि, शरजाह। ५ सुमेरु पर्वतवाली। ६ प्रवाह। ७ चाँदनी। ८ अमावस्या।

२—सवैया

उत स्याम-घटा इत हैं अलकैं बन-पाँति उतै इत मोती लरी।
उत दामिनि दंत-चमंक इतै उत चाप[1] इतै भ्रुव बंक[2] धरी॥
उत चातक तों पिउ-पीउ रटै बिसरै न इतै पिउ[3] एक घरी।
उत बूँद अखंड इतै अँसुवा बरखा बिरहीनि तें होड़ परी॥

सूचना—इसी को केशवदास ने 'संकीर्णोपमा' कहा है और उदाहरण दिया है—

३—क०-बिधु कैसो बन्धु, किधौं चोर हास्य रस को कि,
कुंदन[4] को बादी किधौं मोतिन को मीत है॥
किधौं केशवदास रामचंद्र जू को गीत है।

यहाँ रामजी के यश की 'श्वेतता' दरसाने के लिये बिधु को बंधु, हास्यरस का चोर, कुंदन का बादी (मुद्दई) और मोती का मित्र कहा है। इसी प्रकार का कथन 'ललितोपमा' कहलाता है क्योंकि ऐसे कथनों से एक प्रकार की समता ही प्रकट होती है।

(७) प्रतीप

सूचना—'प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'उल्टा'। अलंकार-शास्त्र में इसका अर्थ लिया जाता है 'उपमा के अंगों का उलटफेर'। उपमा अलंकार में जिस जगह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं। ठीक उसके प्रतिकूल इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते हैं। ऐसा करने से उपमेय की उत्कृष्टता, उपमालंकार की अपेक्षा कुछ और अधिक बढ़ जाती है। यही इस अलंकार का तात्पर्य है। प्राचीनों ने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं। यथा—

१ धनुष। २ टेढ़ी भौंह। ३ प्रिया। ४ सोना।

(पहला प्रतीप)

दो०—जहँ प्रसिद्ध उपमान को, पलटि करिय उपमेय।
तासों प्रथम प्रतीप कवि, बरनत बुद्धि अजेय॥

पायन से गुललाला[1] जपादल[2] पुंज बँधूक[3] प्रभा बिथरै है।
हाथ से पल्लव नौल[4] रसाल के लाल प्रभाव प्रकास करै है॥
लोचन की महिमा सी त्रिबेनी लखे 'लछिराम' त्रिताप हरै है।
मैथिली आनन से अरबिंद कलाधर[5] आरसी जानि परै है॥

२—सो०—तो पद से अनुमानि, तरुन अमल कोरे कमल।
याही ते सनमानि, अवतंसित[6] मोहन करे॥

३—दो०—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाय मन-काम।
उतरि नहाए जमुनजल, जो सरीर-सम स्याम॥

इन उदाहरणों पर विचार करने से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि पैर, हाथ, लोचन मुख और शरीर (वा शरीर का रंग) जो उपमा अलंकार में उपमेय माने जाते, वे यहाँ उपमान हो गए हैं और गुललाला, जपादल, बंधूक, रसाल-पल्लव, त्रिवेणी, कमल और जमुनाजल जो उपमा में उपमान ठहराए जाते, यहाँ उपमेय हो गए हैं। यही 'उपमा के अंगों का उलट-फेर' है।

(दूसरा प्रतीप)

दो०—जहाँ होय उपमान सों, उपमेय को अवमान।
तहँ दूसरो प्रतीप है, नव प्राचीन प्रमान॥

---

१ एक लाल पुष्प। २ गुड़हर। ३ फूल दुपहरिया। ४ नवल, नया। ५ चंद्रमा। ६ खंजन।

विवरण—उपमेय से उपमान को कुछ बढ़कर जताना। इस अलंकार में सूरदास का यह पद बहुत अच्छा है।

१—पद—नंदनंदन के बिछुरे अँखिया उपमा-जोग नहीं।
कंज खंज[1] मृग मीन न होहीं कविजन वृथा कहीं॥
कंज होति मुँदि जाति पलक में जामिनि[2] होत जहीं।
खंज होत उड़ि जात छिनक में प्रीतम है जितहीं॥
मृग होतीं रहतीं निसिबासर चंदबदन ढिगहीं[3]।
रूप-सरोवर तें बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं॥

२—बरवा—गरबु करौ रघुनंदन, जिन मन माहँ।
आपनि देखा आँखिन मूरति, सिय कै छाहँ॥

३—दो०—महाराज रघुराजजू, कीजत कहा गुमान।
दंड[4] कोष[5] दल[6] के धनी, सरसिज तुमहिं समान॥

४—बरवा—का घूँघुट मुख मूँदौ, अबला नारि।
चंद सरग पै सोहत, यहि अनुहारि॥

(तीसरा प्रतीप)

दो०—जहँ बरनत उपमेय तें, कछु हीनो उपमान।
तहँ तीसरो प्रतीप है, कबि-जन करो प्रमान॥

विवरण—जहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान में कछु लघुता वर्णन की जाय।

१—सवैया

श्रीरघुबीर-सिया छबि सामुहे स्याम-घटा बिजुरी परै फीकी।

२—दो०—करत गर्व तू कल्पतरु, बड़ी सो तेरी भूल।
या प्रभु की नीकी, नजर तकि[7] तेरे ही तूल[8]

१ खंजन। २ रात्रि। ३ पास। ४ पद्मदंड, राजदंड। ५ पद्म कोश, खजाना। ६ पँखुड़ी, सेना। ७ देखो। ८ तुल्य, समान।

३—दो०—कुलिसहु चाहि[1] कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुभि परै कहु काहि॥

४—सवैया

मान महीपति के मन आगे लगै लघु काँकर सो कनकाचल[2]।

(चौथा प्रतीप)

दो०-सरवरि में उपमेय की, जब न तुलै उपमान॥
चौथो भेद प्रतीप को, तहँ बरनै मतिमान॥

१—चौपाई

बहुरि विचार कीन मन माहीं। सीय-बदन सम हिमकर[3] नाहीं॥

२—दो०—तो मुख ऐसो पंकसुत[4] अरु मयंक[5] यह बात।
बरनैं सदा असंक कबि, बुद्धि-रंक बिख्यात॥

३—दो०—तुव मुख के सम ह्वै सकत कहा बिचारा चंद।

४—चौ०—कोटि काम उपमा लघु सोऊ।

(पाँचवा प्रतीप)

दो०-उपमेय के मुकाबिले, ब्यर्थ होय उपमान॥
पंचम भेद प्रतीप को, ताहि कहत गुनवान॥
या भूषन के जानिए 'बाचक' कितक; निकाम।
मंद, वृथा, कछु नहिं, कहा, मिथ्या, निफल गुलाम॥

१—दो०—अमिय झरत चहुँ ओर सों, नयन-ताप हरि लेत।
राधाजू को बदन अस, चन्द उदय केहि हेत॥

२—दो०—प्रभाकरन तमगुनहरन, धरन सहसकर[5] राजु॥
तब प्रताप ही जगत मैं, कहा भानु सों काजु॥

---

१ बढ़ कर। २ सुमेरु। ३ चंद्रमा। ४ कमला। ५ सहस्र किरणें, हज़ारों प्रकार के राज कर।

३—दो—जहँ राधा आनन उदित, निसि-बासर सानंद।
तहाँ कहा अरबिन्द है, कहा बापुरो चंद॥
४—(व० तिलका) याको प्रताप यस लोक है प्रकास ही।
हैं ये वृथा करत चित्त जबै जबै ही॥
धाता प्रभाकर निसाकर के तबै ही।
रेखा करै चहुँघ[1] मंडल व्याज[2] तै ही॥
५—दो०—जब जब जसबंत-तेज-जस, बिधना लेत जू देख।
व्यर्थ समुझि रबि ससि करत, कुंडल मिस परिबेख[3]॥
६—दो०—कल्पवृक्ष केहि काम को, जब हैं नृप जसवंत।

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी, अरबी तथा उर्दू में 'तशबीह-माक़ूस' कह सकते हैं।

(८) रूपक

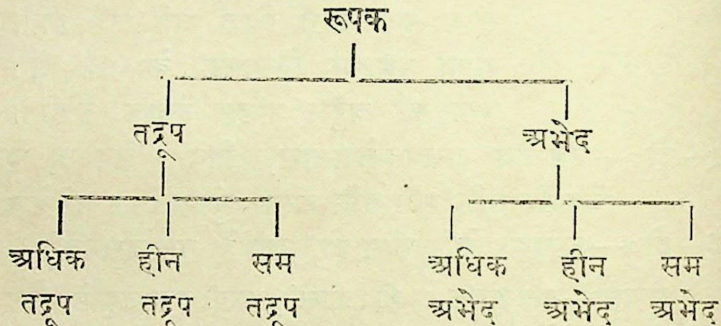
दो०—उपमानऽरु उपमेय तें, बाचक-धर्म मिटाय।
एकै कै आरोपिए, सो रूपक कबिराय॥
जो काहू के रूप इव, रूप बनावै और।
रूपक ताही सों कहैं, सब सुकबि-सिर मौर॥
(मुरारिदान)

कहुँ कहिये यह दूसरो, कहुँ राखिए न भेद।
अधिक, हीन, सम त्रिबिध पुनि, ते तद्रूप अभेद॥

विवरण—पूर्णोपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिटा कर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करे अर्थात् उपमेय और उपमान को एक ही मान लें, यही रूपक अलंकार होगा।

१ चारों ओर। २ बहाना। ३ घेरा।

इस अलंकार के पहले दो भेद—(१) तद्रूप और (२) अभेद। फिर प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार—(१) अधिक, (२) हीन और (३) सम होते हैं। इस तरह इसके ६ प्रकार हो जाते हैं।



(१) तद्रूप रूपक

जहाँ उपमान को उपमेय रूप करके वर्णन करें, वहाँ तद्रूप रूपक है। इसमें बहुधा अपर, दूसरा, अन्य इत्यादि शब्द वाचक होकर आते हैं।

(क) अधिक तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ गुण बढ़कर हो, तो भी तद्रूप कहें।

१—दो०—जस-धुज वा धुज तें अधिक, तीन लोक फहरात।
धर्म-मित्र बड़ मित्र तें, मरत जियत संग जात॥

यहाँ यश को ध्वजा ही करके वर्णन किया है, और धर्म को मित्र ही करके, परंतु यश रूपी ध्वजा में यह अधिक गुण कहा कि वह तीनों लोकों में फहराती है (साधारण ध्वजा में यह गुण नहीं) और धर्ममित्र में यह अधिकता है कि वह मरने के अनंतर भी साथ देता है (जो साधारण मित्र नहीं कर सकता)।

२—दो०—मुख-ससि वा ससि तें अधिक, उदित ज्योति दिनरात।

(ख) हीन तद्रूप रूपक

उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनों को एक रूप ठहरावें।

उदाहरण—

१—दो०—अपर धनेस[1] जनेस यह, नहिं पुष्पक-आसीन।
द्वितिय गनेस सुबेस सुचि, सोहत सुंड-बिहीन॥

२—दो०—बिप्रन के मंदिरन तजि, करत आँच सब ठौर।
भाउसिंह भूपाल को, तेज-तरनि[2] यह और॥

३—बरवा—दुइ भुज के हरि रघुबर, सुंदर भेस।
एक जीभ के लछिमन, दूसर सेस॥

४—दो०—फिरत फिरत जहँ तहँ कहो, मानत नहिं बदफैल[3]।
यह अजान है दूसरो, बिन विषान[4] को बैल॥

५—दो०—हौ समदृष्टी[5] संभु तुम जग-जाहिर जसवंत।
हौ ब्रह्मा मुख चारि बिन, मरुपति बिस्व बदंत[6]॥

६—दो०—तुव अरि नारिन के लिए, सुनु जसवंत महीप।
बन औषधियाँ होति हैं, बिन कज्जल के दीप॥

७—कवित्त—साहितनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगिर[7] कलंक चंद उर आनियतु है।
पंचानन[8] एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन[9] गजबदन बिना बखानियतु है॥
एक सीस ही सहससीस[10] कला करिबे को,
दोई दृग सों सहसदृग[11] मानियतु है।

---

१ कुबेर। २ सूर्य। ३ कुकर्मी। ४ सींग। ५ दो दृष्टि वाले। ६ कहते हैं। ७ बिना। ८ शिव। ९ गणेश १० शेषनाग। ११ इंद्र।

दोई कर सों सहसकर[1] मानियतु तोहि,
दोई बाहु सो सहसबाहु जानियतु है॥

(ग) सम तद्रूप रूपक

१—दो०—नैन कमल ये ऐन हैं, और कमल केहि काम
२—स०—छाँह करैं छितिमंडल को सब ऊपर यों 'मतिराम' भए हैं।
पानिप[2] को सरसावत है सिगरे जग के मिटि ताप गए हैं।
भूमि-पुरंदर भाऊ के हाथ पयोदन[3] ही के सुकाज ठए हैं।
पंथिन के पथ रोकिबे को नभ बारिद-बृंद बृथा उनए हैं।
३—दो०—रच्यौ बिधाता दुहुन लै, सिगरी सोभा साज।
तू सुंदरि रति दूसरी, यह दूजो सुरराज॥
४—दो०—अपर रमा[4] ही मानियत, तोहि साध्वी गुनवंति।

(२) अभेद रूपक

उपमेय और उपमान की अभेदता-सूचक रूपक को 'अभेद रूपक' कहते हैं। तद्रूप रूपक में अपर, दूसरों और अन्य अथवा भिन्नतासूचक कोई शब्द कहकर केवल तद्रूपता प्रकट की जाती है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है। इस अभेद रूपक में ऐसा नहीं किया जाता, वरन् उपमान को ठीक उपमेय का रूप ही मानकर वर्णन करते हैं।

(क) अधिक अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण दिखलाकर एक रूपता स्थापित की जाय, वहाँ यह अलंकार होता है, यथा—

१—सवैया

जंग में अंग कठोर महा मदनीर झरै झरना सरसे हैं।
झूलन रंग घने 'मतिराम' महीरुह[5] फूलि प्रभान फँसे हैं।

---

१ सूर्य। २ पानी, सौंदर्य। ३ बादल। ४ लक्ष्मी। ५ वृक्ष।

सुंदर सिंदुर-मंडित कुंभन[1] गैरिक शृंग[2] उतंग लसे हैं।
भाउ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी[3] बकसे हैं।

यहाँ हाथी को पहाड़ माना है, पर इतना अधिक कहा है कि ये हाथी 'सजीव' पहाड़ हैं (पहाड़ निर्जीव वस्तु है)।

२—दो०—तुव मुख में अरु चंद में, कछू भेद न लखाय।
एक बगैर कलंक के, तुव मुख जानो जाय॥

३—चौपाई

नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुवर-किंकर[4] कुमुद-चकोरा।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग-नभ दिनदिन दूना।

४—कवित्त—रन-बन[5] घूमै तुव भुज-लतिका पै चढ़ी,
कढ़ी म्यान-बाँबी तें बिषम विष भरी है।
जा अरि को डसै सो तो तजै प्रान ताही छिन,
गारडू[6] अनेक हारे झारे तें न झरी है॥
भनत 'कबिंद' राउ बुद्ध अनिरुद्ध-तनै,
जुद्ध-बीरता सों एक तैं ही बस करी है।
तरल तिहारी तरवार पन्नगी[7] को कहूँ,
तंत्र है न मंत्र है न जंत्र है न जरी[8] है॥

(ख) हीन अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ कमी दिखलाकर भी रूपक बाँधा जाय। यथा—

१—दो०—महादानि जाचकन को, भाऊ देत तुरंग[9]।
पच्छन बिगर बिहंग[10] हैं, सुंडन बिगर मतंग[11]॥

---

१ हाथी का मस्तक। २ गेरू के पर्वत की चोटियाँ। ३ हाथी। ४ दास। ५ अरण्य, जंगल। ६ सर्प का विष झाड़ने वाला। ७ नागिन। ८ जड़ी। ९ घोड़ा। १० पक्षी। ११ हाथी।

२—दो०—कलियुग सतयुग सो कियो, खल दल सकल सँहारि।
भुवन भरन-पोषन करत, द्वै भुजधर दनुजारि[1] ॥
३—दो०—सबके देखत व्योम-पथ, गयो सिंधु के पार।
पच्छिराज[2] बिन पुच्छ को, बीर समीरकुमार[3] ॥
४—दो०—है राधे तू उरबसी, धरे मानुषी देह।

(ग) सम अभेद रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान की पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन की जाय। यथा—

१—चौपाई

राम-कथा सुंदर करतारी। संसय-बिहँग उड़ावनहारी।
२—स०—कामना आठहु जास फलै कलपद्रुम राम नरेस हमारे।
३—दो०—नारि-कुमुदिनी अवध-सर, रघुबर-बिरह-दिनेस[4]।
अस्त भए बिकसित भई, निरखि राम-राकेस[5] ॥
४—दो०—संपति-चकई भरत-चक, मुनि-आयसु खेलवार।
तेहि मिसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनसार[6] ॥

सूचना—वास्तव में सच्चा और शुद्ध रूपक यही है।

विवरण—अर्थ-निर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरण के अनुसार तो रूपक के यही छः भेद हैं जो, ऊपर कहे गए। परंतु वर्णन-प्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन प्रकार कहे जा सकते हैं, अर्थात् (१) सांग, (२) निरंग और (३) परंपरित।

(१) सांग रूपक

वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है; जैसे--

१ विष्णु। २ गरुड़। ३ हनूमान। ४ सूर्य। ५ चंद्र। ६ सवेरा।

१—पद—देखो माई सुंदरता को सागर।

बुधि बिवेक बल पार न पावत मगन होत मन-नागर[1] ॥१॥

तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि[2] करि-पटपीत तरंग।
चितवत चलत अधिक छबि उपजत भँवर परत सब अंग ॥२॥

नैन मीन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुतमाल मिलि मानों सुरसरि[3] द्वै सरिता लिए संग ॥३॥

मोर-मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिनि नख-चंद।
मनु अडोल बारिधि में बिंबत राका[4] उडुगन[5] बृंद ॥४॥

बदन चंद्र-मंडल की सोभा अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियो ससि श्री[6] अरु-सुधा-समेत ॥५॥

देखि सरूप सकल गोपी जन रहीं बिचारि बिचारि।
तदपि 'सूर' तरि सकीं न सोभा रही प्रेम पचि हारि ॥६॥

यहाँ सूरदास ने श्रीकृष्ण की छवि में समुद्र का रूपक सांगोपांग बाँधा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में काशीपुरी के लिये कामधेनु का सांगरूपक बाँधा है। जिसका आरम्भ यों है :—

२—पद—सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी"।

तुलसीदास ने अपने 'रामचरित-मानस' (रामायण) के बालकांड में 'मानसरोवर' का रूपक, लंकाकांड में 'विजय रथ' का रूपक और उत्तरकांड में 'ज्ञानदीपक' और 'मानसरोग' का सांगरूपक बहुत ही अच्छा कहा है। पाठकों को समझ लेना चाहिए।

---

१ चतुर। २ समुद्र। ३ गंगा। ४ पूर्णिमा। ५ तारागण। ६ लक्ष्मी।

३—पद—नंदनंदन वृंदाबन-चंद ।
जदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन-बंद[1] ॥१॥
जठर-कुहू[2] तें बहिरि बारिनिधि दिसि मधुपुरी[3] स्वछंद ।
बसुदेव संभु सीस धरि आने गोकुल आनंद-कंद ॥२॥
ब्रज-प्राची[4] राका तिथि जसुमति सरस सरद ऋतु नंद ।
उडुगन सकल सखा संकर्षन[5] तम-दनुकुल जो निकंद[6] ॥३॥
गोपीगन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल-द्वंद[7] ।
'सूर' सुदेस कला षोड़स[8] परिपूरन परमानंद ॥४॥

सूचना—इस 'सांगरूपक' को अँगरेज़ी में सस्टेंड मेटैफर (Sustained metaphor) कहते हैं ।

सांगरूपक के पुनः दो प्रकार हैं—

(१) समस्तवस्तु-बिषयक । (२) एक देश-विवर्ति ।

(क) समस्तवस्तु-विषयक सांगरूपक

इसके उदाहरण कई एक ऊपर लिख आए हैं । कुछ और लिखते हैं । यथा—

१—दो०—उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुबर बाल-पतंग[9] ।
बिकसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग ॥

२—चौपाई

नृपन केरि आसा निसि नासी । बचन नखत[10] अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ।
भये बिसोक कोक[11] मुनि देवा । बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥

१ बंदनीय, वंद्या । २ अमावस्या । ३ मथुरा । ४ पूर्वदिशा । ५ बलराम । ६ अंधकार रूपी दैत्यों का संहार करने वाले । ७ टकटकी लगा कर । ८ सोलह । ९ सूर्य । १० नक्षत्र । ११ चक्रवाक ।

३—दो०—रामनाम नरकेसरी[1], कनककसिपु कलिकाल।
जापक-जन प्रहलाद-जिमि दलि पालिहि सुरसाल[2]॥
४—दो०—वर्षाऋतु रघुति-भगति, 'तुलसी' सालि[3] सुदास।
राम नाम बर बरन[4] जुग, सावन भादों मास॥

(ख) एकदेश विवर्ति रूपक

वह कहलाता है जिसमें कुछ अंगों का निरूपण किया जाता है और कुछ का नहीं। जैसे—

१—दो०—नाम पहरुवा दिवस-निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद-जंत्रिका, प्रान जाहि केहि बाट॥

यहाँ नाम, ध्यान और लोचन का रूपक पहरु, कपाट और यंत्र (ताला) से किया गया है, किंतु 'प्राण' का रूपक जो क़ैदी (वदी) से होना चाहिए था, नहीं किया गया—अर्थ-कर्त्ता अपनी बुद्धि से लगा लिया है।

(२) निरंग रूपक

वह कहलाता है जिसमें केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है। जैसे—

१—दो०—अवसि चलिय बन राम पहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोक-सिंधु बूड़त सबहिं, तुम अवलंबन दीन्ह॥

यहाँ शोक को समुद्र रूप मान लिया है, उसके और अंग नहीं कहे गए। इसी प्रकार और भी जानो।

२—पद

'तुलसीदास' यह बिपति-बाँगुरों तुमहिं सो बनै निवेरे[5]।

यहाँ 'विपत्ति' पर बाँगुर (जाल) का आरोप है।

---

१ नृसिंह। २ देवताओं को कष्ट देने वाले। ३ धान्य। ४ अक्षर। ५ छुड़ाते।

३—पद

महामोह मृगजल-सरिता[1] महँ बोरयो हौं बारहिं बार।

यहाँ 'मोह' पर मृगजल-सरिता का आरोप है।

सूचना—कभी-कभी कवि लोग निरंग रूपक को मालाकार भी वर्णन करते हैं यथा—

४—कवित्त—बिधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरिपद-पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पदमाकर' गिरीस[2] सीसमंडल की,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्यपथ,
जन्हु-जय-योगफल फैल को फहर[3] है।
छेम की छहर[4] गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर[5] जमजाल को जहर है॥

यहाँ गंगा जी की 'लहर' पर अनेक आरोप हैं और वे सब निरंग हैं।

(३) परंपरित रूपक

यह कहलाता है जहाँ मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है अर्थात् मुख्य रूपक एक और (अंतर्गत) रूपक पर निर्भर होता है। जैसे—

१—सो०—सुनिय तासु गुन-ग्राम जासु, नाम अघखग-बधिक।

यहाँ श्रीराम 'नाम' पर 'बधिक' होने का आरोप किया गया, परंतु ऐसा क्यों किया गया? इसलिये कि पहले 'अघ' पर 'खग' होने का आरोप कर चुके हैं—अर्थात् 'रामनाम' के बधिक होने की सिद्धि के लिए पहले ही अघ को खग कह

१ मृग तृष्णा। २ शिव। ३ फैलाव। ४ विस्तार। ५ आफत।

डाला हैं, नहीं तो रामनाम पर बधिक का आरोप न हो सकता इसी प्रकार और भी जानो।

२—सो०—सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम-तम-रबिकर[1] बचन मम।

३—पद्धरि

(क) बंदौं रघुपति करुनानिधान। जाते छूटै भवभेद-ज्ञान।
(ख) रघुबंस-कुमुद सुखप्रद-निसेस[2]। सेवित पद-पंकज अज[3]महेस
(ग) निज भक्तहृदय-पाथोज[4]-भृंग। लावन्य-वपुष अगनित अनंत।
(घ) अति प्रबल मोह-तम-मारतंड[5]। अज्ञान-गहन-पावक-प्रचंड।
(ङ) अभिमान-सिंधु-कुंभज उदार। सुररंजन भंजन-भूमिभार।
(च) रागादि सर्पगन पन्नगारि[6]। कंदर्प-नाग-मृगपति[7] मुरारि।
(छ) भवजलधि-पोत[8] चरनारबिंद। जानकी रमन आनंद कंद।
(ज) हनुमंत प्रेम-वापी-मराल[9]। निष्काम-कामधुकगो दयाल।
(झ) त्रैलोक्यतिलक गुनगहनराम। कह 'तुलसिदास' बिश्राम धाम।

इस पद में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज और झ सब में परंपरित रूपक है।

४—चौपाई

मोह महाघन-पटल-प्रभंजन[10]। संसय-बिपिन-अनल[11]सुररंजन।
अगुन सगुन गुनमंदिर सुंदर। भ्रमतम प्रबल प्रताप-दिवाकर[12]

५—चौपाई

काम क्रोध-मद-गज-पंचानन[13]। बसहु निरंतर जन-मन-कानन।
विषय मनोरथ पुंज कुंज-बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।

---

१ सूर्य की किरणें। २ चंद्रमा। ३ ब्रह्मा। ४ कमल। ५ सूर्य। ६ गरुड़। ७ कामदेव रूपी हाथी के लिये सिंह। ८ जहाज़। ९ हंस। १० आँधी। ११ आग। १२ सिंह। १३ सूर्य।

यह परंपरित-रूपक कभी-कभी श्लेष से भी कहा जाता है। जैसे—

६—चौ०—संकर-मानस-राजमराला।

यहाँ जब तक 'मानस' शब्द में श्लेष न माने, और उसके दो अर्थ (१) मन, (२) मानसरोवर न लें, तब तक रूपक का चमत्कार नहीं भासैगा।

७—चौपाई

अंगद तुहीं बालिकर बालक। उपजेउ बंस-अनल कुल-घालक।

इसमें जब तक 'वंश' शब्द के श्लेष से दो अर्थ (१) बाँस, (२) कुल न लिए जायँ, तब तक कोई चमत्कार नहीं भासता।

सूचना—अँगरेज़ी में इस अलंकार को मेटैफ़र (Metaphor) और फ़ारसी तथा उर्दू में 'तलाजमा' कहते हैं।

(६) परिणाम

दो०—करै क्रिया उपमान रचि, उपमेय को स्वरूप।
अलंकार परिनाम तहँ, बरनैं कबिकुलभूप॥

विवरण—उपमेय द्वारा की जाने वाली क्रिया का उपमान द्वारा किया जाना कहा जाय। इसी को परिणाम अलंकार कहते हैं। परिणाम का अर्थ यहाँ पर 'स्वभाव का बदलना' है। जैसे—

१—चौ०—कर कमलन धनु-सायक[1] फेरत।

यहाँ 'कर' के उपमान 'कमल' द्वारा 'धनु-सायक फेरना' जो वास्तव में कर द्वारा होना चाहिए, वर्णित है।

२—दो०—सोनजुही कहुँ, कहुँ जुही कहूँ जाति[2] के जाल।
हरे-हरे कर-कमल सों, फूलन बीनति बाल[3]॥

१ बाण। २ चमेली। ३ स्त्री।

३—चौ०—अपने कर-कंज लिखी यह पाती ।
४—दो०—पद-पंकज तें चलत बर, कर पंकज लै कंजु ।
मुख-पंकज तें कहत हरि, बचन-रचन[1] मुद मंजु ॥

५—सवैया

सागर श्रीरघुनंदन के कर-कंज सा मानिक मोती झर्यौ करैं ।
६—दोहा—मुख ससि हरत अँधार ।

(१०) उल्लेख

परिभाषा—किसी निमित्त से एक व्यक्ति का बहुविधि वर्णन 'उल्लेख' कहलाता है । इसके दो भेद हैं—

(१) एकहिं बहु बहु बिधि लखैं,
(२) एकहिं बरनि बहु रीति ॥

विवरण—एक ही व्यक्ति को बहुत से भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न विधि से लखें, कहें वा मानें, वहाँ प्रथम उल्लेख । यथा—

१—सवैया

दुर्जन[2] भानु प्रचंड लखैं नृप-सेवक ते ससि-पूरन जानैं ।
मूरतिवंत मनोज कहैं बनिता बस होत रु रीझैं सुजानैं ॥
मानैं कवींद्र सुरद्रुम[3] सो रु गिरापति[4] कै सब पंडित मानैं ।
आवत देखि कै रामनरिंद को भाँतिन भाँति निरूप बखानैं ॥

२—चौपाई

जिनकी रही भावना जैसी । प्रभु-मूरति देखि तिन तैसी ॥
देखहिं भूप महा रनधीरा । मनहु बीररस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहु भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप[5] बेषा । तिन प्रभु प्रगट काल सम देषा ॥

---

१ वचन रचना । २ दुष्ट, शत्रु । ३ कल्पद्रुम । ४ बागी के पति । ५ राजा ।

पुरबासिन देखे दोउ भाई। नर-भूषन लोचन-सुखदाई॥
बिदुषन[1] प्रभु बिराटमय दीसा। बहुसुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन[2] सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसुसम प्रीति न जाय बखानी॥
योगिन परम तत्वमय[3] भासा। सांत सुद्ध मन सहज प्रकासा॥
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव सम सब सुख दाता॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया॥
इहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देख्यो कोसलराऊ॥

(२) एक ही व्यक्ति को एक ही व्यक्ति बहु विधि वर्णन करे। यथा—

१—दो०—साधुन को सुखदानि है, दुर्जनगन दुखदानि।
वैरिन बिक्रम हानिप्रद, राम तिहारे पानि[4]॥

२—सवैया

सत्य की बेर[5] युधिष्ठिर है बल भीम है युद्ध-धरा महँ गाजै।
बान-विलास मैं जानौ बिजै[6] नकुलै इव बाजिन[7] की गति साजै।
आगम[8] जानिबे को सहदेव लखे सबके मनभावते छाजै।
पोषकता जग की हरि है लखि 'कूरमराम' नरिंद बिराजै।

३—कवित्त—सारमाला सत्य की बिचारमाला बेदन की,
भारी भागमाला[9] है भगीरथ नरेस की।
तपमाला जन्हु की सुजपमाला जोगिन की,
आछी आपमाला[10] है अनादि ब्रह्म बेस की।
कहै 'पद्माकर' प्रमानमाला पुन्यन की,
गंगाजू की धारा मानमाला है धनेस[11] की।
ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
ध्यानमाला ध्रुव मोलिमाला[12] है महेस की।

१ मसखरे। २ स्वजन, संबंधी। ३ ब्रह्म। ४ हाथ। ५ समय। ६ अर्जुन। ७ घोड़ा। ८ भविष्य। ९ भाग्य। १० जल। ११ धनपति। १२ मुंडमाला।

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी तथा उर्दू में "तन्सीक़ुलसिकात" कहते हैं।

(११) स्मरण

दोहा

कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास।
सुमिरन ताको भाषिए, बुधवर सहित हुलास॥

विवरण—यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने इस अलंकार की परिभाषा ऐसी लिखी है कि:—

"सदृस वस्तु लखि सदृस की सुधि आवै जेहि ठौर।
सुमिरन भूषन तेहि कहैं, सकल सुकबि-सिरमौर"॥

परंतु हिंदी-साहित्य में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे जान पड़ता है कि प्राचीनों का यह लक्षण पर्याप्त नहीं है। इसीसे हमने इस अलंकार की नवीन परिभाषा गढ़ी है। कारण यह है कि या तो इसको अलंकार ही न मानना चाहिए या अगर अलंकार मानना ही है तो केवल सदृश वस्तु को देखकर सदृस वस्तु की सुधि आने ही में क्यों माना जाय? सब दिशाओं में क्यों न माना जाय? पहले देखी हुई वस्तु का स्मरण कई भाँति से हो सकता है। जैसे—

कछु लखि—

(क)—(समान गुणवाली वस्तु को देखकर स्मरण)

१—चौपाई—प्राची[१] दिसि ससि उएउ सोहावा।
सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा॥

२—दो०—**लखि ससि मुख की होत सुधि, तन-सुधि घन को जोहि[२]।**

१ पूर्व। २ देख कर।

३—चौपाई

बीच बास करि जमुनहि आए। निरखि नीर लोचन जल छाए॥

दो०—रघुवर-बरन-बिलोकि बर, बारि[1] समेत-समाज।
होत बिरह-बारिधि मगन, चढ़े बिबेक-जहाज॥

(ख)—(संबंधी वस्तु को देखकर स्मरण)

१—दो०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं[2] वहै, वा जमुना के तीर॥
—(बिहारी)

२—चौपाई

सूल होत नवनीत[3] निहारी। मोहन के मुख-जोग बिचारी॥
—(यशोदा-वचन ऊधव-प्रति)

(ग)—(स्वप्न देखकर स्मरण)

१—सवैया

जागि परी तो न कान्ह कहूँ, न कदंब की छाँह नहीं जमुनातट।

२—दो०—देखौं जागि तबै सखी, साँकर[4] लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात धौं, को जानै केहि बाट॥

(घ)—(कभी-कभी वैधर्म्य दर्शन से भी स्मरण होता है) यथा :—

१—कवित्त—ज्यौं-ज्यौं इत देखियत मूरुख बिमुख लोग,
त्यौं-त्यौं ब्रजवासी सुखरासी मन भावै है।
खारे जल छीलर[5] दुखारे अंधकूप देखि,
कालिंदी[6] के कूल-काज मन ललचावै है।
जैसी अब बीतत सो कहतै ना बनै बैन,
'नागर' ना चैन परै प्रान अकुलावै है।

---

१ जल। २ अब भी। ३ मक्खन। ४ सिकड़ी। ५ छिछले। ६ यमुना।

थूहर[1] पलास देखि-देखि कै बबूर बुरे,
हाय हरे-हरे वे तमाल सुधि आवै हैं।
—(नागरीदास)

कछु सुनि—

१—दो०—सुनि कोकिल ध्वनि बचन की, आवत है सुधि मोहिं ॥

२—सवैया

का कहिए 'पिय' बोलि पपीहा व्यथा जिय की पुनि देत जगाय।

(चर्चा या कथा सुनकर स्मरण)

एक समय कृष्ण को सुलाते समय यशोदा ने कथा कहना आरंभ किया। विधिबशात् रामावतार की कथा कहने लगीं। कथा कहते-कहते जब सीता-हरण का प्रसंग कहा, तब बाल-रूप कृष्ण को पूर्वावतार का स्मरण आया और अचानक चौंक कर बोले—"लछमण! लाना तो मेरा धनुष-बाण"। इस बात को कवियों ने अच्छी आलंकारिक-भाषा में वर्णन किया है। यथा—

३—चौपाई

इक दिन महरि[2] स्याम को लैके। परी पलँग पर तकिया दैके ॥
लागी कहन कथा सुखदाई। जिमि अवतार लीन रघुराई ॥
बाल-बिनोद बिबाह-उछाहू। बिपिन-गवन भूपति कर दाहू[3] ॥
भरत-सनेह लखन-सेवकाई। कहि खरदूषन केरि लड़ाई ॥
कह्यो जानकी केर हरन जब। "कहँ धनुसर" कहि कृष्ण उठे तब ॥

सोचि कछु—

(कुछ सोच-समझकर, कुछ चिंतवन करके स्मरण)

१—दो०—नृप उदार चिंतन करत, आए जसवँत याद।
—(मुरारिदान)

---

१ सेंहुड़। २ यशोदा। ३ दाह-कर्म।

यहाँ उदार राजाओं का चितवन करने से जसवंतसिंह का स्मरण आया। कविराज 'भूषण' ने जो उदाहरण अपने 'शिवराज-भूषण' में लिखा है, वह इस चितवन का बहुत अच्छा प्रमाण है। भूषण लिखते हैं :—

२—कवित्त—तुम सिवराज ब्रजराज[१]-अवतार आज,
तुम ही जगत काज पोषत भरत हौ[२]।
तुम्हैं छाँड़ि याते काहि बिनती सुनाऊँ,
मैं तुम्हारे गुनगाऊँ तुम ढीले[३] क्यों परत हौ॥
'भूषन' भनत वहि कुल मैं नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित मैं धरत हौ।
और बाम्हनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥

भूषण कहते हैं कि मुझे ब्राह्मण-कुल में पैदा होने का नया गुनाह (पाप) आप लगाते हैं, और विष्णु का अवतार होने के कारण मुझपर आप नाराज़ होते हैं, क्योंकि भृगुजी ने विष्णुजी की छाती पर लात मारी थी। कृष्ण का अवतार होने के कारण सुदामा की मित्रता का चिंतवन करके अन्य ब्राह्मणों को मानना और विष्णु का अवतार होने के कारण 'भूषण' को भृगुवंशी जानकर उस समय की अकस निकालना क्या ये सब बातें बिना चिंतवन के हो सकती हैं ? इस कारण चिंतवन (सोचि कछु) से भी स्मरणालंकार हो सकता है। पांठकों को याद रखना चाहिए कि 'स्मृति' नामक एक 'संचारी' भाव भी होता है। इसमें भी गत वा विस्मृत वस्तुओं के स्मरण का ही वर्णन होता है। उस भाव और इस अलंकार

१ श्रीकृष्ण। २ पालन-पोषन करते हो। ३ शिथिल।

में भेद यह होता है कि जब वर्णन में 'रस' की पुष्टि हो तब तो वह 'स्मृति' संचारी भाव होगी, जब अर्थ में चमत्कार आवे तब अलंकार माना जायगा।

(१२) भ्रांति (भ्रम)

दो०—भ्रांति और की और में, निस्चित जब अनुमान।
भ्रांति, भ्रमालंकार तेहि, कहैं सुकवि मतिमान॥

विवरण—भ्रम से किसी और वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रांति है। जैसे—

१—चौपाई

जो जेहि मन भावै सो लेहीं। मनि मुख मेलि[1] डारि कपि देहीं॥

यहाँ नाना वर्ण की मणियों को देखकर नानावर्ण के फलों का भ्रम होता है। फल समझकर मुख में डाल लेते हैं पर जब वह फूटती नहीं तब उगल देते हैं।

२—सो०—कपि कर हृदय बिचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जानि असोक[2]-अँगार, सीय हरषि उठि कर गह्यो॥

यहाँ जानकीजी श्रीरामचंद्र की स्वर्ण-मुद्रिका को अशोक-प्रदत्त अंगारा समझती हैं।

३—दो०—चहुँधा तेरे सुयस की, रूरी[3] रासि निहार।
फिर फिर टोवत जटनि हर, गिरि गंगा की धार॥

४—दो०—पायँ महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिर-फिर जानि महावरी[4], एँडी मीड़त जाय॥

१ छोड़ कर। २ एक वृक्ष। ३ सुंदर। ४ अलता।

(शकुंतला कहती है)

५—सो०—री सखि मोहिं बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।
डसो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज[१] गनै॥
६—दो०—जानि स्यामघन[२] घन तुम्हैं, नाचि उठैं बन मोर।
चितै रहत मुख ओर निसि, निस्चल चखन[३] चकोर॥
७—दो०—परत भ्रमर सुकतुंड[४] पर, मन धरि कुसुम-पलास[५]।
सुक ताको पकरन चहत, जंबूफल[६] की आस॥

(१३) संदेह

(दोहा)

बहु विधि बरनत बर्न्य को, नियत न तथ्य अतथ्य।
अलंकार संदेह तहँ, बरनत हैं मतिपथ्य[७]॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय बना ही रहे, निश्चय न हो। 'भ्रांति' में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है, संदेह में किसी पर नहीं जमता। धौं किधौं, कीधौं, की, कि, या, अथवा इत्यादि संदेह-सूचक शब्द इस अलंकार के बाचक हैं। जैसे—

१—चौपाई

की तुम तीनि देव महँ कोऊ। नर-नारायन की तुम दोऊ॥
की तुम हरिदासन[८] महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन-अनुरागी। आए मोहिं करन बड़भागी॥

१ कमल। २ श्रीकृष्ण। ३ आँख। ४ सुग्गे की चोंच ५ टेसू का फूल। ६ जामुन। ७ सुबुद्धि। ८ भगवान के भक्त।

२—कवित्त—पाय अनुसासन[1] दुसासन कै कोप धायो,
द्रुपदसुता को चीर गहे भीर भारी हैं।
भीषम करन द्रोन बैठे ब्रतधारी तहाँ,
कामिनी की ओर काहू नेक ना निहारी है।
सुनिकै पुकार धायो द्वारिका तें जदुराई,
बाढ़त दुकूल[2] खैंचे भुजबल हारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है॥

३—पद—ये कौन कहाँ ते आए।
मुनि-सुत किधौं भूप-बालक किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए।
रूप[3] जलधि के रतन, सुछबितिय-लोचन-ललित-ललाये[4]॥
किधौं रबिसुवन, मदन, ऋतुपति[5] किधौं, हरिहर[6] भेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत[7]-सुरतरु के सुफल रावरे[8] पाए॥
—(गीतावली)

सूचना—यह अलंकार फ़ारसी अरबी तथा उर्दू के 'तजाहुल आरिफ़' नामक अलंकार से मिलता-जुलता है।

(१४) अपह्नुति

दो०—मिथ्या कीजै सत्य को, सत्य जु मिथ्या होत।
अपह्नुति षट भेद को बरनत हैं कवि गोत॥
सुद्ध[1], हेतु[2] परजस्त[3], भ्रम[4] छेका[5], कैतव[6], देखि।
'ना' बाचक है पाँच को, कैतव को मिस, लेखि॥

---

१ आज्ञा। २ साड़ी। ३ सौंदर्य। ४ छबि रूपी स्त्री के ये बालक लोचन हैं। ५ वसंत। ६ विष्णु और महादेव। ७ पुण्य। ८ आपने।

विवरण—'अपह्नुति' शब्द का अर्थ है 'छिपाना'। इसलिये इस अलंकार में किसी बात का छिपाना और कोई अन्य बात कहकर दूसरे का संतोष कर देना यही वर्णन रहता है। इसके ६ भेद हैं, जिनमें से प्रथम पाँच में निषेधवाची 'न' 'नहीं' का प्रयोग अनिवार्य है और अंतिम 'कैतवापह्नुति' में 'मिस' शब्द का प्रयोग अवश्य ही होता है। बस इन्हीं वाचक शब्दों से इस अलंकार की ठीक पहचान हो जाती है।

(१) शुद्धापह्नुति

दो०—दुरै सत्य उपमेय को, प्रकट करै उपमान।
सुद्धापह्नुति कहैं तेहि, जे कबिंद मतिमान॥

विवरण—उपमेय को असत्य ठहराकर उपमान का स्थापन किया जाय, वही शुद्धापह्नुति अलंकार है। जैसे :—

१—चौपाई

मैं जु कहा रघुबीर कृपाला। बंधु[1] न होय मोर यह काला॥

यहाँ सत्य बंधुत्व को असत्य ठहराकर उपमानरूपी असत्य कालत्व का स्थापन किया है।

२—दो०—पहिरे स्याम न पीतपट, वन में बिज्जु[2]-बिलास।
३—दो०—सारद[3] ससि नहिं सुंदरी, उदयो जस जसवंत॥
४—दो०—अंक[4] न संग रही जु लगि, भिच्छुक-जन की पंत[5]।
५—दो०—नहिं सुधांसु यह है सखी, नभगंगा को कंज॥

६—सवैया

ये न घने घन कुंजरमाल[6] हैं, या चपला न दिपै तरवारी।
गर्जनि नाहिं नगारे बजैं, बकपाँति नहीं गजदंत निभारी[7]॥

१ भाई। २ बिजली की चमक। ३ शरद ऋतु का। ४ चंद्रमा का कलंक। ५ पंक्ति। ६ हाथी। ७ केवल, खालिश।

ये न मयूर जो बोलत हैं बिरुदावलि बंदि[1] बदै जस भारी।
या नहिं पावसकाल अली, यह तो सखि है अमरेस सवारी[2] ॥

सूचना—याद रखना चाहिये कि यह अपह्नुति अलंकार कई-एक अन्य अलंकारों से मिलकर भी आता है। उदाहरणार्थ देखो 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' और 'सापह्नवातिशयोक्ति'।

(२) हेत्वापह्नुति

दो०—शुद्धापह्नुति में जहाँ, कहिये हेतु बनाय।
हेतु अपह्नुति कहत हैं, ताहि सकल कबिराय॥

विवरण—शुद्धापह्नुति में जब कोई कारण भी बतला दिया जाय, तब वही हेत्वापह्नुति हो जायगी। जैसे—

१—दो०—रात-माँझ रबि होत नहिं, ससि नहिं तीव्र सुलाग।
उठी लखन अवलोकिए, बारिधि[3] सों बड़वाग[4] ॥

यहाँ चंद्रमा को देखकर रामचंद कहते हैं—'हे लक्ष्मण, देखो तो यह चंद्रमा नहीं है क्योंकि इसकी किरणें तीव्र जान पड़ती हैं और रात्रि में सूर्य का होना असंभव है इससे यह सूर्य भी नहीं है, अतः यह समुद्र से निकलती हुई बड़वाग्नि ही है'। यदि केवल इतना ही कहा जाता कि 'यह चंद्रमा नहीं है, बड़वाग्नि है' तो शुद्धापह्नुति होती। चंद्रमा के निषेध का कारण 'तीव्र लगता है' भी कहा गया है, अतः हेत्वापह्नुति है। इसी प्रकार 'सूर्य नहीं है' इसका भी कारण 'रात्रि है' बतलाया गया है। इसी प्रकार और भी समझना। यथा—

---

१ भाट। २ इंद्र। ३ समुद्र। ४ समुद्र की अग्नि।

२—सवैया

सेत[1] सरीर हिये बिष स्याम कला-फन[2] री मनि जानु जुन्हाई।
जीभ-मरीची[3] दसौदिसि फैलती काटत जाहि बियोगन-ताई[4] ॥
सीस तें पूँछि लौं गात गर्यों पै डसे बिन ताहि परै न कलाई[5]।
सेस के गोत के ऐसे ही होत हैं चंद नहीं या फनिंद[6] है माई ॥

३—दो०—सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान[7]।
भुज-भुजँगेस-भुजंगिनी, भखति पौन-अरि-प्रान ॥

(३) पर्यस्तापह्नुति

दो०—धर्म और में राखिए, धर्मी साँच छिपाय।
पर्यस्तापह्नुति कहैं, ताहि सकल कबिराय ॥

विवरण—(पर्यस्त = फेंका हुआ) किसी वस्तु में उसके सच्चे धर्म का निषेध इसलिये किया जाय कि वह धर्म किसी दूसरी वस्तु में आरोपित करना है। यथा—

१—दो०—है न सुधा यह है सुधा, संगति-साधु-समाज।

यहाँ 'साधु' में सुधात्व (अमरत्वगुण) का निषेध इसलिये किया गया कि उसका धर्म साधु-समाज की संगति में स्थापित करना मंजूर है।

२—दो०—नहीं सक्र[8] सुरपति अहैं, सुरपति नंदकुमार।
रतनाकर सागर न है, मथुरा-नगर-बजार ॥

३—दो०—यह न चाँदनी चाँदनी, मृदु बिहँसनि-नँदलाल।

४—पद—मीन[9] में नाहि प्रीति सजनी, चातकहिं नहिं प्रेम।
एक मति गति एक व्रत, यह भरत ही में नेम ॥

---

१ उज्ज्वल। २ कलाएँ फण हैं। ३ किरणें। ४ ताप। ५ चैन। ६ शेषनाग। ७ तलवार। ८ इंद्र। ९ मछली।

५—सो०—कालकूट[1] विष नाहिं विष है केवल इंदिरा[2] ।
हर[3] जागत छकि[4] वाहि, यहि सँग हरि नींद न तजत ॥

सूचना—प्रायः देखा जाता है कि इस अलंकार के उदाहरणों में जिस के सच्चे धर्म को छिपाना होता है उसे दो बार लाना पड़ता है। उदाहरणों में देखो—सुधा, सुरपति, चाँदनी और विष शब्द दो-दो बार आए हैं।

(४) भ्रांतापह्नुति

दो०—भ्रम संका मन और के, कछु कारन तें होय।
दूरि करै कहि सत्य सो, भ्रांतापह्नुति सोय ॥

१—चौपाई

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक[5] न असनि[6] न केतु न राहू।
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि तनय[7] के प्रेरे ॥

२—दो०—बेसर[8] मोती-दुति-झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय ॥

३—दोहा—आली लाली लखि डरपि[9], जनि टेरहु नँदलाल।
फूले सघन पलास ये, नहिं दावानल-ज्वाल ॥

(५) छेकापह्नुति

दो०—संका नासै और की, साँची बात दुराय।
छेकापह्नुति कहत हैं, ताहि कबिन के राय ॥

विवरण—(छेक=चतुराई) यह अलंकार भ्रांतापह्नुति का ठीक विरोधी है। उसमें सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है और इसमें सत्य को छिपाकर असत्य बातें कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है (चाहे वह शंका दूर हो वा न हो)।

---

१ हालाहल, समुद्र से निकला विष। २ लक्ष्मी। ३ महादेव। ४ पीकर। ५ उल्का। ६ वज्र। ७ अंगद। ८ बुलाक। ९ डरकर।

१—कवित्त—साँवरो सलोनो गात[1] पीतपट सोहत सो,
अंबुज-से आनन[2] पै परै छबि ढरकी।
मंत्र ऐसी जंत्र ऐसी तंत्र-सी तरकि परै[3],
हँसनि चलनि चितवनि त्यौं सुधर की॥
'गोकुल' कहत बन कुंजन को बासी लखे,
हाँसी सी करतु है री काम कलाधर[4] कीं।
एतने मैं बोली और मिले हरि सुखदानी,
नाही मैं कहानी कही राम-रघुबर की।

यहाँ कोई गोपी कृष्ण की छवि का वर्णन कर रही थी, एक अन्य स्त्री ने आकर पूछा कि क्या तुझे कृष्ण मिले थे, तब वह सत्य बात (कृष्ण-दर्शन) को छिपाकर कहती है कि नहीं, मैं तो राम की कथा कह रही थी।

२—चौपाई

कछु न परीक्षा लीन्ह गुसांई। कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं।

सूचना—'मुकरी' इसी अलंकार में कही जाती है। जैसे—

१—चौपाई

अर्द्धनिसा वह आयो भौन। सुन्दरता बरनै कहि कौन।
निरखत ही मन भया अनंद। क्यों सखि साजन[5]? नहिं सखि चंद।

२—चौपाई

सोभा सदा बढ़ावनहारा। आँखिन ते खिन[6] करूँ न न्यारा।
आठ पहर मेरो मनरंजन। क्यों सखि साजन? नहिं सखि अंजन।

(६) कैतवापह्नुति

दो०—मिस ब्याजादिक सब्द दै, कहै आन को आन
ताहि कैतवापह्नुती, भूषन कहि सुजान

१ शरीर। २ कमल सा मुख। ३ समझ में आती है। ४ चंद्रमा। ५ प्रेमी। ६ क्षण।

१—चौपाई

पठै मोह मिस खगपति[1] तोहीं । रघुपति दीन्ह बड़ाई मोहीं ।

२—चौपाई

लखी नरेस बात यह साँची । तिय मिस मीचु[2] सीस पर नाची ॥

३—सवैया

लालिमा श्री तरवानि के तेज मैं सारद[3] लौं सुखमा की निसैनी[4] ।
नूपुर नीलमनीन जड़े जमुना जगै जौहर में सुखदैनी ।
यौं 'लछिराम' छटा नख-नौल[5] तरंगिनी गंग-प्रभा फल पैनी ।
मैथिली के चरनांबुज ब्याज[6] लसै मिथिला मग मंजु त्रिबैनी ॥

४—दो०—छनपरभा[7] के छल रही, चमकि मार करवार[8] ।
बीरवधू[9] के ब्याज री, दहकत आजु अँगार ॥

सूचना—इस अलंकार में मिस, छल, ब्याज, बहाना इत्यादि शब्दों का लाना आवश्यक है। जिस वस्तु के बहाने जो वस्तु कथन की जाती है, इन दोनों में कारण और कार्य का सा अथवा उपमेय उपमान का सा संबंध भी होना जरूरी है । 'पर्यायोक्ति' से इसका अंतर समझ लेना चाहिये । पर्यायोक्त अलंकार की सूचना देखिये ।

(१५) उत्प्रेक्षा

सूचना—उत्प्रेक्षा (उद्+प्र+ईक्षन) शब्द का अर्थ है "बलपूर्वक प्रधानता से देखना" । इस अलंकार का मुख्य तात्पर्य "किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पनाशक्ति द्वारा कल्पित कर लेना है" कल्पना प्रतिभा के बल से ही हो सकती है । जितनी ही शक्तिवती प्रतिभा होगी उतनी ही उत्तम कल्पना हो सकेगी, इसलिये इस अलंकार को उत्प्रेक्षा कहते हैं । अतः उत्प्रेक्षा की यह परिभाषा हुई—

---

१ गरुड़ । २ मृत्यु । ३ सरस्वती । ४ शोभा की सीढी । ५ नवल । ६ बहाना । ७ बिजली । ८ कामदेव की तलवार । ९ एक बरसाती लाल कीड़ा ।

दो०—बल सों जहाँ प्रधानता करि देखिय उपमान ।
उत्प्रेक्षा भूषन तहाँ कहत, सुकबि मतिमान ॥

वाचक—मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय, प्रायः, बहुधा, इव, खलु इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं ।

उत्प्रेक्षालंकार तीन प्रकार का होता है—(१) वस्तूत्प्रेक्षा, (२) हेतूत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा ।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार कहा जायगा । इसके दो प्रकार हैं ।

(क) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय पहले कहा जाय, और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय ।

(ख) अनुक्त विषया—जहाँ विषय न कहा जाय, केवल कल्पना की जाय ।

(क)—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

१—दो०—सोहत ओढ़े पीतपट, श्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप[1] पर्‌यो प्रभात ॥

यहाँ 'पीतांबर ओढ़े कृष्ण का श्यामतनु' उत्प्रेक्षा का विषय है, सो पहले कह दिया गया है, तब उत्प्रेक्षा की गई कि वह तनु कैसा है मानो नीलमणि का पर्वत है जिस पर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड़ रही हों । यहाँ मुख्य तात्पर्य तो कृष्ण के तनु के वर्णन से है परंतु कवि अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक खींचकर एक नीलमणि के पर्वत पर प्रातःकाल की सूर्य-किरणों के पड़ने के दृश्य की ओर लिए जाता है ।

१ घाम ।

इस दृश्य के दिखलाने से कवि का तात्पर्य यह है कि पाठक (दर्शक) कृष्ण के तनु की उत्कृष्ट शोभा का अनुमान कर सकेगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए। कुछ और उदाहरण देखिए।

२—दो०—लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि औसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग[1] बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ[2] ॥

३—सवैया

संभु-सरासन[3] तोर्‌यो मृनाल[4] सो भाल बिसाल प्रताप सोहावै।
त्यों 'लछिराम' स्वयंबर मैं मिथिलेस-अनंद समात न छावै[5] ॥
राम गरे जयमाल के देतु सु मैथिली[6] यौं समता सरसावै।
मानो रमा रतनाकर[7] सैं रतनावली श्रीहरि को पहिरावै ॥

४—दो०—सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहिर लसत मनो पिए, दावानल की ज्वाल[8] ॥

५—दो०—'पूरन' जमुना-नीर पर, यों आतप छबि होति।
मानहु कृष्ण सरीर पर, पीतपटी की जोति ॥

इन सब उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहले कह दिए गए हैं तब उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं, इसलिये ये उदाहरण उक्त-विषया के हैं।

सूचना—गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कवि-शिरोमणि सूरदासजी ने रामजी तथा कृष्णजी की बालछबि-वर्णन में इस अलंकार का बहुत अधिक और बहुत उत्तम प्रयोग किया है। जैसेः—

१—लोचन नील-सरोज-से भ्रू पर मसिबिंदु[9] बिराज।
जनु बिधुमुख छबि-अमी को रक्षक राखे रसराज[10] ॥

---

१ दो। २ फाड़कर। ३ धनुष। ४ कमल दंड। ५ अटता नहीं। ६ जानकी। ७ समुद्र। ८ एक बार श्रीकृष्णजी दावाग्नि पी गये थे। ९ काजल का डिठौना। १० शृंगार।

२—सिसु-सुभाव सोहत जब कर गहि,
बदन[१]-निकट पद-पल्लब लाए।
मनहु सुभग जुग भुजँग[२] जलज[३],
भरि लेत सुधा ससि सों सचु[४] पाए॥
३—बंधुक[५] सुमन अरुन पद-पंकज,
अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर जनु मुनिबर कलहंसन,
रचे नीड़[६] दै बाँह बसाए[७]॥
४—भाल बिसाल ललित लटकन बर,
बालदसा के चिकुर[८] सुहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज[९] आगे करि,
ससिहिं मिलन तम के गन आए॥
५—गजमनिमाल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई।
जनु उड़गन बारिद-मंडल पर नवग्रह रची अथाई[१०]॥
६—मंजु मेचक[११] मृदुल तनु अनुहरत भूषन-भरनि[१२]।
जनु सुभग शृंगार-सिसुतरु[१३] फर्‌यो अद्‌भुत-फरनि॥

(ख) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके उत्प्रेक्षा की जाय। जैसे—

१—दो०—अंजन बरसत गगन यह, मानो अथए भानु।

यहाँ सूर्यास्त के अनंतर 'अंधकार का फैलना' जो उत्प्रेक्षा का विषय है वह पहले कहा नहीं गया, परंतु उत्प्रेक्षा की गई

१ मुख। २ सर्प। ३ कमल। ४ अनंद। ५ फूलदुपहरिया। ६ घोसला। ७ शरण में रखा। ८ केश। ९ मंगल। १० बैठक, गोष्ठी। ११ काला। १२ गहने। १३ छोटा वृक्ष।

है कि मानो सूर्यास्त के अनंतर यह आकाश का जल बरसाता है। ऐसे ही कथन को अनुक्तविषया जानो।

२—दो०—उदित सुधाधर करत जनु, सुधामयी वसुधाहि।

यहाँ चंद्रोदय के अनंतर जो 'चाँदनी फैलती' है, वही इसका विषय है, सो कवि ने कहा नहीं। उत्प्रेक्षा यह की कि चंद्रमा उदय होकर मानो समस्त धरातल को सुधामय कर देता है (सुधा का रंग सफेद माना गया है)।

३—दो०—सरद-ससी बरसत मनो, घन घनसार अमंद।

यहाँ भी 'चाँदनी का प्रकाश' जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह नहीं कहा गया, उत्प्रेक्षा यह की गई कि मानो शरद-ऋतु का चंद्रमा बहुत-सा सफेद कपूर बरसाता है। चाँदनी की तरह कपूर का रंग भी श्वेत ही होता है।

४—सवैया

मोर लौं मंजु नचैं धरती पर मंडित-फेन लगाम उमाहैं[१]।
कान के बीच लसैं कलंगी फिरी त्यौर तिरीछी अतूल अदा[२] हैं।
काम-कबूतर लौं 'लछिराम' छलैं यों अटेरन[३] की परमा[४] हैं।
बाजि बली रघुबंसिन के मनो सूरज के रथ चूमन चाहैं।

इसमें श्रीरामजी की बारात के घोड़ों का वर्णन है, उनके तन की छवि वर्णन करके कवि कहता है कि 'वे घोड़े मानो सूर्य का रथ चूमना चाहते हैं' अर्थात् उछलने में बहुत ऊँचे तक उछलते हैं, परंतु उनकी 'उछाल' जो इस उत्प्रेक्षा का मुख्य 'विषय' है कवि ने कही ही नहीं। इससे अनुक्त-विषया जानो। इसी प्रकार और भी समझ लो।

---

१ उत्साहित होते हैं। २ अनुपम शोभा। ३ कावा काटना। ४ शोभा।

५—दो०—बरसै जनु काजल गगन, तम लिपटत सब गात।
दीठि नीच-सेवा सरिस, बिफल भई-सी जात॥

सूचना—उपमा में दो वस्तुओं की समता वस्तुतः दिखलाई जाती है। उत्प्रेक्षा में केवल उस समानता का संभव संशय रूप से कहा जाता है।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा समझो। इसके भी दो प्रकार हैं:—(१) 'सिद्धास्पद' अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो), (२) 'असिद्धास्पद' अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

१—दो०—मनो कठिन आँगन चलीं, ताते राते[1] पायँ।

सुकुमार स्त्रियों के चरणों में ललाई स्वाभाविक ही होती है, परंतु कवि उसका हेतु कल्पित करता है कि मानो कठिन आँगन में चलने से वह ललाई आ गई है। स्त्रियाँ आँगन में चलती हैं यह तो सिद्ध आधार है। अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है, यही अलंकारता है।

२—दो०—रवि-अभाव लखि रैन में, दिन लखि चंद-बिहीन।
सतत[2] उदित यदि हेतु जनु, जस प्रताप भुवि कीन॥

यहाँ भी रात में सूर्य का अभाव और दिन में चंद्रमा का अभाव सिद्ध आधार है, पर इन्हीं कारणों से कोई राजा पृथ्वी भर में अपना यश और प्रताप नहीं फैलाता (उसका कारण कुछ और ही होता है)।

३—क०—घोर निरधनता सुदामा-घर बास कीन्हो,
दारुन कलेस दै दै दीन को सतायो है।

१ लाल। २ निरंतर।

संमति लै बाम[1] की सिधायों द्विज स्याम-पास,
भेंट करि तंदुल[2] अखंड धन पायो है ॥
'पूरन' जू मानों भई द्वारिका गया की पुरी,
जाय बिप्र जामैं मनमानो फल पायो है।
दारिद-पिसाच मानि आखत[3] निमंत्रण को,
संग जाय तरिगो न फेरि भौन. आयो है ॥

'गया' में तर जाना सिद्धास्पद हेतु है। दरिद्ररूपी पिशाच के लौटकर न आने का वही हेतु कहा गया है।

(असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

जहाँ उत्प्रेक्षा का कथित हेतु असंभव हो। जैसे—

१—दो०—मुख सम नहिं यातें मनो चंदहि छाया छाय।

राधिका के मुख के समान नहीं है, इससे मानों चंद्रमा में छाया (काला दाग) छाई हुई है। यहाँ असिद्ध आधार कहा गया है, अतएव असिद्धास्पद है।

२—दो०—पूस दिनन में ह्वै रहो, अगिन-कोन में भानु।
मैं जानो जाड़ो बली, तें वह डरै निदानु[4] ॥

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है और डर के कारण सूर्य पूस में अग्निकोण में (जाड़े से डरकर) अग्नि तापने के लिये चला जाता है, यह कारण ठीक नहीं।

३—दो०—तुव चख[5] निरखि लजाय मनु, किय बनवास मृगीन।
कुवलय[6] रहत मलीन दिन, रहे पैठि जल मीन ॥

नेत्रों से मृगियों, कुमुद-पुष्पों तथा मीनों का लजाना, असिद्ध आधार है, और इसी लज्जा के कारण मृगी बन में

१ स्त्री। २ चावल। ३ अक्षत, चावल। ४ आखिरकार। ५ नेत्र। ६ श्वेत कमल।

रहने लगीं, कुवलय (कुईं के फूल) दिन में मलीन रहते हैं, और मछलियाँ पानी में डूबी रहती हैं, ये बातें ठीक नहीं।

४—दो०—मोर-मुकुट की चंद्रकनि, यो राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर[1] की अकस,[2] किय सेखर[3] सत चंद॥

५—दो०-भाल लाल बेंदी ललन, आखत[4] रहे बिराजि।
इंदु-कला[5] कुंज[6] में बसी, मनहुँ राहु-भय भाजि॥

६—पद—भुजन भुजँग सरोज नैननि बदन, बिधु जीत्यो लरनि।
बसे कुहरन[7] सलिल नभ, उपमा अपर दुरि[8] डरनि॥

यहाँ 'राम की भुजाओं से हारकर सर्प बिलों में रहने लगे, नेत्रों से हारकर कमल पानी में जा डूबे, और मुख से हारकर चंद्रमा आकाश में जा बसा और अन्य उपमा भी डरकर छिप रही' ऐसा कहा गया है।

इन उपमानों का हार जाना वा डर जाना 'असिद्ध आधार' है और उपमानों के वहाँ रहने का जो कारण कल्पित किया गया है वह ठीक नहीं है, इसीसे 'असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा' है।

७—पद—उपमा हरि तन देखि लजाने।

कोउ जल में कोउ बनहिं रहे दुरि कोऊ गगन उड़ाने॥
मुख देखत ससि गयो अँबर[9] को तड़ित[10] दसन छबि हेरो।
मीन कमल कर चरन नयन डर जल मों किया बसेरो॥
भुजा देखि अहिराज लजाने बिबरनि पैठे धाय।
कटि निरखत केहरि[11] डरि मानो बन बिच रह्यो दुराय॥
—(सूरसागर से)

१ महादेव। २ विरोधी (कामदेव)। ३ सिर पर धारण किया। ४ अक्षत (चावल)। ५ चंद्रमा की कला। ६ मंगल। ७ बिल। ८ छिप गई। ९ आकाश। १० बिजली। ११ सिंह।

(३) फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना फलोत्प्रेक्षा है। इसके भी दो भेद हैं :—

१—सिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

२—असिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१—दो०—मधुप निकारन के लिये, मानो रुके निहारि।
दिनकर निज कर देत है, सतदल[१] दलनि उघारि ॥

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है, परंतु कवि कल्पना करता है कि मानों रात भर बंद रहे हुए भौंरों को बंद से छुड़ाने के लिये सूर्य कमलों को अपने करों (किरणों) से खोल देता है। सूर्य का कमलों को खिलाना इसलिये नहीं होता कि उसमें बंद रहे हुए भौंरे बंद से छूट जावें, वरन् वह स्वयं सिद्ध विषय है। भौंरों का बंद से छूटना यह अफल है, उसे ही फल कल्पित किया है; अतः फलोत्प्रेक्षा है।

२—दो०—दुवन[२] सदन सब के बदन[३], सिव सिव आठो जाम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम ॥
—(भूषण)

'शिव-शिव' कहने से मनुष्य संकटों से बच सकता है, यह (हिंदूधर्मानुसार) सिद्ध आधार है। परंतु मुसलमान लोग इस फलप्राप्ति के लिये 'शिव-शिव' (शिवाजी का नाम) नहीं कहते थे; वरन् डर से बहुधा उनकी चर्चा किया करते थे, उस चर्चा में उनका नाम बार-बार लेना पड़ता था।

---

१ कमल। २ शत्रु। ३ मुख।

३—सवैया

मौज भयो मिथिलापुर में चतुरंग चमू[1] सजि आई बरात है।
त्यों उछले तें जवाहिर की लरैं टूटैं तुरंगन[2] के लहरात है॥
लक्खनराम को यौं दसरत्थ लिए निज गोद न मोद अमात[3] है।
ताप मिटाइबे के हित मानो पपीहरा स्वाती के बुंद नहात है॥

(असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१—दो०—तो पद समता को कमल, जल सेवत इक पाँय।

कमल स्वतः जल में रहता है, राधिका के चरणों की समता-रूपी फल की प्राप्ति के लिये नहीं। जड़ कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है। इसलिये यहाँ असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

२—वीर—दमयंती कचभार प्रभा से पिच्छभार[4] हतप्रभा निहार।
कार्तिकेय की सेवा करता है मयूर खलु संयम धार॥

यहाँ मयूर में दमयंती के बालों की शोभा की समता प्राप्ति रूपी फल की इच्छा का होना असिद्ध आधार है (सर्वथा असम्भव है) और यह कहना कि उसी फल की प्राप्ति के लिये मयूर कार्तिकेय की सेवा करता है अफल को फल कल्पित करना है, यही असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है। इसमें खलु (निश्चय) उत्प्रेक्षा का वाचक है।

३—सवैया

बारि में बूड़ि जपैं रवि को सरि [5]पंकज पायन कीं गहिबे को।
बास उपास करैं बन में कटि[6] की सरि सिंहिनियों चहिबे को॥
... ...।
रोज अन्हात है छीरधि[7] मैं ससि तो मुख की समता लहिबे को॥

१ सेना। २ घोड़ा। ३ अँटना। ४ मोर की पूँछ। ५ समता। ६ कमर। ७ दूध का समुद्र, क्षीरसागर।

ऊपर जितने उदाहरण दिए गए हैं उन सबों में उत्प्रेक्षा वाचक शब्द मनो, जनो, खलु, मनु, जनु, इव, ध्रुव इत्यादि मौजूद हैं। परंतु कहीं-कहीं बिना वाचक शब्द के भी उत्प्रेक्षा की जाती है। ऐसी उत्प्रेक्षा गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा वा ललितोत्प्रेक्षा कही जाती है।

सूचना—फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की पहचान करना विद्यार्थियों के लिये तनिक कठिन बात है। इसकी जाँच के लिये सर्व प्रथम 'क्रिया' को जाँचो। यदि क्रिया किसी हेतु से कही गई ज्ञान पड़े तो हेतूत्प्रेक्षा समझो और यदि उस क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रगट होती हो तो फलोत्प्रेक्षा समझो। नीचे लिखे उदाहरणों पर विचार करो—

१—राधिका जी के अधर और नासिका की छबि अनूप है, मानों बिंबाफल को देखकर लालच-वश आकर शुक बैठा हो (सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)।

२—राधिकाजी के अधर और नासिका की छबि अनूप है, मानों बिंबाफल का स्वाद लेने के लिये शुक चोंच मारना चाहता है (सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

३—श्रम से पसीने की बूँदें लटों द्वारा मुख पर गिर रही हैं, मानों चंद्र को राहु का सताया हुआ समझ कर नागवृंद उसपर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

४—मानों राहु-युद्ध-जनित पीड़ा दूर करने के लिये नागवृंद चंद्र पर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)।

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०—तोरि तीरतरु के सुमन, बर सुगंध के भौन।
जमुना तो पूजन करत, वृंदाबन को पौन॥

१—चौपाई

इनहि देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर[1] जोग बनावन लागा॥
कीन्ह बहुत स्रम अइकि[2] न आए। तेहि इरषा बन आनि दुराए॥

२—चौपाई

कह प्रभु गरल[3] बंधु ससि केरा[4]। अतिप्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये।

सूचना—जानना चाहिए कि सब प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ गम्योत्प्रेक्षा हो सकती हैं।

(सापह्नवोत्प्रेक्षा)

कभी-कभी अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा की जाती है, उसे 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' कहते हैं। सब प्रकार की अपह्नुतियों से मिला कर सब प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण लिखें तो बड़ा विस्तार होगा, इसलिए केवल एक उदाहरण लिखते हैं—

१—दोहा—कमलन कहँ तेहि मित्र गुनि, मानहु हतिबे काज।
प्रविसहिं सर नहिं न्हान हित, रवि-तापित गजराज॥

यहाँ सूर्यताप से तापित गज का सरोवर में प्रवेश स्नानार्थ निषेध करके, तदनंतर सूर्य के मित्र जान कर कमलों का नाश करने के लिये उत्प्रेक्षा की गई है, अतः यह 'सापह्नव फलोत्प्रेक्षा' है। इसी प्रकार सब उत्प्रेक्षाएँ सापह्नव हो सकती हैं।

(१६) अतिशयोक्ति

दो०—जहँ अत्यंत सराहिबो, अतिसयोक्ति सुकहंत।
भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप, अत्यंत॥

---

१ समता के योग्य। २ अंदाज़। ३ विष। ४ का।

विवरण—जहाँ किसी की अतिशय सराहना करना मंजूर हो उस उक्ति के कथन में अतिशयोक्ति होती है। इसके छः भेद हैं—

(१) भेदकातिशयोक्ति, (२) सम्बन्धातिशयोक्ति, (३) चपलातिशयोक्ति, (४) अक्रमातिशयोक्ति, (५) रूपकातिशयोक्ति और (६) अत्यन्तातिशयोक्ति।

सूचना—इस अलंकार को अँगरेज़ी में हाइपरबोल (Hyperbole) और फ़ारसी तथा उर्दू में मुबालगा कहते हैं।

(१) भेदकातिशयोक्ति

दो०—औरै सब्दन की जहाँ, उत्कर्षता सुबेस।
भेदक अतिसय उक्ति तहँ, मानत सुकवि-नरेस॥

'औरै-औरै' शब्द इस अलंकार का वाचक है। जैसे—

१—दो०—औरै कछु बोलनि चलनि, औरै कछु मुसुकान।
औरै कछु सुख देत है, सकैं न बैन बखानि॥

२—दो०—अनियारे[1] दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान[2]।
वह चितवनि औरै कछू, जेहि बस होत सुजान॥

(कभी-कभी 'न्यारी रीति है' 'और ही बात है' 'अनोखी बात है' इत्यादि, या इसी अर्थ के और भी शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं)। जैसे :—

३—क०—जगत को जैतबार जीत्यो अवरंगजेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की।
—(भूषण)

४—दो०—अवलोकनि बोलनि हँसनि, डोलनि औरै-और।
आवनि मृदु गावनि सबै, औरै वाके तौर[3]॥

१ तीक्ष्ण। २ अभिमानपूर्ण। ३ ढंग।

५—कवित्त—मंगलीक[1] वदन-विलास 'लछिराम' औरै,
कलँगी मरोर[2] मौर भाल सजवारे में
औरै आनि औरै बानि औरै चढ़ी सान सुज,
औरै धनुबान राम-कर गजरारे[3] में ॥

६—दो०—औरै हँसनि बिलोकिबो, औरै बचन उदार।
'तुलसी' ग्रामबधून के, देखे रह न सँभार ॥

(२) संबंधातिशयोक्ति

दो०—जहँ अयोग्य है योग्य में, जहँ अयोग्य में योग्य।

विवरण—सम्बंधातिशयोक्ति के दो भेद हैं—(१) योग्य में अयोग्यता प्रगट करके प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना।

(२) अयोग्य में किसी के सम्बंध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रगट हो।

(१) योग्य में अयोग्यता

१—स०—सानभरे[4] भुज-दंड अखंड तिहूँ पुर मंडन मान भरै को ?
आँगुरी वे अलकेस घनी सनी मौजन में अनुमान करै को ?
यौं नखभा 'लछिराम' लखे नखतावलि के परमान[5] धरै को ?
श्रीरघुनाथ के हाथन सामुहे कल्पलता सनमान करै को ?

कल्पलता सम्मान करने योग्य वस्तु है, पर अयोग्य ठहरा कर उसके संबंध से रामजी के हाथों की अतिशय उदारता प्रकट की गई है।

२—चौपाई

अति सुंदर लखि मुख सिय तेरो। आदर हम न करत ससि केरो।

---

१ मंगलकारी। २ आनबान। ३ हाथी की सूँड़। ४ शानदार। ५ समान।

यहाँ शशि सम्मान योग्य होने पर भी मुख की अतिशय सुंदरता वर्णन करने के हेतु अनादर-पात्र ठहराया गया है।

३—सवैया

कानन कुंज प्रमोद बितान[1] भरे फल फूल सुगंध बिधानै।
बावली के अरबिंदन पै मकरंद मलिंद[2] सने सुभ गानै॥
त्यौं 'लछिराम' तरंगन तें सरजू के कढ़े सुर साजि बिमानै।
औधपुरी महिमा यौं चितै अमरावति को हम क्यौं सनमानै॥

(२) अयोग्य में योग्यता

१—चौपाई—फबि फहरैं अति उच्च निसाना[3]।
जिन महँ अटकत विबुध[4]-बिमाना॥

विबुध-विमान अवश्य ही बहुत ऊँचे पर होंगे। उनसे संबंध प्रगट करने से 'ध्वजा' में यह योग्यता हो गई कि उसकी ऊँचाई की अतिशयोक्ति हो गई। विबुध-विमान के संबंध से अत्यन्त ऊँचाई लक्षित हुई।

२—सवैया

बासन[5] बाँस कठौती हुती औ फटी दुपटी जेहि वीतत सीवत[6]।
'गोकुल' छानी सरी[7] गरी भीति[8], रहे जित चूहन के गन जीवत॥
धाम सुदामा लह्यो हरि सों जेहि देखिए देखि दिगम्पति भीवत[9]।
बैठि जितै गन चातक के घन तें बन[10] चोंच चलाय कै पीवत॥

इसमें चातक और घन के संबंध द्वारा यह प्रगट किया है कि सुदामा का मंदिर बहुत ऊँचा था। कोई घर इतना ऊँचा नहीं होता, परंतु यहाँ घन चातक के संबंध से अयोग्य घर में भी अतिशय ऊँचाई की योग्यता कथन की गई है।

१ चँदवा। २ भौंरा। ३ ध्वजा। ४ देवता। ५ बर्तन। ६ सीते। ७ सड़ी गली। ८ दीवार। ९ डरता था। १० जल।

सूचना—'संबंधातिशयोक्ति' का कविता में बहुत अधिक काम पड़ता है। इस अलंकार के बहुत प्रचलित उदाहरण यों कहे जाते हैं कि इसका वर्णन शेष, शारदा भी नहीं कर सकते, वेद भी नेति-नेति कहता है। यथा—

४—चौपाई

जेहि बर बाजि[1] राम असवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा[2]।

५—चौपाई

सारद श्रुति[3] सेषा ऋषय असेषा[4] जा कहँ कोउ नहिं जाना॥

६—दो०—जा सुख भा सिय-मातु-मन, देखि राम बर वेष।
सो न सकहिं कहि कल्प सत, सहस[5] सारदा सेष॥

७—हरिगीतिका

कोटिहु बदन[6] नहिं बनै बरनत जगजननि शोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति 'तुलसी' कहा।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शेष, शारदा, श्रुति इत्यादि को कथन के अयोग्य ठहराकर उनके संबंध से प्रस्तुत वस्तु में अतिशयोक्ति की स्थापना की जाती है।

(३) चपलातिशयोक्ति

दो०—कारन के लखतहि सुनत, कारज आसुहिं होय।
चपला अतिसय उक्ति यह, अलंकार है सोय।

१—सवैया

पंचवटी के विहंग उमंग में बोलत बानी सुधारस घूँटे।
त्यों 'लछिराम' अदेव[8] ललाट तें आयु की रेख के अंक[9] वे छूटे॥
आसुरी हाथन तें पल एक में भाग सोहाग के भाजन[10] फूटे।
आगम श्रीरघुनाथ सुने मुनि-मंडली के मन-बंधन छूटे॥

---

१ घोड़ा। २ वर्णन नहीं कर सकती। ३ वेद। ४ समस्त। ५ हज़ार। ६ मुख। ७ शीघ्र। ८ असुर। ९ चिह्न। १० बर्तन।

२—चौपाई

तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयो जरि छारा॥

३—चौपाई

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

४—दो०—आयो-आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव नावँ।
बैरि-नारि-दृग-जलन सों, बूड़ि जात अरि-गावँ॥

५—क०—'भूषन' भनत साहि तनै सिवराज एते,
मान तव धाक आगे दिसा उबलति है।
तेरी चमू[1] चलिवे की चरचा चले तें चक्र—
वर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति है॥

(४) अक्रमातिशयोक्ति

दो०—कारन अरु कारज जहाँ, होत एक ही संग।
अक्रमातिसयउक्ति सो, बरनत सुकवि सुढंग॥

१—चौपाई

संधान्यौ प्रभु बिसिष[2] कराला। उठी उदधि-उरअंतर ज्वाला॥

२—सवैया

पायन को जमुना उमहीं जल बाढ़ो जबै बसुदेव गरे लौं।
हूँकत ही जदुनंदन के जमुनाजी बहीं तरवा के तरे लौं।

३—दो०—बानासन[3] तें रावरे, बान बिषम रघुनाथ।
दससिर-सिर धर तें छुटे, दोऊ एकहि साथ॥

४—दो०—उठ्यो संग गजकर[4] कमल चक्र चक्रधर[5] हाथ।
कर तें चक्र सु नक्र[6] सिर धर तें बिलग्यो साथ॥

---

१ सेना। २ बाण। ३ धनुष। ४ हाथी की सूँड़। ५ विष्णु। ६ मगर, ग्राह।

५—क०—उद्धत अपार तुव दुंदुभी धुकार साथ,
लंघै पारावार[1] बाल-बृंद[2] रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के रँगे रज,[3]
साथ ही उड़ात रजपुंज हैं परन[4] के॥
दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़-कोट दुरजन[5] के।
'भूषन' असीसैं तोहि करत कसीसैं[6] पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥

सूचना—संग ही, साथ ही, एकै साथ, साथ अथवा इसी अर्थ का कोई शब्द इस अलंकार का वाचक जान पड़ता है।

(५) रूपकातिशयोक्ति

दो०—जहँ केवल उपमान कहि, प्रगट करैं उपमेय।
रूपकातिशयउक्ति तहँ, बरनत सुकबि अजेय॥

विवरण—जहाँ केवल उपमान कह कर उपमेयों का अर्थ समझा जाता है, वहाँ यह अलंकार होता है। जैसे:—

१—दो०—कनकलता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बान।

यहाँ कनकलता = कोई स्त्री। चंद्रमा = मुख। धनुष = भौंहें। बान = कटाक्ष।

ब्याह के समय रामचंद्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर देते हैं।

२—चौपाई

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कबि केहीं॥
अरुन-पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के॥

१ समुद्र। २ स्त्रियाँ। ३ धूल। ४ शत्रु। ५ दुष्ट, शत्रु। ६ खींचते ही।

यहाँ अरुणपराग = सेंदुर। जलज = शंख वा कमल। ससि = सीताजी का मुख। अहि = रामजी का हाथ।

सूचना—सूरदास ने इस अलंकार में अनेक पद कहे हैं। उनमें से एक यह है। इसमें राधिका जी के समस्त अंगों का वर्णन है।

३—पद—(राग सारंग)

अद्भुत एक अनूपम बाग।
युगल कमल पर गज क्रीडत है तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत-फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव ता पर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग।

युगल कमल = दोनों चरण। गज = मंद चाल। सिंह कटि। सरवर = नाभि। गिरिवर = कुच। कंज = मुख। कपोत = कंठ। अमृतफल = चिबुक। पुहुप = गोदना बिंदु। पल्लव = होंठ। सुक = नासिका। पिक = बानी। मृगमद = कस्तूरीबिंदु। काग = काकपक्ष, पाटी। खंजन = नेत्र। धनुष = भौंहैं। चंद्रमा = ललाट। मणिधरनाग = सीस-फूल सहित गुंथी हुई वेणी।

सूचना—इसी प्रकार और भी समझना चाहिये।

४—कवित्त—'भूषन' भनत देस-देस बैरि-नारिन में,
होत अचरज घर-घर दुःख दंद के।
कनकलतानि इंदु, इंदु माँहि अरबिंद,
झरैं अरबिंदन तें बुंद मकरंद के॥

यहाँ कनकलता = स्त्रियाँ। इंदु = मुख। अरबिंद = नेत्र। मकरंद-बुंद = आँसू।

रामायण में तुलसीदासजी ने रामचंद्रजी के मुख से सीताजी के लिये कहलाया है :—

अ०-मं०—६

५—चौपाई

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रवीना॥
कुंद-कली दाड़िम दामिनी। सरद-कमल ससि अहि-भामिनी।
बरुन-पास मनोज-धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कमल कदलि हरखाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाय जनु राजू॥

इसमें भी उपमानों द्वारा जानकीजी के अंगों को (उपमेय को) सूचित किया है। जैसे :—

खंजन=नेत्र। सुक=नाक। कपोत=ग्रीवा। मृग, मीन=नेत्र। मधुप=बाल। कोकिला=वाणी। कुंद-कली=दंत। दाड़िम=दंत। दामिनी=मुसकान। सरद-कमल, ससि=मुख। अहिभामिनी=वेणी। वरुण-पास=बाल (छूटे हुए)। मनोज-धनु=भौंहें। गज=चाल। केहरि=कटि। श्रीफल=कुच। कमल=हाथ। कदलि=जंघा।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम मेरे संग थीं, तब ये सब उपमान तुम्हें देखकर लज्जित रहते थे। अब तुम्हारा हरण हो जाने से ये सब प्रसन्न हुए हैं।

सूचना—इस जगह हम सूरदास-कृत दो-तीन पद ऐसे लिखे देते हैं जिनको समझ लेने से इस अलंकार की सामग्री अच्छी तरह से समझ में आ जायगी। पद दानलीला के समय के हैं।

६—पद—लेहौं दान[1] इनन्ह को तोसों।
मत्तगयंद[2] हंस[3] तुम पै है कहा दुरावति मो सो॥ १॥
केहरि[4] कनक-कलस[5] अमृत के कैसे दुरै दुरावति।
बिद्रुम[6] अहैं बज्र के किनका नाहित[7] हमैं दिखावति॥ २॥

---

१ कर। २ मतवाला हाथी (चाल)। ३ गति के लिए। ४ सिंह (कमर)। ५ सोने का घड़ा (कुच)। ६ मूँगा (ओठ)। ७ नहीं तो।

खग कपोत[1] कोकिला[2] कीर [3]खंजन[4]चंचल मृग[5]जानति।
मनि कंचन के चक्र[6] जरे हैं एते पर नहिं मानति॥ ३॥
सायक[7] चाँप[8] तुरै[9] बनि जनियति[10] नितप्रति आवहु जाहु।
दान दिए बिनु जान न पैहौ दिये ते होय निबाहु॥ ४॥
यहं बनिजति[11] वृषभानु-सुता तुम हम सो बैर बढ़ावत।
सुनहु 'सूर' एते पै कहति है हम धौं कहा लदावत॥ ५॥
७—पद—यह सुनि चकित भई ब्रजबाला।
तरुनी सबै परसपर बूझैं कहा कहत गोपाला॥ १॥
कहँ तुरंग कहँ गज केहरि कहँ हंस सरोवर सुनिए।
कंचन-कलस गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिए॥ २॥
कोकिल कीर कपोत बनहि में मृग खंजन एक संग।
तिनके दान लेत हैं हम पैं देखहु इनके ढंग॥ ३॥
चंदन और सुगंध बतावत कहाँ हमारे पास।
'सूर' स्याम जी ऐसे दानी देखि लेहु हम पास॥ ४॥
८—पद—भूलि रहे तुम कहा कन्हाई।
तिनको नाम लेत तुम आगे जे सपनेहु दृष्टि न आई॥ १॥
हयबर[12] गयबर[13] सिंह हंस खग मृग कहँ हैं हम लीन्हें।
सायक चाप तुरी[14] सुनि चकृत चमर न देखे चीन्हें॥ २॥
चंदन और सुगंध कहत हौ कंचन-कलस बतावहु।
'सूर' स्याम ये सब जो ह्वै हैं तबहिं दान तुम पावहु॥ ३॥
९—पद—प्रगट करौं अब तुमहि बताऊँ।
चिकुर[15] चौंर, घूँघट हयबर बर, भ्रू सारंग[16] दिखाऊँ॥ १॥

१ कबूतर (गर्दन)। २ वाणी के लिये। ३ सुग्गा (नाक)। ४, ५ आँख के लिये। ६ तलवे। ७ बाण (कटाक्ष)। ८ धनुष (भौंह)। ९ घोड़ा (घूँघट)। १० जानी जाती हैं। ११ वाणिज्य करती हैं। १२ घोड़ा। १३ हाथी। १४ घोड़ा। १५ केश। १६ धनुष।

बान कटाक्ष, नैन खंजन मृग, नासा सुक उपमाऊँ।
तरिवन चक्र, अधर विद्रुम बर, दसन बज्रकन ठाऊँ॥ २॥
ग्रीव कपोत, कोकिला बानी कुच घट-कनक समाऊँ।
यौवन-मद रस-अमृत भरे हैं रूप रंग झलकाऊँ॥ ३॥
अंग सुगंध बास पट अंबर गनि-गनि तुमहिं सुनाऊँ।
कटि केहरि, गयंद[1] गति सोभा हंस सहित इक ठाऊँ॥ ४॥
फेर किए कैसे निबहोगी घरहि गए कहँ पाऊँ।
सुनहु सूर यह बनिज तुम्हारे फिरि-फिरि तुमहिं सुनाऊँ॥ ५॥

सूचना—इसको फ़ारसी में 'सनअत तअज्जब' कह सकते हैं।

(सापह्नवातिशयोक्ति)

जहाँ अपह्नुति सहित रूपकातिशयोक्ति हो। जैसे :—

१—दो०—अहि ससि-मंडल पै लसै, जिय पताल जिन जानु।

यहाँ मुख रूपी चंद्रमा पर वेणी रूपी सर्प का वर्णन है। उसे पाताल में मत जानो कह कर अपह्नुति प्रगट की गई है।

(६) अत्यंतातिशयोक्ति

दो०—जहाँ हेतु तें प्रथम ही, प्रगट होत है काज।
अत्यंतातिसयोक्ति तेहि, कहैं सकल कबिराज॥

१—दोहा—हनूमान की पूँछ में लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरि गई, गए निसाचर भाग॥

२—दो०—राजन्! राउर नाम जस, सब अभिमत दातार।
फल-अनुगामी[2] महिपमनि, मन-अभिलाष तुम्हार॥

इसमें पहले 'फल' तदनंतर मनोभिलाष वर्णन किया गया है।

३—कवित्त—मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहिं,
कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है।

---

१ हाथी। २ फल के पीछे-पीछे चलने वाला।

यातें तेरे गुन सब गाय को सकत,
कवि बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है॥
'भूषन' भनत साहितनै सिवराज निज,
बखत[1] बढ़ाय करि तोहि ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है॥

४—दो०—कवि-तरुवर सिव-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल[2]॥

५—दो०—ग्राह-ग्रहीत गयंद-मुख, कढ़त न पाई 'त्राहि'।
पहले ही हरि आय कै, निज कर उधर्‍यो ताहि॥

६—कवित्त—धूम-धाम ऐसी रामचंद्र-बीरता की मची,
'लछिराम' रावन सरोष सरकस[3] तें।
वैरी मिले गरद मरोरत कमान-गोसे,[4]
पीछे कढ़े बान तेजमान तरकस तें॥

७—चौपाई

कह कपि मुनि गुरुदछिना लेहू। पीछे हमहिं मंत्र तुम देहू॥

८—दोहा—पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लै पार॥

(१७) तुल्ययोगिता

**दो०—क्रिया और गुण करि जहाँ, धर्म-एकता होय।
चतुर चतुर[5]बिधि कहत हैं, तुल्ययोगिता सोय॥**

विवरण—क्रिया द्वारा अथवा गुण द्वारा जहाँ कई-एक व्यक्तियों का एक ही धर्म कथन किया जाय, वह तुल्ययोगिता है। यह चार प्रकार की होती है—

---

१ भाग्य। २ प्रसन्नता। ३ प्रचंड। ४ कोना, कोटि। ५ चार।

(१) पहली

बर्न्यन को जहँ धर्म एक, प्रथम कहत कबि लोग।

विवरण—जहाँ अनेक उपमेयों का एक धर्म कथन किया जाय, वहाँ प्रथम तुल्ययोगिता जानो। यथा :—

१—चौपाई

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि-पुनि पुलकाहीं।

२—सवैया

श्रीदसरत्थ सों माँगिबे हेत गुनी निगुनी दोउ द्वार पै ठाढ़े।

३—चौपाई

सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महीपन कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गर्ब-गरुवाई। सुनि मुनिबरन केरि कदराई[1]॥
सिय कर सोच जनक-परितापा। रानिन कर दारुन दुख-दापा[2]॥
संभु-चाप बड़ बोहित[3] पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई।

४—दो०—मुख-ससि निरखि चकोर अरु, तन-पानिप लखि मीन।
पद-पंकज देखत भँवर, होत नयन रस-लीन॥

सूचना—इन उदाहरणों में केवल वर्ण्यों की धकतामैं कही गई है।

(२) दूसरी

दो०—धर्म अबर्न्यन को जहाँ, एकै बिधि ठहराय।
तुल्ययोगिता दूसरी, ताहि कहैं कबिराय॥

विवरण—जहाँ अनेक उपमानों का एक ही धर्म कहा जाय। जैसे—

१—दो०—लखि तेरी सुकुमारता, ए री या जग माहिं।
कमल गुलाब कठोर-से, केहि को भासत नाहिं॥

---

१ आतंक। २ दुःख का दबदबा। ३ जहाज़।

२—दो०—एक बेर जिन-जिन लखे, तेरे लोचन चाहि[1]।
नीके लागत मीन मृग, खंजन कंज न ताहि ॥
३—दो०—सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु[2] धर्‌यो सभाग।
'भूषन' अब निहचिंत हैं, सेसनाग दिगनाग[3] ॥

४—सवैया

चंदन चंद पियूष मयूषरु[4] सुद्धपयोनिधि[5] छोभ सों पागे।
पूनो की राति में कैरव के बन सेत सरोरुहई छबि जागे ॥
पारद[6] हार तुषार-पहार कपूर के भार रु दूध के झागे[7]।
मैले लगे सब ही के बिलास सु राम महीपति के जस आगे ॥

सूचना—उदाहरणों में अवर्ण्यों (उपमानों) की धर्मैकता कही गई है।

(३) तीसरी

दो०-सम करिए उत्कृष्टगुन, बहु के इक महँ लाय।
तुल्ययोगिता तीसरी, ताहि कहैं कबिराय ॥

१—दो०—जाय जोहारे[8] कौन को, कहा कहूँ है काम।
मित्र मातु पितु बंधु गुरु, साहेब मेरे राम ॥
२–दो० तुम बिधि,बुध,विधु[9]बिबुधपति[10]बिधुधर[11]बुद्धि निधान।
तुमहि भूप हौ कल्प तरु, गुननिधि चतुर सुजान ॥
३—दो०—कामधेनु अरु कामतरु, चिंतामनि मन मानि।
अरु चौथा तेरो सुजंस, ए मनसा[12] के दानि ॥

सूचना—(तीसरी तुल्यौगिता और दूसरे उल्लेख का भेद)—, तीसरी तल्ययोगिता में एक को बहुतों की समता दी जाती है। दूसरे उल्लेख में एक को बहुत भाँति से वर्णन किया जाता है। तुल्पयोगिता में बहुतों के उत्कृष्ट गुणों की एक में समता की जाती है।

---

१ इच्छा करके। २ बोझ। ३ दिग्गज। ४ किरण। ५ क्षीर समुद्र। ६ पारा। ७ फेन। ८ पुकार करना। ९ चंद्रमा। १० इंद्र। ११ महादेव। १२ मनोवांछित।

उल्लेख में बहुतों के गुण पृथक्-पृथक् वर्णन करने का तात्पर्य होता है। नीचे लिखे उदाहरण को समझो।

तुल्ययोगिता—यह राजा इन्द्र, करण और युधिष्ठिर के समान है।

उल्लेख—यह राजा तेज में इन्द्र, दान में करण और धर्म में युधिष्ठिर है।

(भेद)—तुल्ययोगिता में समान-कथन का भाव रहता है, उल्लेख में केवल गुण-वर्णन का भाव रहता है।

(४) चौथी

दो०—हितु में अनहितु में जहाँ, करिए एकै धर्म।

१—दो०—जो सींचे सर्पिष[1] सिता[2] अरु जो हनै कुठाल[3]।
कटु लागै तिन दुहुन को, यहै नींब की चाल॥

२—दो०—कोऊ काटा क्रोध करि, वा सींचो करि नेह।
बेधत वृक्ष बबूल को, तऊ दुहुन की देह॥

३—दो०—जो सींचत काटत जु है, जो पेरत जन कोइ।
जो रक्षक तिन सबन को, ऊख मीठिए होइ॥

४—दो०—बंदौं संत समान-चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलि-गत सुभ सुमन जिमि, समसुगंध कर दोउ॥

५—सवैया

'दास' जू पापी सुरापी[4] तपी अरु जापी हितू-अहितू सम भाई।
गंग तिहारी तरंगन सों सब पावै पुरंदर[5] की प्रभुताई।

६—सवैया

श्रीरघुनाथपुरी की प्रभा सरयू के तरंग ते संग गली में।
सिद्ध सुरापी असंत औ संत बिमान चढ़े लसैं व्योमथली में॥

१ घी। २ मिश्री। ३ कुल्हाड़ी। ४ शराबी। ५ इंद्र।

(१८) दीपक

दो०—बर्न्य अबर्न्यन को जहाँ, एकै धर्म कहाय।
दीपक तासों कहत हैं, सिगरे कबि-समुदाय॥

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कथन किया जाय, वहाँ दीपक होता है। जैसेः—

१—दोहा—सोहत भूपति दान सों, फल-फूलन आराम[१]।

२—सवैया

'गोकुल' दोऊ सराहिबे जोग जगे जग में जस मोद महा तें।
रावरे नैन-कटाच्छन तें बलि खंजन राजत चंचलता तें॥

१—सवैया

थाह न पैए गँभीर बड़ी है सदा ही रहै परिपूरन पानी।
राकै[२] बिलोकि कै 'श्रीयुत दासजू' होत उमाहिल[३] मैं अनुमानी॥
आदि वही मरजाद लिए रहै है जिनकी महिमा जग जानी।
काहू के केहूँ घटाए घटै नहिं सागर औ गुन-आगर[४] प्रानी॥

पहले उदाहरण में 'भूपति' वर्ण्य है 'आराम' अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'सोहत' एक ही कहा गया है, परंतु सोहने के कारण भिन्न-भिन्न कहे गए हैं। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में नैन वर्ण्य, खंजन अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'राजत' एक ही कहा गया है; परंतु राजने का कारण कटाक्ष और चंचलता भिन्न-भिन्न हैं। तीसरे उदाहरण में 'गुण-आगर प्राणी' वर्ण्य है और 'सागर' अवर्ण्य। 'घटाएँ घटै नहीं' धर्म एक है। श्लेष से दोनों के कारण की भी एकता दिखलाई है, पर वास्तव में कारण यहाँ भी भिन्न-भिन्न हैं।

---

१ बागीचा। २ पूर्णिमा की उजेली। ३ उत्साहित होता है, बढ़ता है। ४ गुणी।

४—चौपाई

संग ते जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान[1] ते लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

इसमें 'राजा' वर्ण्य है और शेष सब अवर्ण्य हैं। कारण भिन्न-भिन्न हैं। 'नासहि' सबका धर्म एक कहा गया है। (इसी प्रकार और भी समझना)।

५—दो०—सुरसरिता सों सिंधु, अरु चंद्रिकाहि सो चंद।
कीरति सों जसवंत नृप, महिमा धरत असंद॥

सूचना—(१) तुल्योगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है। (२) दीपक में उपमेय और उपमान के धर्म का एक ही साथ कथन किया जाता है।

(१६) आवृत्ति-दीपक

दो०-क्रियापदन को होत जहँ, आवर्तन को जोग।
दीपक आवृति कहत हैं, ताहि सकल कबि लोग॥
दीपक आवृति तीन बिधि, पदावृत्ति एक जानु।
अर्थावृति दूजो तृतिय, पद-अर्थावृति मानु॥

(१) पदावृत्ति

दो०-अर्थ दोय पद एक की, आवृति करिए जौन।
पदावृत्ति दीपक तहाँ, कहिए मति के भौन॥

१—दो०—बहै रुधिर सरिता, बहैं[2] किरवानैं[3] कढ़ि कोस[4]।
बीरन बरहिं[5] बरांगना, बरहिं[6] सुभट रन-रोस॥

---

१ मदपान। २ चलती हैं। ३ तलवारें। ४ म्यान। ५ वरण करती हैं। ६ जलते हैं।

२—दो०—नंद-सुवन ब्यारू[१] करत, बाढ़ी प्रीति अथोर।
परसति[२] सुंदरि सरस तिय, परसति दृग की कोर[३]॥

३—सवैया

'रघुनाथ' जहाँ तक गोधन हैं, सँग ते चरिबो परित्यागत हैं।
सुर[४] साँवरे सारँग[५] रागत हैं[६], वन के सब सारँग[७] रागत हैं[८]॥

(२) अर्थावृत्ति

दो०—सब्द पृथक एकै अरथ, जहाँ सु आवृत लेत।
अर्थावृति दीपक तहाँ, कहैं सुकबि करि हेत॥

१—चौपाई

पय-पयोधि[९] तजि अवध बिहाई[१०]। जहँ सिय राम लखन रहे आई॥
२—दो०—दौरहिं सगर मत्त-गज, धावहिं हय[११]-समुदाय।
नटहि[१२] रंग महँ बहु नटी, नाचहि नट हरखाय॥
३—दोहा—दिस-दिस बिकसे कुंज-बन, फूले रुचिर रसाल[१३]।

४—सवैया

छिन होत हरीरी[१४] मही को लखै निरखै छिनही घन-जोति-छटा।
अवलोकति इंद्रबधून[१५] की पाँति बिलोकति है छिन कारीघटा॥
तकि डार कदंबन को तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा।
अध ऊरध आवत जात भयो चित नागरि को नट कैसो बटा[१६]॥
५—चौपाई—कूजहिं, कोकिल गूँजहि भृंगा।

६—सवैया

काहे ते आए नहीं 'रघुनाथ' ये आइकै औधि के बासर पूजे[१७]।

---

१ रात का भोजन। २ परोसती है। ३ किनारा। ४ स्वर। ५ वंशी। ६ बजाते हैं। ७ मृग। ८ अनुरक्त होते हैं। ९ क्षीरसागर। १० छोड़कर। ११ घोड़ा। १२ नाचती हैं। १३ आम। १४ हरी-हरी। १५ एक बरसाती-लाल कीड़ा। १६ गोल बट्टा। १७ पूर्ण हो गए।

देखु मधुव्रत गूँज चहूँ दिसि कोयल बोली कपोतहु कूजे[1] ॥

(३) पदार्थावृत्ति

दो०—पद अरु अर्थ दुहून की, आवृति फिरि-फिरि होय।
कहत पदार्थावृत्ति तेहिं, दीपक सब कबि-लोय[2] ॥

१—दो०—गरजत है रन रामजू, गरजत है दससीस।
धावत रिस भरि रजनिचर चहुँ दिसि धावत कीस ॥

२—दो०—बोलत चातक चाय सों, बोलत मत्त मयूर।

२—दो०—तोर्यौ नृपगन को गरब, तोर्यो हर-कोदंड[3]।
राम जानकी जीव को, तोर्यो दुःख अखंड ॥

४—कवित्त—'ग्वाल कबि' आन भरे सान भरे स्यान[4] भरे,
कछू अलस्यान भरे भरे मान माल के ॥
लाज भरे लाग[5] भरे लाभ भरे लोभ भरे,
लाली भरे लाड़ भरे लोचन हैं लाल के ॥

५—दो०—भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच[6] ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुप्रास तथा यमक नामक शब्दालंकारों में भी शब्दों का आवर्तन होता है। भेद यह है कि उन में केवल क्रियापद का आवर्तन होता है। वे आवर्तन केवल 'कान' को सुखकर हैं। यह अर्थालंकार है और इसके क्रियापदों का आवर्तन अर्थ में विलक्षणता लाता है।

(२०) कारक-दीपक

दो०-क्रम तें क्रिया अनेक को, कर्ता एकै होय।
कारक दीपक ताहि को, बरनत हैं सब कोय ॥

१ बोल। २ लोग। ३ शिव का धनुर्ष। ४ चतुराई। ५ लाग-डाँट। ६ मृत्यु।

विवरण—क्रियाएँ कई-एक हों, पर उनका कर्ता एक हो, वह कारक-दीपक अलंकार कहलाता है।

१—चौ०—लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े।

२—दो०—दरस दियो तो मित्रवर; आओ बैठो पास।
कुसल कहौ निज भवन की, बाढ़ैं हिए हुलास॥

३—दो०—ऋषिहिं देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय॥

सूचना—स्मरण रखना होगा कि 'समुच्चय' अलंकार में भी कई क्रियाओं का कर्ता एक होता है, पर दोनों में भेद यह है कि 'कारकदीपक' की क्रियाओं से प्रगट किये कार्यों का क्रम से (पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा इत्यादि) होना समझा जाता है, और 'समुच्चय' वाली क्रियाओं से प्रगट किए हुए कार्य एक तो केवल भाववाचक होते हैं दूसरे उनका होना एक साथ पाया जाता है अर्थात् उनमें क्रम नहीं प्रगट होता। इसीलिए इस अलकार की परिभाषा में 'क्रम से' पद दिया गया है।

(२१) मालादीपक

दो०—दीपक अरु एकावली, मिलैं जहाँ ए दोय।
बरनत कबि कोबिद सकल, मालादीपक सोय॥

१—सो०—जग की रुचि[1] ब्रजबास ब्रज की रुचि ब्रजचंद हरि।
हरि-रुचि बंसी 'दास', बंसी-रुचि मन बाँधिबो॥

२—दो०—रस सों काव्यरु काव्य सों, सोहत बचन महान।
बानी ही सों रसिक-जन, तिन सों सभा सुजान॥

३—चौपाई

भरत-सरिस को राम सनेही। जग जपु राम, राम जपु जेही॥

---

१ इच्छा।

४—क०—मन कवि 'भूषन' को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीत्यो साधु-जन-सेवा ने।
साधुजन जीते या कठिन कलिकाल,
कलिकाल महाबीर महाराज महिमेवाने[1] ॥
जगत मैं जीते महाबीर महाराजन तें,
महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने।
तापसाह बावनौ दिल्ली के पातसाहि,
दिल्लीपति पातसाहै जीत्यो हिंदूपति सेवा ने ॥

(२२) देहरीदीपक

दो०—परै एक पद बीच में, दुहुँ दिसि लागै सोइ।
सो है दीपक देहरी, जानत हैं सब कोइ ॥

१—सवैया

ह्वै नरसिंह महामनुजाद[2] हन्यौ प्रहलाद को संकट भारी।
'दास' बिभीषनै लंक दई निज रंक सुदामा को संपत भारी ॥
द्रौपदी चीर बढ़ायों जहान, में पांडव के जस की उजियारी।
गर्विन के खनि गर्व बहावत दीनन के दुख श्रीगिरधारी ॥

यहाँ रेखांकित शब्द दोनों ओर लगते हैं। शब्द का ऐसा ही प्रयोग देहरीदीपक है।

२—दो०—लहि जसवंत नरेस पद, कबिन निहाल सु 'कीन'।
अभय प्रजा मरुदेस अरु, सभय जु अखिल अरीन ॥

यहाँ 'कीन' शब्द दोहे के उत्तरार्द्ध में भी लगता है।

(२३) प्रतिवस्तूपमा

दो०—जुग वाक्यन को होत जहँ, एकै धर्म बखान।
भूषन प्रतिवस्तूपमा, ताहि कहैं मतिमान ॥

१. महिमावान। २ राक्षस, मनुष्य को खानेवाला।

निवरण ... री हैं—(१) उपमेय
वाक्यों का एक ही
दों द्वारा अलग-अलग

सूर[1] धनु-बान।
ाक्य है।
-वाक्य है।
एक धर्म है।
कहा गया है।
कहा गया है।
न नेह[2]-गँभीर।
बोल-रँग चीर॥
ढ़ता का वर्णन है।
-वाक्य है। 'कम न
छाँड़त' और 'फीको
ाया गया है। केवल

ह्नि राति न भावा॥
राद्ध वाक्य उपमान-
न भावा' पृथक-पृथक

खलपन[5] जाय।
गरल दुखदाय॥

एक प्रकार का लालरंग।

४—क०—मन कवि 'भूषन' को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीत्यो साधु-जन-सेवा ने ।
... कलिकाल,
... महिमेवाने¹ ॥
...हाराजन तें,
...ाह लेवा ने ।
... पातसाहि,
...हदूपति सेवा ने ॥

दो... लागै सोइ ।
... सब कोइ ।

है... संकट भारी ।
'द... संपत भारी ॥
द्रौ... की उजियारी ।
ग... श्रीगिरधारी ॥
... शब्द का ऐसा
ही...
२–... ल सु 'कीन' ।
... खिल अरीन ॥
... है ।

दो... धर्म बखान ।
... मतिमान ॥

विवरण—इस अलंकार में तीन बातें ज़रूरी हैं—(१) उपमेय और उपमान-स्वरूप दो वाक्य, (२) दोनों वाक्यों का एक ही धर्म, (३) उस धर्म का समानार्थ वाची शब्दों द्वारा अलग-अलग कथन। जैसे—

१—दो०—सोहत भानु प्रताप सों, लसत सूर[1] धनु-बान।
(क)—लसत सूर धनु-बान = उपमेय-वाक्य है।
सोहत भानु प्रताप सों = उपमान-वाक्य है।
(ख)—'शोभित होना' दोनों वाक्यों का एक धर्म है।
(ग)—उपमेय में वही धर्म 'लसत' से कहा गया है।
उपमान में वही धर्म 'सोहत' से कहा गया है।

२—दो०—चटक[2] न छाँड़त घटत हू, सज्जन नेह[3]-गँभीर।
फीकी परै न बरु फटै, रँग्यो चोल-रँग चीर॥

इस दोहे में सज्जन की प्रीति की दृढ़ता का वर्णन है। पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य, और उत्तरार्ध उपमान-वाक्य है। 'कम न होना' दोनों का एक धर्म है जो 'चटक न छाँड़त' और 'फीकी परै न' दो एकार्थवाची शब्दों द्वारा प्रगट किया गया है। केवल शब्द अलग-अलग हैं, अर्थ एक ही है।

३—चौपाई

तिनहि सोहात न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि राति न भावा॥

इसमें पूर्वार्द्ध वाक्य उपमेय-रूप और उत्तरार्द्ध वाक्य उपमान-रूप है, दोनों का एक धर्म 'सोहत न' और 'न भावा' पृथक-पृथक शब्दों द्वारा कथन किया गया है। पुनः—

४—दो०—साधु-संग पायहु नहीं, खल को खलपन[5] जाय।
सुधा पियायहु अहि[6] नहीं, तजत गरल दुखदाय॥

---

१ वीर। २ चटकीलापन। ३ प्रेम, तेल। ४ एक प्रकार का लालरंग। ५ दुष्टता। ६ सर्प।

५—दो०—पिसुन[1] बचन सज्जन कितै[2], सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय[3] में, तुपक[4] तीर तरवारि॥

यहाँ 'सकै न फोरि न फारि' और 'कहाँ करै' भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा 'अशक्तता' रूपी एक धर्म प्रगट किया है।

६—सवैया

रंग सो वारिज छाजैं भरे छबि राधे के नैन कटाच्छ सों राजैं।

७—सवैया

राजै सुधा सों सुधानिधि यों मुसकानि सों सोहत तो-मुख जैसे।

सूचना—कभी-कभी 'काकु' से और 'एकार्थवाची' शब्दों के बदले विरोधवाची शब्दों द्वारा भी इसका 'एक धर्म' कहा जाता है। जैसेः—

(काकु से)—८—चौपाई

सो मैं बरनि सकौं बिधि केही। डाबर-कमठ कि मंदर लेहीं॥

यहाँ उपमेय रूपी पूर्वार्धवाक्य में, वर्णन की 'अशक्तता' कही गई है और उपमान रूपी उत्तरार्द्धवाक्य में 'काकु' से अशक्तता प्रगट है।

(विरोधवाची शब्दों से)

९—दो०—प्रगट होत गुन आप ही; कहे और के नाँय[5]।
लहसुन की दुर्गंध नहिं, सौगंध किए छिपाय॥

यहाँ उपमेय-वाक्य में 'गुण' और उपमान-वाक्य में दुर्गंध (अवगुण) कहा गया है, और उपमेय-वाक्य में 'आप ही प्रगट होत' 'विधि-वाक्य' से और उपमान-वाक्य में 'नहिं सौगँध किए छिपाय'-निषेध-वाक्य से दोनों की 'एक धर्मता' गुण का प्रगट हो जाना कहा गया है।

सूचना—इस अलंकार की माला भी देखी जाती है। जैसेः—

---

१ छली। २ चित्त को। ३ जल। ४ गोली। ५ नाम।

१—दो०—वहत[1] जु सर्पन को मलय[2], धरत जु काजर दीप।
चंदहु भजत[3] कलंक को, राखहिं खलन महीप॥

इसमें चार वाक्य हैं चारों में अंतिम वाक्य उपमेय रूप है, और शेष तीन उपमान रूप हैं। चारों की एक-धर्मता 'वहत, धरत, भजत और राखहिं' एकार्थवाची शब्दों से कही गई है।

१२—लीलावती

मद-जल-धरन द्विरद[4] बल राजत, बहु जल-धरन जलद छबि साजै।
पुहुमि-धरन फनिनाथ[5] लसत अति तेज-धरन ग्रीषम रवि छाजै।
खरग-धरन सोभा तहँ राजत रुचि 'भूषन' गुन-धरन समाजै।
दिल्लि-दलन दच्छिन-दिसि थंभन ऐंड़-धरन सिवराज विराजै॥

(२४) दृष्टांत

दो०—लखि बिंब प्रतिबिंब गति, उपमेयो उपमान।
वाचक-पद के लोप तें, हैं दृष्टांत सुजान॥

विवरण—दृष्टांत में दो वाक्य होते हैं, एक उपमेय-वाक्य दूसरा उपमान-वाक्य। दोनों वाक्यों के पृथक-पृथक धर्म होते हैं। दोनों में बिंब-प्रतिबिंब भाव-सा जान पड़ता है अर्थात् एक प्रकार की समता-सी जान पड़ती है। परंतु यह समता बिना 'वाचक' शब्दों के दिखलाई जाती है।

२—दो०—पगीं प्रेम नँदलाल के, हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाय कै, भीख न मांगत लोग॥

इसमें पूर्वार्ध उपमेय-वाक्य है। इसका धर्म है जोग न भाना और उत्तरार्ध उपमान-वाक्य है जिसका धर्म है 'भीख

१ धारण करता है। २ चंदन। ३ रखता है। ४ हाथी। ५ शेषनाग।

न माँगना' परंतु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिंब-प्रतिबिंब झलकता है। अर्थात् कृष्ण के प्रेमियों का जोग में लिप्त होना वैसा ही है जैसे किसी राजा का भीख माँगना।

२—सवैया

रामकलाधर[1] की सुषमा[2] लखि आँखिन को रुख और न भावै।
छोड़ि तरंग सुधा-सरि की कोउ पोखरि[3] को जल पीवन धावै ?

३—दो०—सिव औरंगहि जिति सकै और न राजा राव।
हत्थिमत्थ पै सिंह बिनु, आन न घालै घाव[4]॥

२—दो०—निरखि रूप नँदलाल को, दृगन रुचै नहिं आन[5]।
तजि पियूष[6] कोऊ करत, कटु औषधि को पान॥

(दृष्टांत-अलंकार की माला भी देखी जाती है)

५—सवैया

अरबिंद प्रफुल्लित देखि कै भौंर अचानक जाय अरैं पै अरैं।
बनमाल थली लखि कै मृगसावक दौरि बिहार करैं पै करैं।
सरसी[7] ढिग पाय कै ब्याकुल मीन बिलास सों कूदि परैं पै परैं।
अवलोकि गोपाल को 'दासजू' ये अँखियाँ तजि लाज ढरैं पै ढरैं।

सूचना—दृष्टांत से मिलता हुआ प्राचीनों ने 'उदाहरण' नामक एक अलंकार माना है जिसकी हिंदी-काव्य में बड़ी भरमार है, परंतु हाल के आचार्यों ने इसे न जाने क्यों छोड़ दिया है। यह उदाहरण अलंकार, उपमा, दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में से किसी में भी अंतर्भूत नहीं हो सकता।

---

१ चंद्रमा। २ शोभा। ३ गड़ही। ४ चोट करना। ५ अन्य, दूसरा। ६ अमृत। ७ तालाब।

ज्यों, यों जैसे कहि करिय, जुग घटना समतूल ।

उदाहरन भूषन कहैं, ताहि सुकवि बुधिमूल ॥

कोई साधारण बात कह कर 'ज्यों, जैसे' इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से जहाँ समता दिखलाई जाती है वहाँ 'उदाहरण' अलंकार होता है। दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में वाचक शब्द नहीं आता। उदाहरण अलंकार के उदाहरण ये हैं—

१—दो०—एक दोष गुन-पुंज में, होत निमग्न 'मुरार'।
जैसे चंद-मयूष[१] में, अंक-अलंक[२] निहार ॥

२—दो०—अनरसहू रस पाइए, रसिक रसीली-पास।
जैसे सांठे[३] की कठिन, गांठौ भरी मिठास ॥

३—दो०—जगत जनाया जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं ॥

४—दो०—बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात[४]।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उतपात ॥

५—दो०—यों दल काढ़े बलख तें, तैं जयसाह भुवाल[५]।
उदर अघासुर[६] के परे, ज्यौं हरि गाय गुवाल ॥

इन उदाहरणों में ज्यौं, जैसे वाचक शब्द आये हैं, अतः ये दृष्टांत नहीं हैं (परिभाषा देखो)।

सूचना—(१) दृष्टांत अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमान-वाक्य (उत्तरार्द्ध भाग) पर होता है। उदाहरण अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय-वाक्य (पूर्वार्द्ध भाग) पर होता है ; उत्तरार्द्ध केवल बानगी के तौर पर होता है।

(२) स्मरण रखना चाहिए कि इसी से मिलता-जुलता हुआ 'अर्थांतरन्यास' अलंकार भी होता है। दोनों में भेद यह है कि—

---

१ किरण। २ कलंक का चिह्न। ३ ऊख। ४ डरता है। ५ राजा। ६ एक राक्षस।

दृष्टांत में दो समवाक्यों की एकता दिखाने का भाव होता है। अर्थांतर-न्यास में एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से किया जाता है।

१—दो०—काटे पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच॥

यहाँ कदली वृक्ष और नीच पुरुष की एकता दिखलाने का भाव है, इसलिये यह दृष्टांत अलंकार है।

२—चौ०—टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू॥

यहाँ एक वाक्य का दूसरे वाक्य से समर्थन करने का भाव है, इसलिये यह अर्थांतरन्यास अलंकार है।

अर्थांतरन्यास में साधारण का समर्थन विशेष से और विशेष का समर्थन साधारण से होता है। और दृष्टांत में साधारण की समता साधारण से और विशेष की समता विशेष से की जाती है।

बहुधा विद्यार्थी इन दोनों के उदाहरणों में भेद नहीं कर सकते ऐसा हमारा अनुभव है। इसलिये इन दोनों के भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों का एक ही धर्म होता है और वह दोनों वाक्यों के साथ अलग-अलग एकार्थवाची शब्दों में कहा जाता है।

दृष्टांत में दोनों वाक्यों के धर्म भिन्न भिन्न होते हैं, अर्थात् केवल उपमेय वाक्य और उपमान-वाक्य में बिंबप्रतिबिंब भाव होता है, धर्म में बिंब-प्रतिबिंब भाव नहीं होता, परंतु कवि उसका कथन ऐसी युक्ति से करता है कि उस युक्ति के कारण दोनों वाक्यों में एक प्रकार की एकता सी भासने लगती है। इसी विलक्षणता का नाम अलंकार है।

(२५) निदर्शना

दो०—सरिस वाक्य जुग के अरथ, करिए एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि दै ओप॥

विवरण—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में (विभिन्नता रहते हुए भी) समता-भाव-सूचक ऐसा आरोप किया जाय कि दोनों

एक से जान पड़ें, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। प्राचीन आचार्यों ने इसके दो भेद कहे हैं, परंतु नवीन आचार्यों ने इसके पांच भेद माने हैं।

(१) पहली निदर्शना

दो०—जो सो, जे, ते, पदन करि, असम वाक्य सम कीन।
ता कहँ प्रथम निदर्सना, बरनैं कबि परबीन॥

१—चौपाई

जो अति सुभट सराह्यो रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन[1]।

२—चौपाई

सुन खगेस हरिभक्ति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन[2] उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी[3]। पैरि पार चाहत जड़ करनी॥

३—दो०—जँग-जीत जे चहत हैं तो सों बैर बढ़ाय।
जीबे की इच्छा करत, कालकूट[4] ते खाय॥

४—सवैया

जो सुभ बानी[5] बसै बिधि संग सदा सिव अंग लसै सु भवानी[6]।
जो कमला[7] कमलापति के सँग 'देव' सचीस[8] सची[9] सुखदानी॥
दीप-सिखा ब्रज-मंदिर सुंदर जागति जोति सबै जग जानी।
साधु की साधिका सिद्ध समाधिका सो ब्रजराज की राधिकारानी॥

सूचना—

दो०—वाचक शब्द कहूँ-कहूँ, लोप करैं कबिराय।
अर्थ गौर करि कीजिए, निदर्सना दरसाय॥

१—दो०—साहन-सों-रन माँड़िबो,[10] कीबो सुकबि निहाल[11]।
सिव सरजा को ख्याल है, औरन को जंजाल॥

---

१ दूत। २ अन्य। ३ नाव। ४ ज़हर। ५ सरस्वती। ६ पार्वती। ७ लक्ष्मी। ८ इंद्र। ९ इंद्राणी। १० युद्ध करना। ११ संतुष्ट।

अर्थात् जो शिवाजी के लिये एक खेल के समान है, वहीं औरों के लिये महा कठिन काम है।

२—दो०—मीठे वचन उदार के, सोने माहिं सुगंध।

अर्थात् उदार में मधुर भाषण गुण का होना ही सोने में सुगंध का होना है।

३—सवैया

अति खीन[1] मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह[2] को बेधि सकै न तहाँ परतीत को टाँड़ो[3] लदावनो है।
'कबिबोधा' अनी[4] घनी नेजहु की चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ करार[5] है री तरवार की धार को धावनो है।

(२) दूसरी निदर्शना

दो०—थापिय गुन उपमान को, उपमेयहि के अंग।
ता कहँ द्वितिय निदर्सना, कहिए सुमति उतंग॥

१—दो०—जब कर गहत कमान-सर, देत अरनि को भीति[6]।
भाउसिंह में पाइए, सब अरजुन की रीति॥

२—दो०—लीन्ह्यों तेरे करन नृप, करन करन की रीति।
पायन अंगद की वहै, लई रीति करि प्रीति॥

३—चौपाई

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नैन चकोरा॥

(३) तीसरी निदर्शना

दो०—थापिय गुन उपमेय को उपमानहि के अंग।
ताकहँ त्रितिय निदर्सना कहिए सुमति उमंग॥

---

१ पतला। २ छेद। ३ भार। ४ नोक। ५ कराल। ६ भय।

१—सवैया

आनन ओज अमंद प्रमान कलाधर[१] में वही छाँह परी है।
बंक बिलोचन की 'लछिराम' प्रकासक लालिमा कुंज करी है॥
मौज महातम की महिमा किल[२] कल्पलता परतीति धरी है।
गौर गँभीरता श्री रघुनाथ की छीर-समुद्र के बीच भरी है॥

२—सवैया

नेकु हँसी सो भई नखतावली मालती कुंद जुहीन पै दाया।
बैन कहे ते भए वे सुधा गति सों भई हंसन की सुचि काया॥
जोति के भूषन पीत[३] से लागत यौं 'गुरुदत्त' करी बिधि माया।
चंद भयो मुख को प्रतिबिंब उदै भई चाँदनी अंग की छाया॥

३—कवित्त—कीरति सहित जो प्रताप सरजा में बर,
मारतंड मध्य तेज चाँदनी सो जानी मैं।
सोहत उदारता औ सीलता खुमान[४] में,
सो कंचन में मृदुता सुगंधता बखानी मैं॥
'भूषन' भनत सब हिंदुन के भाग फिरे,
चढ़े ते कुमति चकताहु की पेसानी[५] मैं।
सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई,
निरखी अनूप रुचि[६] मोतिन के पानी मैं॥

४—दो०—तुव बचनन की मधुरता, रही सुधा महँ छाय।
चार चमक चल नैन की, मीनन लई छिनाय॥

(४) चौथी निदर्शना

दो०—अपने सद ब्यौहार तें, औरहिं सिखवैं ज्ञान।
सो सद अर्थ निदर्शना, मानैं सब बुधिमान॥

---

१ चंद्रमा। २ निश्चय। ३ शीशे की साधारण गुरिया। ४ आयुष्मान।
५ माथा, ललाट। ६ चमक।

१—दो०—गुरुपादोदक[1] सिर धरिय, सदा जतावत एहु।
सिर धारत हैं गंग को, महादेव करि नेहु॥
२—दो०—उदय होत ही जगत को, हरत तपनि दुख दंद।
सबही को सुख दीजिए, बढ़े बतावत चंद॥

३—चौपाई

पदकर हिय मुख चख समताई। पाय कमल अहिमिति[2] नहिं लाई॥
कीच बीच बसि अस सिखलावै। नमि जो चलै ऊँच पद पावै॥
१—दो०—दै सुफूल फल दल सुद्रुम, यह उपदेसत ज्ञान।
लहि सुख संपति कीजिए, आए को सनमान॥

(५) पाँचवीं निदर्शना

दो०—असत क्रिया निज सों असत, अर्थ जनावै कोय।
पंचम असद निदर्शना, तेहि भाषत सब कोय॥

१—दो०—खोवत प्रान अजान जे, करत कूर को संग।
यहै सिखावत छोड़ि तन, दीपक-सिखा पतंग[3]॥
२—सो०—कच घुघुरारे जोय, यहै जनावत दुरजनहिं।
नितहू बंधन होय, तऊ न तजिए कुटिलता॥
३—दो०—राजबिरोधी नसत है, यौं जग को दरसात।
चंद उदय तें तमनि कर, छिन-छिन छीजत[4] जात॥
४—दो०-पदकंदुक[5] सिखवत सबहिं, सहि-सहि लात अघात।
सारहीन संसार में, लातन मारे जात॥

५—सवैया

धूर धुरेटे चपेटे परे महि संग न कोऊ सहायक गोत है।
भैया सगो भयो बैरी, समैं लहि बूड़ि गयो बल बाँह उदोत है॥

---

१ बड़ों के चरणों का जल। २ अहंकार। ३ फतींगा। ४ क्षीण होना। ५ पैर का गेंद (Foot-ball)।

और कहा कहिए 'लछिराम जू' सोई मिलैं कोउ बीज जो बोत है।
तारा कहै मुख बालि निहारि कै राम न जाने को या फल होत है॥

सूचना—(१) प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं। (२) दृष्टांत और निदर्शना के दोनों वाक्य परस्पर अपेक्षित होते हैं, स्वतंत्र नहीं। (३) दृष्टांत में वाचक नहीं होता। (४) निदर्शना में वाचक होता है।

(२६) व्यतिरेक

दो०—उपमा ते उपमेय में, अधिक कछू गुन होय।
व्यतिरेकालंकार तेहि, कहैं सयाने लोय॥

विवरण—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ उत्कृष्टता कही जाय, वहाँ यह अलंकार होता है। यह उत्कृष्टता दो प्रकार से प्रकट की जाती है।

(१) उपमेय में उपमान से कोई गुण अधिक कहा जाय।

(२) उपमान में कोई हीनता दिखाई जाय।

(पहले ढँग के उदाहरण)

१—दो०—मुख है अंबुज सो सही, मीठी बात बिसेष।

२—चौपाई

संत-हृदय नवनीत[1] समाना। कहा कविन पै कहत न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर-दुख द्रवैं सुसंत पुनीता॥

३—सवैया

सखि वा में जगै छन जोति-छटा इत पीतपटा दिनरैन मड़ो।
वह नीर कहूँ बरसै सरसै यह तो रसजाल[2] सदाहीं अड़ो॥
वह स्वेत ह्वै जात अपानिप[3] ह्वै यह रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कह 'दास' बरोबरी कौन करै घन औ घनस्याम सों बीच बड़ो॥

---

१ मक्खन। २ आनंद का समूह। ३ पानी से हीन।

४—उल्लाला

सिवराज साहिसुव[1] सत्थ नित, हय गय लक्खन संचरइ।
यक्कय गयंद[2] यक्कय तुरंग, किमि सुरपति सरवरि करइ॥

(दूसरे ढंग के उदाहरण)

१—चौपाई

जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥

२—दो०—जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥

३—दो०—घटै बढ़ै सकलंक लखि, सब जग कहै ससंक।
सीय बदन सम है नहीं, रंक मयंक एकंक[3]॥

(२७) सहोक्ति

दोहा—जहँ मनरंजन बरनिए, एक संग बहु बात।
सो सहोक्ति आभरन है, ग्रंथन में बिख्यात॥

१—चौपाई

जस प्रताप बीरता बड़ाई। नाक[4] पिनाकहि[5] संग सिधाई॥

२—पद

यहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहिं उठाय लियो।
नृपगन मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो॥
आकरष्यो सिय मन समेत हर हरष्यो जनक हियो।
भंज्यो भृगुपति गर्व-सहित तिहुँ लोक विमोह कियो॥

३—चौपाई

त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहि बिचार बरै[6] हठि तेही।

---

१ शाहजी के पुत्र। २ गजेंद्र, ऐरावत। ३ निश्चय। ४ इज्जत। ५ शिव का धनुष। ६ वरण करे।

४—कवित्त—जनक निरासा, दुष्ट नृपन की आसा,
दुरजन की उदासी, सोक रनिवास मनु के।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब,
भ्रम मोह आदि मुनि कौसिक के तनु के॥
'हरिचंद' भय देव मन के पुहुमि[1] भार,
विकल बिचार सबै पुरनारी जनु[2] के।
संका मिथिलेस की सिया के उरसूल सबै,
तोरि डारे रामचंद्र साथै हरधनु के॥

सूचना—संग, सहित, समेत, साथ, एकै साथ इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द इस अलंकार के वाचक हैं।

(२८) विनोक्ति

दो०—द्वै बिधि कहैं विनोक्ति को सुकबि बुद्धि के ऐन।
प्रस्तुत कछु बिन न्यून अरु कछु बि सोभा दैन॥

(प्रथम विनोक्ति)

दो०—कछू वस्तु बिन बरनिए, वर्ननीय जहँ हीन।

१—सवैया

राम सुरूप निधान को रूप प्रकासक पंचवटी न अमात है[3]।
लक्खन मैथिली साथ जऊ रिपुदौन[4] भरत्थ बिना न सोहात है॥

२—दोहा

कबि बिन नहिं सोहै सभा, निसि बिनु सुधानिवास[5]।
फबत न गिरिधरदास बिनु गिरिधर 'गिरिधर-दास'॥

३—चौपाई

जिय बिन देह नदी बिनु बारी[6]। तैसइ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

१ पृथ्वी। २ लोग। ३ नहीं अँटता। ४ शत्रुघ्न। ५ चंद्रमा। ६ जल।

४—हरिगीतिका

जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तन, चंद्र बिनु जिमि जामिनी[१] ।
तिमि अवध 'तुलसीदास' प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी[२] ॥

५—चौपाई

अस जिय जानि भजहिं जे आना । ते नर-पसु बिन पूँछ विषाना[३] ॥

(द्वितीय विनोक्ति)

दो०—बर्ननीय बर्नत जहाँ, कछू बस्तु बिनु रम्य ।

१—दो०—भली प्रीति बिन कपट की, देत सबहिं चित चैन ।
कैसे नीके लगत ए, बिनु सकोच के बैन[४] ॥

२—सोरठा—बिनु कठोरता अम्ब, लसत रावरे के चरन ।
सब जग के अवलंब, बसत साधु-जन के हिये ॥

(मिश्रित)

(प्रथम)—दान बिना सोहत नहीं, नृप जिमि द्विरद[५] बिसाल ।
(द्वितीय)—त्रास बिना सोहत सुभट, जैसे मनि गन माल ।

दान=(क) दक्षिणा, (ख) गजमद ।

(ध्वनि से)

(प्रथम)—बड़े दृगन को फल कहा, जो न लख्यो हरि-रूप ।
धिक श्रवनन जो नहिं सुने, प्रभु के चरित अनूप ॥

अर्थात् बिना हरि-दर्शन नेत्र और बिना हरि-कथा सुने कान शोभा नहीं पाते ।

(२६) समासोक्ति

दो०—जहँ प्रस्तुत में होत है, अप्रस्तुत को भान ।
समासोक्ति तेहि कहत हैं, कबिजन परम सुजान ॥

---

१ रात्रि । २ स्त्री । ३ सींग । ४ वचन । ५ हाथी ।

दो०—कवि इच्छा जेहि कथन की, 'प्रस्तुत' ताको जानु।
अनचाहे हूँ फुरि परै, 'अप्रस्तुत' सो मानु॥

विवरण—जब किसी कथन में कवि इच्छित अर्थ के अलावा (शब्दों की गंभीर गठन के कारण) कोई दूसरा अर्थ भी भासमान होता है तब उस कथन में समासोक्ति अलंकार माना जाता है। ऐसे कथन में बहुधा ऐसे श्लिष्ट शब्द अनायास आ जाते हैं, जिससे दूसरे अर्थ का भान होने लगता है। परंतु यह जरूरी नहीं है कि श्लिष्ट शब्दों ही द्वारा यह अलंकार सिद्ध हो सके। अश्लिष्ट शब्दों से भी काम चल सकता है।

सूचना—इस अलंकार को अँगरेजी में 'माडेल मेटैफर (Model Metaphor) कहते हैं।

(अश्लिष्ट शब्दों द्वारा)

चौपाई

लोचन मगु रामहि उर आनी[1]। दीन्हें पलक-कपाट सयानी॥

इसमें कवि इच्छित अर्थ के अलावा यह भी भासित होता है कि किसी चंचल व्यक्ति को बँधुवा बनाने के व्यवहार में किवाड़ों को बंद कर देना होता है।

२—दो०—कुमुदिन[2] हू प्रमुदित भई, साँझ कलानिधि जोय।

इसमें कवि इच्छित अर्थ तो यह है कि 'संध्या समय में चंद्रमा को देखकर कुमोदिनी फूली।' परंतु इससे किसी नायिका की दशा की भी सूचना मिलती है।

(श्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१—दो०—बड़ो डील लखि पील[3] का सवन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत में ताको हर्यो गुमान॥

---

१ लाकर। २ श्वेत कमल। ३ हाथी।

इसमें 'सरजा' शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ है (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब होने के कारण स्वयं शिवाजी।

कवि की इच्छा सिंह वर्णन की है। परंतु 'सरजा' शब्द श्लिष्ट होने के कारण इसमें शिवाजी और औरंगज़ेब के व्यवहार का भी भान होता है।

२—दो०—तुही साँच द्विजराज[1] है, तेरी कला[2] प्रमान।
तोपै सिव[3] किरपा करी, जानत सकल जहान॥

इसमें कवि का इच्छित तात्पर्य तो चंद्रमा की प्रशंसा है, परंतु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने से भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है।

३—कवित्त—'भूषन' जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइहौ प्रबल मदगल[4]-गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की॥

यहाँ भी कवि-इच्छा हाथी के वर्णन की है, परंतु पहले उदाहरण की तरह इसमें भी शिवाजी और औरंगज़ेब के व्यवहार का भान होता है।

४—सो०—लता नवल तनु अंग जाति जरी जीवन[5] बिना।
कहा सिख्यो यह ढंग, तरुन अरुन[6] निरदै[7] निरखु॥

इस सोरठे में दोपहर के प्रचंड तापयुक्त सूर्य के तेज से किसी नाजुक लता के सूख जाने का वर्णन है, परंतु गौर करने से किसी बिरहिनी नायिका की दशा का भी भान होता है।

---

१ श्रेष्ठ ब्राह्मण, चंद्रमा। २ चंद्रमा की कला, विद्या। ३ महादेव, शिवाजी। ४ मदगलित। ५ जल, जिंदगी। ६ सूर्य। ७ निर्दय।

५—कवित्त—जीवन के दानि हो सुजान हो सरस अति,
जगत के जीवन को आनंद उमाहे हो।
सुजस को पात्रो परस्वारथ को धात्रो,
धरा-तपनि मिटाइबे की मति अचगाहे हो॥
'गोकुल' कहत इन्हैं आस रावरे की है,
जू प्यास इनकी न मेटि देत कहो काहे हो।
गरजि घुमरि घनस्याम[1] क्यौं बरावत[2] हो,
कछु चातकीनहूँ को अपराध चाहे[3] हो॥

इसमें कवि की इच्छा बादल और चातकियों के वर्णन की है, परंतु तनक ही ग़ौर करने से इसमें कृष्ण और गोपियों के व्यवहार का भान मिलता है।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये।

सूचना—(श्लेष और समासोक्ति के भेद)—

(१) श्लेष में सब ही अर्थ प्रस्तुत समझे जाते हैं।
(२) समासोक्ति में प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान-सा होता है।

(३०) परिकर

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को, सुबिसेषन में होय।
अलंकार परिकर तहाँ, बरनत हैं कबि लोय॥

विवरण—जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस पद की क्रिया से संबंध रखता हो।

१—सवैया

जानो न नेकु बिथा पर[4] की बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत।

२—सवैया

भाल में जाके सुधाधर है वहै साहेब ताप हमारो हरैगो।

---

१ बादल, श्रीकृष्ण। २ बरकना। ३ देखा। ४ अन्य।

अंग है जाको बिभूति[१] भरो वहै भौन में संपति भूरि भरैगो।
घातक है जो मनोभव को जग पातक वाही के जारै जरैगो।
'दास' जू सीस पै गंग लिए रहै ताकी कृपा कहौ को न तरैगो।

३—दो०—चक्रपानि हरि की निरखि, असुर जात भजि दूरि।
रस[२] बरसत घन स्याम तुम, ताप हरत मुद पूरि॥

४—कवित्त—सीतल करैंगे मेटि ताप त्रिभुवन राम,
स्यामघन बरन बरसि दान-धारा को।

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी तथा उर्दू में 'सनअत इश्तक़ाक' कह सकते हैं।

(३१) परिकरांकुर

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को, है बिसेष्य पद माहिं।
सुकबि सकल बरनन करैं, परिकर-अंकुर ताहि॥

१—दो०—रतनाकर[३] बासी रमा, प्रानन को आधार।
हरि कुबेरपति रावरो, हरै रोग-बिकरार॥

२—चौ०—बदन मयंक[४] ताप त्रय-मोचन।

३—चौपाई

सुनहु बिनय मम-बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।

४—दो०—धरनिसुता[५] धीरज धरेउ, समय सुधर्म बिचारि।

५—पद—हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।

६—दो०—जम-करि मुँह तरहरि[६] पर्‍यो, यह धरहरि चित लाय।
बिषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाय॥

यहाँ 'नरहरि' शब्द साभिप्राय है। जमराज को हाथी

१ भस्म, ऐश्वर्य। २ जल, आनंद। ३ समुद्र। ४ चंद्रमा। ५ पृथ्वी की पुत्री, सीता। ६ नीचे करके।

(करि) माना तो हाथी को मारने के लिये नरहरि (नृसिंह) समर्थ हैं।

७—पद

हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
'तुलसिदास' इंद्रिय-संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे॥

८—पद

'तुलसिदास' भवब्याल-ग्रसित तव सरन उरगरिपुगामी।

'हृषीकेस' और 'उरगरिपुगामी' संज्ञाएँ साभिप्राय हैं, क्योंकि हृषीकेस (हृषीक+ईश=इंद्रियों का मालिक) ही इंद्रिय-संभव दुख दूर कर सकता है और उरगरिपुगामी (गरुड़ पर सवार होनेवाला) ही 'भवब्याल' से रक्षा कर सकता है।

सूचना—इस अलंकार को भी फ़ारसी तथा उर्दू में 'सनअत इश्तक़ाक़' कह सकते हैं।

(३२) श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ।
स्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

सूचना—इस अलंकार के कुछ उदाहरण और विवरण शब्दालंकार वाले वर्णन में देखो। कुछ उदाहरण नीचे लिखते हैं।

१—दो०—द्विजतिय-तारक[1] पूतना मारन में[2] अति धीर।
काकोदर[3] को दरपहर, जय यदुपति रघुबीर॥

२—दो०—सगुन[4] सभूषन[5] सुभ सरस[6], सुबरन[7] सुपद[8] सराग।
इमि कबिता अरु कामिनी, लहै जु सो बड़ भाग॥

---

१ ब्राह्मण की स्त्री को तारने वाले। २ पूतना के मारने में, पूतनामा (पवित्र नाम वाले) रण में। ३ एक राक्षस, जयंत। ४ गुण, माधुर्य आदि गुण। ५ गहना, अलंकार। ६ आनंद देनेवाली (रसों से युक्त)। ७ अक्षर, रंग। ८ पैर, शब्द।

अं०-मं०—११

३—सवैया

सुंदर सोहै सुगंधित अंग अभंग अनंग कला ललिता है।
तैसी 'किसोर' सोहात सुयोनिन[१] भोगिनहूँ[२] को मनोहरता है॥
संग अली[३] अवली रव राजत अंग रसीली बसीकरता है।
कोमलता युत बीर[४] बसंत की बैहर[५] की बनिता[६] कि लता है॥

४—कवित्त—ढरै मधुमाधुरी पराग[७] सुबरनसनी[८],
सरस सलोनी पाप-तापन के अंत की।
कामना जुगति की उकुति सरसावत सी,
छावै मधुराई कल कोकिल के भंत की॥
'गोकुल' कहत भरी गुनन[९] गँभीर सीरी,
कानन[१०] लौं आवति पियूष ऐसे बात[११] की।
ऐसी सुखदानी है न जानी जगती में,
और कबिन की बानी बर बैहर बसंत की॥

५—कवित्त—पापिन[१२] के आगर सराहैं सब नागर,
कहत 'दास' कोस[१३] में लख्यो प्रकासमान मैं।
रज[१४] के संयोग तें अमल होत जब तब,
हरि हितकारी बास जाहिर जहान मैं॥
श्री[१५] को भाय सहजै करत मनकाम,
थकै बरनत बानि जा दलन[१६] के बिधान मैं।
एतो गुन देखो राम साहिब सुजान में,
कि बारिज बिहान[१७] में कि कीमत[१८] कृपान में॥

---

१ संयोगी, योगिराज। २ संभोगी, सर्प। ३ सखी, भ्रमर। ४ संबोधन में। ५ वायु। ६ स्त्री। ७ पुष्प-धूलि, सुंदर राग। ८ सुंदर अक्षर, सुंदर रंग। ९ माधुर्य, मधु आदि गुण। १० वन, कर्ण। ११ वायु, बचन। १२ जल, शोभा। १३ पदुमकोश, धन, म्यान। १४ धूलि, रजपूती। १५ लक्ष्मी, शोभा। १६ सेना, पँखुड़ी। १७ प्रातः काल का कमल। १८ बहुमूल्य।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि अर्थ-श्लेष अलंकार में बहुधा संदेहालंकार वा विकल्पालंकार से सहायता ली जाती है, परंतु मुख्यता श्लेष की होती है इसलिये वही माना जाता है, उदाहरण नं० ३, ४, ५ में देखो और समझो। बाबू हरिश्चंद्र जी ने अपने 'सत्यहरिश्चंद' नाटक में एक दोहा कहा है जो शिव, राजा, कवि, कृष्ण और चंद्रमा इन पाँचों पर घटित हो सकता है, और सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र पर भी लगता है। दोहा यह है—

दो०—सत्यासक्त[1] दयाल द्विज, प्रिय[2] अघहर सुखकंद।
जनहित[3] कमलातजन[4] जय, सिव, नृप, कबि, हरिचंद॥

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी और उर्दू में 'ईहाम' कहते हैं।

(३३) अप्रस्तुत प्रशंसा

दो०—अप्रस्तुत बर्नन बिषे, प्रस्तुत बरनो जाय।
अप्रस्तुत-परसंस तेहि, कहैं कबिन के राय॥

विवरण—जिस विषय को कहना हो, उसे स्पष्ट शब्दों में न कहकर इस ढंग से कहें कि वह असली बात लक्षित हो जाय, वहाँ यह अलंकार कहा जायगा।

सूचना—इस अलंकार को अंग्रेज़ी में 'मेटानोमा' (Metonomy) कह सकते हैं।

ऐसा कथन पाँच प्रकार से हो सकता है।

दो०—कारज मिस कारन[1] कथन, कारन के मिस काज[2]।
कहुँ सामान्य[3] बिसेष[4] ह्वै, होत ऐसही साज॥

१ सती में आसक्त (शिव), सत्यभामा में आसक्त, सत्य में आसक्त। २ ब्राह्मण, गणेश, चंद्र। ३ दास, प्रजा मनुष्य। ४ लक्ष्मी, धन।

कहुँ सरिस सिर डारि कै, कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुत परसंस के पंच भेद अवदात॥

(१) कारज मिस कारण कथन-कारज निबंधना—अर्थात् इष्ट तो है कारण का कथन, पर उसे सीधे शब्दों में न कहकर उसके कार्य का कथन करके वह कारण जनाया जाय।

१—दो०—मातु पितहिं जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।

यहाँ परशुरामजी का असल मतलब तो यह कहने का कि 'मैं तुम्हें मार डालूँगा' पर ऐसा न कहकर कहते हैं कि हे राजकुमार ! 'तू अपने माता-पिता को शोचबस मत कर'। 'किसी का मारा जाना' यह कारण है, और उसके 'माता-पिता का शोचबस होना' यह कार्य है। सो कार्य कह कर कारण जताते हैं।

२—सवैया

राधिका के अँसुवान को सागर बाढ़त जात मनो नभ छ्वैहै।
बात कहा कहिए ब्रज की अब बूड़ोई ह्वैहै कि बूड़त ह्वैहै॥

इसमें अश्रु-सागर का बढ़ना और ब्रज का बूड़ना जो कार्य रूप है सो कहा, पर असल कारण 'बिरह की अधिकता' साफ़ शब्दों में न कहा। इससे यहाँ भी 'कारज मिस कारण का कथन' है।

३—दो०—गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोष[1] अपार।
डगर डगर नै[2] ह्वै रही, बगर-बगर[3] के बार[4]॥

४—क०—राधे को बनाय बिधि धोयो हाथ ताको रंग,
जनि[5] भयो चंद हाथ झारे भए तारे हैं।

यहाँ भी धोवन से चंद और तारों का होना जो कार्य रूप

१ जो सूख न सके। २ नदी। ३ घर। ४ दरवाजा। ५ उत्पन्न होकर।

है कहकर राधिकाजी की 'अत्यंत सुंदरता' जो कारण है जताई गई है।

५—दो०—तव पद-नख की दुति कछुक धोय गई जल साथ।
तेहि कारन मिलि दधि[1] मथत चंद्र भयो है नाथ॥

यहाँ भी धोवन से चंद्रमा का होना जो कारज रूप है वर्णन करके श्रीकृष्ण के पदनख की 'महान् छटा' जो कारन-रूप है सूचित की गई है।

(२) कारण के मिस काज-कारण निबंधना—अर्थात् जहाँ कार्य तो कहना हो, पर कहा जाय कारण। जैसे—

१—चौपाई

कोउकहजबबिधि[2] रतिमुख कीन्हा। सारभाग ससिकरहरिलीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ-परिछाहीं॥

यहाँ रतिमुख की अत्यंत सुंदरता जो कार्यरूप है—न कहकर उसका कारण (चंद्रमा का सारभाग) कथन किया गया है। यही कारण मिस कार्य का कथन है।

२—दो०—लीन्हों राधा मुख-रचन, बिधि ने सार तमाम।
तेहि मग होय अकास यह, ससि में दीखत स्याम॥

३—सवैया

जोति के गंज में आधो बराय बिरंचि रचो वृषभानु-दुलारी।
आधो रह्यौ फिर ताहू में आधो लै सूरज चंद्र-प्रभान में डारी।
'दास' द्वै भाग किये उबरे के तरैयन में छबि एक की सारी[3]।
एक ही भाग ते तीनहुँ लोक की रूपवती युवतीन सँवारी॥

४—सवैया

राधे के अंग गोराई सी और गोराई बिरंचि बनावन लीनी।
कै सत बुद्धि बिबेक सों एक अनेक बिचारन में मति दीनी॥

---

१ उदधि, समुद्र। २ ब्रह्मा। ३ छोड़ी।

बानिक तैसी बनी न बनावत 'केसव' प्रस्तुत है गई हीनी।
लै तब केसरि, केतकि, कंचन, चंपक, केदलि, दामिनि कीनी॥

इन सब कथनों से, जो कारणरूप हैं, 'राधा के मुख की अत्यंत छबि' जो कार्य रूप है प्रगट होती है। इसलिये यह सब कारण मिस कार्य का कथन है।

५—दो०—गर्भन के अर्भक[1] दलन, परसु मोर अति घोर।

यहाँ भी परशुराम ने कारणरूप परशु का वर्णन करके मारणरूप कार्य को सूचित किया है। ऐसा ही यह भी है—

६—दो०—तदपि कठिन दसकंध सुनु, छत्रि-जात कर रोष।

(३) सामान्य मिस विशेष का कथन-सामान्य निबंधना—जहाँ कोई सामान्य सी बात कह के विशेष का तात्पर्य जताया जाता है। यथा—

१—चौपाई

सूपनखा की गति तुम देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी।

इस कथन में 'सूपनखा की दशा' सामान्य रीति से कहकर यह प्रस्तुत जताया गया कि तुम्हें रामचंद्र के समान सबल पुरुष से बैर न करना चाहिए।

२—दो०—धरे न मन में सोच जे, बैर प्रबल सों ठानि।
सोवत आगि लगाय ते, सदन माँझ पट[2] तानि॥

३—दो०—बड़े प्रबल सों बैर करि, करत न सोच-बिचार।
ते सोवत बारूद पर, पट में बाँधि अँगार॥

ऊपर के इन दोनों दोहों में कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का किसी विशेष सबल पुरुष से बैर करने की मनाही करना चाहता है, पर उस विशेष पुरुष का नाम न लेकर सामान्य भाव से एक साधारण बात कहता है।

१ गर्भ के बच्चे। २ चादर।

(४) विशेष मिस सामान्य का कथन—विशेष निबंधना—

१—सवैया

'दास' परस्पर प्रेम लखो गुन छीर[१] को नीर मिले सरसातु[२] है।
नीरै बेचावत आपने मोल जहाँ जहाँ जायकै छीर बिकातु है।
पावक[३] जारन छीरै लगै तब नीर जरावत आपनो गातु है।
नीर की पीर निवारन कारन छीर घरी ही घरी उफनातु है।

यहाँ जो छीर और नीर की प्रीति का वर्णन किया गया है सो अप्रस्तुत है अर्थात् कवि का प्रयोजन छीर-नीर की प्रीति के वर्णन से नहीं है, वरन् यह विशेष उदाहरण देकर प्रस्तुत बात यह सूचित करता है कि सब लोगों की प्रीति ऐसी ही करनी चाहिए।

२—दो०—धन्य सेष सिर जगत हित, धारत भुवि को भार।
बुरो बाघ अपराध बिनु, मृग को डारत मार॥

इसमें शेष और बाघ के अप्रस्तुत वर्णन से यह प्रस्तुत जताया गया कि बड़े होकर सब का भार अपने सिर लेना अच्छा काम है और सशक्त होकर निरपराधों को सताना बुरा काम है।

३—दो०—निज मंडल मधि राखि मृग, मृगलांछन भो चंद।
मृगपति भो मृग मारिकै, सिंघ सु सदा स्वच्छंद॥

इस दोहे में चंद्रमा और सिंह के विशेष उदाहरणों से यह सूचित किया गया कि अयोग्य को साथ रखने से कलंक लगता है और उसको विनष्ट कर देने से प्रशंसा होती है।

४—दो०—काटि लेत तरु बाढ़ई, सूधे सूधे-जोय।
बन में बाँके[४] वृच्छ को, काटत है नहिं कोय॥

१ दूध। २ बढ़ता है। ३ अग्नि। ४ टेढ़े।

इस दोहे के विशेष उदाहरण से सामान्यतया यह प्रस्तुत निकलता है कि सीधेपन से दुख होता है और कुटिल लोगों को सताने की कोई इच्छा ही नहीं करता।

(५) सरिस के सिर डारि कै सरिस से बात कहना—

(इसी को सारुप्य-निबंधना और अन्योक्ति भी कहते हैं)।

सूचना—

दो०—औरो एक पिछान है, मानि लेहु परतीत।
समासोक्ति भूषन जू है, ताको यह बिपरीत॥

१—दो०—भयो सरितपति सालिपति, अरु रतनन की खानि।
कहा बड़ाई समुँद की, जु पै न पीजत पानि॥

यहाँ समुद्र पर ढारकर यह बात किसी ऐसे धनी के लिये कही गई है, जो धनी तो बहुत बड़ा है, परंतु उससे किसी को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता है। कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, समुद्र का वृत्तांत अप्रस्तुत है।

२—सवैया

काल कराल परै कितनो पै मराल[1] न ताकत तुच्छ तलैया[2]।

यहाँ हंस पर ढारकर यह बात कही गई है कि विवेकी पुरुष दुःख पाने पर भी अनुचित कार्य करने की ओर नहीं झुकते।

३—चौपाई

मानस-[3]सलिल-सुधा-प्रतिपाली। जियै कि लवन-पयोधि[4] मराली।
नवरसाल[5]बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिनकरीला[6]॥

यहां हंसिनी और कोयल पर ढारकर यह जताया गया है कि सुकुमार और सुखभोगिनी स्त्रियां वनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकीं।

१ हँस। २ गड़ही। ३ मानसरोवर। ४ खारा समुद्र। ५ आम। ६ करील का बन।

४—चौपाई

सुन दसमुख खद्योत[1] प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी[2] करहि विकासा॥

यहाँ सीताजी कमलिनी पर ढारकर रावण से अपना वृत्त कहती हैं।

५—कवित्त—हारे बाटवारे जे बिचारे मंजलिन[3] मारे,
दुखित महा रे तिन को न सुख तैं दियो।
बन के जे पंछी तिनहू के काम को न कछू,
साँझ समै आय बिसराम उन ना लियो॥
आपनेहू तन की न छाया करि सक्यौ मूढ़,
'दयानिधि' कहै जग जन्म ही वृथा गयो।
घाम को न आड़ भयो फूल फल को न लाड़,
एरे ताड़ वृच्छ एतो बढ़िकै कहा कियो॥

यहाँ भी अप्रस्तुत ताड़ वृच्छ के वर्णन से किसी ऐसे बड़े मनुष्य का वर्णन प्रस्तुत है जिससे किसी को कुछ लाभ नहीं पहुँचता।

इसी अलंकार को लेकर गोसांई 'दीनदयालगिरि' ने 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' नाम का एक छोटा सा ग्रंथ ही रच डाला है।

६—दो०—नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनु तरुवर मति भूल।
अपत[4] भए बिन पाइहै, क्यों नव दल फल फूल॥
७—दो०—स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखु विहंग बिचारि।
बाज पराये पानि[5] परि तूँ पंछीन न मारि॥

सूचना—(अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति और पर्यायोक्ति का भेद)

(१) अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है।

---

१ जुगुनू। २ कमलिनी। ३ रास्ते का टिकाव। ४ पत्ते से हीन, अप्रतिष्ठित। ५ हाथ।

(२) समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन से किसी अप्रस्तुत का भी भान होता है।

(३) पर्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ घुमा फिराकर किया जाता है, सीधे-सीधे नहीं, उसमें अप्रस्तुत का कोई आभास नहीं होता है।

(३४) प्रस्तुतांकुर

दो०—प्रस्तुत में प्रस्तुत जहाँ, प्रगटत अंकुर न्याय।
प्रस्तुत अंकुर कहैं तेहि, बुद्धिमान कबिराय॥

विवरण—जब कोई बात इस प्रकार कही जाती है कि जिससे कही जाय और एक दूसरा व्यक्ति जिसको सुना कर कही जाय दोनों को लाभ पहुँचै, तब यह अलंकार होता है। कहने वाले का तात्पर्य (प्रस्तुत) दोनों से कथन करने का होता है। एक से तो प्रत्यक्ष कहता है, और दूसरे को सुनाने का तात्पर्य होता है। इस प्रकार मानो प्रस्तुत में से एक अंकुर निकलता है। प्रस्तुत बात एक के लिए होती है। और वह अंकुरवत् निकली हुई (प्रस्तुत) बात दूसरे के लिए। दूसरे को सुना कर दूसरे के प्रति जो उपालंभ या उपदेश दिया जाता है उस कथन में यह अलंकार अवश्य होता है।

१—दो०—सीत बात[१] आतप[२] सही, राख तेरिये आस।
तऊ पपीहा की जलद, तैं न बुझाई प्यास॥

यहाँ 'जलद' से तो प्रत्यक्ष ही कथन है, परंतु करने वाले का तात्पर्य एक अन्य जन को सुनाने का भी है जिससे वह कुछ आशा रखता था।

२—सो०—अलि कदंबतरु पाय, सुमन[३] भरो मकरंदमय।
तजि करील पै जाय, निरस[४] अपत[५] परसे कहा॥

१ वायु। २ घाम। ३ पुष्प, सुंदर मन। ४ रसहीन। ५ पत्रहीन, अप्रतिष्ठित।

यहाँ प्रत्यक्ष कथन भौरे से और सुनाना एक ऐसे व्यक्ति को है जो सर्वांग सुंदर वस्तु पाकर भी एक नीरस वस्तु पर प्रेम रखता है।

सवैया

दल[1] देखो नहीं अस जाड़ो बड़ो अरु घास घनो जल क्यों हरिहै।
कहि 'केसव' बात बहै, दिन दाव[2] दहै, धर धीरज क्यों धरिहै।
फलिहै फुलि नाहिं कि तौलौं तुही कहि तो यहँ भूख सही परिहै।
कछु छाँह नहीं सुख सोभ नहीं रहि कीर[3] करीर कहा करिहै।

यहाँ कीर प्रति तो प्रगट कथन है, पर सुनाना है एक ऐसे व्यक्ति को जो एक धनधान्यसंपन्न पुरुष को छोड़कर (करीलवृक्ष समान पत्ररहित) एक निर्धन मनुष्य का आश्रय लेना चाहता है।

४—कवित्त—निपट कठोर घोर कंटकन पूर्‌यो तन,
मूढ़ मन कहा गूढ़ गुन गावैगो।
कहै 'रघुनाथ' ताते आपनो अगारो[4] चेत,
हेत मत करै जानि ही में सोच छावैगो॥
गंध को न लेस मकरंद की न बुंद यामें,
छायाहू न सुखद सँताप तन तावैगो।
साहेब सुजान अलि मेरी कही मान,
पर अपत करील सेये तू न सुख पावैगो॥

सूचना—यह अलंकार गूढ़ोक्ति से मिलता-जुलता है। दोनों का भेद 'गूढ़ोक्ति' की सूचना में दिखलाया गया।

(३५) पर्यायोक्ति

दो०—परयायोक्ति प्रकार द्वै, कछु रचना सों बात।
मिस करि कारज साधिए, जो हित चितहि सोहात॥

१ समूह। २ दावाग्नि। ३ सुग्गा। ४ भविष्य।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में पेरीफ्रेसिस (Periphrasis) कहते हैं।

(१) कछु रचना सों बात'—जो बात कहनी हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमा फिराकर कहना। (कोई-कोई इस अलंकार में व्यंग्य मुख्य मानते हैं, परंतु हम ऐसा नहीं मानते) **जैसे**—कहना हो कि 'अमुक व्यक्ति मर गया।' इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहें कि 'अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बुला लिया' यह पर्योक्ति है।

१—दो०—जाके लोचन[1] करत हैं, कुबलय[2] कंज[3] प्रकास।
सो भाऊ भूपाल के, करत हिए में बास॥

२—दो०—कत भटकत गावत न क्यों, वाही के गुन गाथ।
जाके लोचन ही किये, बिन बलयनि[4] रति-हाथ।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि 'शंकर का भजन कर' यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसी के गुणगाथ क्यों नहीं गाता, जिसके नेत्रों ने रति के हाथों को बिना कंकण के कर दिया (अर्थात् काम को जलाकर रति को बिधवा कर दिया था)।

३—दो०—सीताहरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाय।
जो मैं राम तो कुलसहित, कहहि दसानन आय॥

इसमें रामजी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि 'मैं रावण को मारूँगा' इस प्रकार कहा जैसा कि दोहे के उत्तरार्ध से प्रगट है।

(२) 'मिस करि कारज साधिए'—जहाँ किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन का वर्णन हो, वहाँ दूसरी पर्यायोक्ति होगी। यथा—

१ चंद्र, सूर्य। २ कुमुदिनी। ३ कमल। ४ चूड़ी।

१—चौपाई

नाथ ! लखन पुर देखन चहहीं । प्रभु-संकोच डर प्रगट न कहहीं ।
जो राउर अनुसासन[1] पाऊँ । नगर दिखाय तुरत लै आऊँ ॥

यहाँ स्वयं रामजी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आज्ञा माँगते हैं ।

२—दो०—देखन मिस मृग बिहँग-तरु, फिरहि बहोरि-बहोरि[2] ।
निरखि-निरखि रघुबीर-छबि, बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥

३—चौपाई

पुर-बालक कहि-कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना ।

४—दो०—सब सिसु यहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात ।
तनु पुलकहिं अति हर्ष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात ॥

५—दो०—पूस-मास सुनि सखिन सन, साईं[3] चलत सवार[4] ।
लै कर बीन प्रवीन पिय, गायो राग मलार ॥

यहाँ मलार राग गाकर पानी बरसा देने से स्वामी का विदेश-गमन रोक दिया । इसके बहाने से इच्छित कार्य साधन किया ।

सूचना—इस अलंकार में मिस, ब्याजादि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है चाहे कथन करे, चाहे और प्रकार से कहे । कैतवापन्हुति में एक वस्तु के छिपाने के हेतु से मिस या ब्याज से दूसरी वस्तु प्रगट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिए कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है, जिसे केवल मिस वा छल कहा जा सकता है ।

(३६) व्याजस्तुति (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—देखत तो निंदा लगै समुझे अस्तुति होय ।
ब्याजस्तुति भूषन सबै, ताहि कहैं कबि लोय ॥

---

१ आपकी आज्ञा । २ बार-बार । ३ स्वामी । ४ शीघ्र ।

१—दो०—कहा कहौं कहत न बनत; सुरसरि तेरी रीति।
ताके तू मूड़े[1] चढ़ै, जा आवै करि प्रीति॥

इसे देखने में तो गंगा की निंदा सी जान पड़ती है, समझने से यों स्तुति होती है कि जो प्रेम सहित तेरे पास आता है उसे तू महादेव बना देती है और फिर उसकी जटा में बैठ जाती है।

२—दो०—भसम जटा विष अहि-सहित, गंग कियो तैं मोहिं।
भोगी तें जोगी कियो, कहा कहों अब तोहिं॥

३—दो०—जमुना तुम अविवेकनी, कौन लियो यह ढंग।
पापिन सों निज बंधु[2] को, मान करावति भंग॥
—(पद्माकरकृत गंगालहरी से)

४—कवित्त—जोग जप जागै[3] छाँड़ि जाहु ना परागै[4] भैया,
मेरी कही आँखिन के आगे सु तौ आवेगी।
कहै 'पदमाकर' न ऐहै काम सरसुती,
साँचहू कलिंदी[5] कान करन न पावैगी॥
लैहै छीनि अंबर[6] दिगंबर कै जोरावरी[7],
बैल पै चढ़ाय फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,
सुगंगा गजखाल की खिलत[8] पहिरावैगी॥

५—कवित्त—एक महापातकी स्वगात की दसा बिलोकि,
देत यो उराहनो सु आठहूँ पहर है।
मीच समै तेरो उत आप[9] गयो कंठ इत,
ब्यापि गयो कंठ कालकूट[10] सा जहर है॥
आप चढ़ी सीस मोहिं दीन्हीं बकसीस,

१ सिर। २ भाई (यम)। ३ यज्ञ। ४ प्रयाग। ५ यमुना। ६ वस्त्र। ७ बरबस। ८ पोशाक। ९ जल। १० हलाहल।

औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर[1] है।
मोहि करि नंगा अंग-अंगन भुजंगा बाँधो,
एरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है॥

६—बरवा—कुजनपाल[2] गुनवर्जित[3], अकुल[4] अनाथ[5]।
कहहु कृपानिधि राउर, कस गुननाथ॥

सूचना—पद्माकर कृत 'गंगालहरी' में इस अलंकार के बहुत उत्तम उदाहरण हैं। विनयपत्रिका में 'बावरो रावरो नाह भवानी' वाला पद इसी अलंकार में कहा गया है।

(दूसरी)

दो०—कीन्हे पर-अस्तुति जहाँ, पर-अस्तुति दरसाय।
ताहू को ब्याजस्तुतै, कहैं कबिन के राय॥

१—चौपाई

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कौनि भलाई॥

यहाँ दूत की बड़ाई से दूत के मालिक (रामचंद्रजी) की बड़ाई झलकती है।

२—दो०—या वृंदावन-बिपिन में, बड़भागी मम कान।
जिन मुरली की तान सुनि, किय हर्षित अँग आन[6]॥

यहाँ कानों की बड़ाई से मुरली की अत्यंत बड़ाई प्रगट होती है।

(३७) ब्याजनिंदा (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—अस्तुति कीन्हेहू जहाँ, निंदा ही दरसाय।
ताहि ब्याजनिंदा कहैं, कबि कोबिद हरषाय॥

---

१ जटा। २ बुरे लोगों को पालनेवाले, पृथ्वी के लोगों को पालनेवाले। ३ गुणहीन, निर्गुण। ४ कुलहीन, जिसका कोई कुल न हो। ५ दीन, जिसके ऊपर कोई स्वामी न हो। ६ अन्य।

१—दो०—सेमर तू बड़ भाग है, कहा सराह्यो जाय।
पंछी करि फल आस तोहि, निस-दिन सेवहिं आय॥

२—चौपाई

राम साधु तुम साधु सुजाना। राम मातु तुम भलि पहचाना॥

३—चौपाई

धन्य कीस[1] जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा॥
नाचि कूद करि लोग रिझाई। पति-हित करत कर्म निपुनाई॥

४—चौपाई—अहो मुनीस महाभट-मानी।

५—चौपाई

नाककान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी॥
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ। निजगुन निजमुख कहसि न काऊ[2]।

(दूसरी)

दो०—औरै की निंदा किए, पर की निंदा होय।
निंदा-व्याज तहाँ कहैं, कवि कोबिद सब कोय॥

१—दो०—दई[3] निरदई सों भई, 'दास' बड़ी यै भूल।
कमलमुखी के जिन कियों, हिय कठिनई अतूल[4]॥

यहाँ दई की निंदा से कमलमुखी (नायिका) की निंदा झलकती है।

२—दो०—जु हरि हमारो जीव निजु[5] ताहि चल्यो लै दूर।
को सो जो यहि कूर[6] को, धर्‍यो नाम अक्रूर॥

यहाँ अक्रूर की निन्दा से नामकरण करने वाले की भारी निंदा प्रगट होती है।

सूचना—इस अलंकार को अँग्ररेज़ी में आयरनी (Irony) और फ़ारसी तथा उर्दू में 'हजो मलीह' कहते हैं।

---

१ बंदर। २ कभी। ३ दैव, ब्रह्मा। ४ अतुल कठिनता। ५ निश्चय। ६ दुष्ट।

(३८) आक्षेप

दो०—कारज के आरंभ ही, जहँ कीजे प्रतिषेध।
आक्षेपा तासों कहत, तासु तीन हैं भेद॥
उक्ताक्षेप सु प्रथम है दुतिय निषेधाक्षेप।
तीजो सब कबिजन कहैं सुंदर ब्यक्ताक्षेप॥

विवरण—आक्षेप का अर्थ है 'बाधा' वा 'मुमानियत', अतः आक्षेपालंकार से मतलब है ऐंसी क्रिया वा ऐसा कथन करना जिससे कार्य में बाधा डालने का तात्पर्य सिद्ध हो। इसके तीन भेद हैं।

(१)—उक्ताक्षेप

दोहा

जहाँ कथित निज बात को, समुझि, करिय प्रतिषेध।
उक्ताक्षेप तहाँ कहैं, कबिजन मति-उतपेध[१]॥

जहाँ अपनी ही कही हुई प्रथम बात का निषेध करके दूसरी बात कही जाय।

१—दो०—तुव मुख विमल प्रसन्न अति, रहो कमल-सो फूलि।
नहिं नहिं, पूरन चंद सो, कमल कह्यो मैं भूलि॥

२—दो०—प्रभु प्रसन्न ह्वै दीजिए, स्वर्ग-धाम को बास।
अथवा याते भल कहा, करहु आपनो दास॥

३—दो०—सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु[२] फेरिए बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि इसमें निज कथित प्रथम बात का निषेध इसलिए **किया** जाता है कि दोबारा उससे बढ़कर बात कही जाय।

---

१ श्रेष्ठ बुद्धिवाले। २ नहीं तो।

(२) निषेधाक्षेप

दो०—पहले करै निषेध जो, फिर ठहरावै ताहि।
कहत निषेधाक्षेप तेहि, कबिजन सकल सराहि॥

विवरण—पहले किसी बात से इनकार किया जाय फिर अन्य प्रकार से उसकी स्थापना की जाय। यथा—

१—चौपाई

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति-अनुरूप रामगुन गाऊँ।

२—चौपाई

दसमुख मैं न बसीठी आयो। अस बिचारि रघुनाथ पठायो।

३—दो०—मैं न मान मेटा चहति कहति यहै उर धारि।

४—कबित्त—सरजा सिवा पर पठावत मुहीम[1] काज,
हजरत हम मरिबे ते नाहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥

५—सवैया

मोहि तू जानत है कपि हौं यह मैं कपि हौं नहीं, काल हौं तेरो।

(३) व्यक्ताक्षेप

दो०—करिबे की आज्ञा प्रगट, छिप्यो निषेध जु होय।
व्यक्ताक्षेप कहैं तहाँ, कबि कोबिद सब कोय॥

१—दो०—राज देन कहि दीन बन, मोहिं न सोच लवलेस।
तुम बिन भरतहिं भूपतिहि, प्रजहिं प्रचंड कलेस॥

२—दो०—सुख सों पीय सिधारिए, पग-पग होय कल्यान।
हौं हूँ जनमौंगी तहाँ, तुव जेहि देस पयान[2]॥

---

१ दूत। २ चढ़ाई।

३—कवित्त—जो हौं कहौं रहिए तो प्रभुता प्रगट होति,
चलन कहौं तो हित-हानि नाहिं सहनो।
भावै सो करहु तो उदास-भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु कैसे लोकलाज बहनो[1] ॥
'केसौंराय' की सौं[2] तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जोपै नाहिं राज[3] रहनो।
तैसिए सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहिं जैसो कछू कहनो ॥

(३६) विरोधाभास

दो०—द्रव्य क्रिया गुन जाति में, भासत जहाँ बिरोध।
कहत बिरोधाभास तेहि, बुधजनसहित सुबोध ॥

विवरण—जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वह विरोधाभास अलंकार है। ऐसा वर्णन वर्णनीय की विशेषता वा उत्कृष्टता जताने के लिए होता है। प्रस्तार करने से इसके दस भेद हो जाते हैं। जैसे—

जाति का विरोध—(१) जाति से (२) गुण से (३) क्रिया से (४) द्रव्य से।

गुण का विरोध—(१) गुण से (२) क्रिया से (३) द्रव्य से।

क्रिया का विरोध—(१) क्रिया से (२) द्रव्य से।

सूचना—कुछ उदाहरण लिख देते हैं। पाठक स्वयं विचार कर लें कि किसका किससे विरोध है।

(सूरसागर से)

१—पद—चरन कमल बंदौं हरि-राई[4]।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कछु दिखराई।

---

१ लोक लाज की रक्षा। २ शपथ। ३ हे प्रियतम। ४ श्रीकृष्ण।

बहिरो सुनै मूक[1] पुनि बोलै रंक[2] चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार-बार बंदौं तेहि पाई[3]।

(रामायण से)

२—दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत बिधाता[4] बाम।
धूरि मेरु सम जनक[5] जम, ताहि ब्याल सम दाम[6]॥

३—चौपाई—तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई।

४—चौपाई

गरल[7] सुधा, रिपु करै मिताई। गोपद[8] सिंधु, अनल[9] सितलाई॥
गरुअ सुमेर रेनु[10] सम ताही। राम-कृपा करि चितवहिं जाही॥

५—दो०—पवन अचल गिरि रेनु पुनि, जलधि नहीं गंभीर।
धरा अतिहिं लघु होति है, कृपादृष्टि रघुबीर॥

६—कबित्त—झांकी रघुबीर की बिलोकि कै अचेतन भे,
चेतन, अचेतनहू चेतन भे देख्यौ आज।

७—दो०—सो अज[11] प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद।

८—कबित्त—कुलिस कठोर कूर्म-पीठि ते कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि[12] चढ़ायो है।
'तुलसी' सो राम के सरोजपानि[13] परसत ही,
टूटो मानो बारे ते[14] पुरारि[15] ही पढ़ायो है॥

९—सवैया

वा मुख की मधुराई कहा कहौ मीठी लगै अंखियान लुनाई[16]।

१०—दो०—लाल तिहारे दृगन की, कहौ रीति यह कौन।
जासों लागैं पलक[17] दृग, लागैं पलक पलौ न॥

---

१ गूँगा। २ दरिद्र। ३ पैर। ४ ब्रह्मा। ५ पिता। ६ रस्सी। ७ विष। ८ गो खुर से बने गड्ढे में अँटनेवाला जल। ९ अग्नि। १० धूल। ११ अजन्मा। १२ शीघ्रता से। १३ कर-कमल। १४ लड़कपन से। १५ महादेव। १६ लावण्य। १७ क्षणभर के लिये।

११—दो०—तंत्री-नाद[1] कवित्त-रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग॥
११—दो०—कितो मिठास दयो दई इते सलोने रूप।

सूचना—(१) यह अलंकार अद्भुत रस की कविता के लिये बड़े काम का है। (२) इससे मिलता जुलता विषमालंकार का दूसरा भेद है। दोनों की पहचान भली-भाँति कर लेनी चाहिये। दोनों में भेद यह है कि इस विरोधाभास में जो विरोध कथन किया जाता है वह केवल आभासमात्र (नितांत झूठा) है। विषमालंकार के दूसरे भेद में जो विरोध कहा जाता है वह सत्य होता है और केवल कार्यकारण के संबंध ही में कहा जाता है। (३) इस अलंकार को फ़ारसी तथा उर्दू में मुहतमिलुल् ज़िद्दैन कहते हैं।

(४०) विभावना

किसी घटना के कारण के संबंध में कोई विलक्षण कल्पना की जाय, उसे 'विभावना' कहते हैं। इसके छः भेद हैं—

(पहली)

दो०--कारण बिनही होत है, कारज कौनो सिद्ध।

१—चौपाई

बिन पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधि नाना[2]।
आननरहित[3] सकल रस-भोगी। बिन बानी बकता[4] बड़ जोगी॥

२—पद—केसव ! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति[5] पर चित्र रंग नहिं तनु-बिनु लिखा चितेरे।
... ...
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन[6] जे जाहिं।

१ बाजे का शब्द। २ अनेक प्रकार से। ३ मुख के बिना। ४ बोलने वाला। ५ दीवार। ६ पीने के लिये।

३—दो०—सुनत लखन श्रुति नैन बिनु, रसना[1]बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसे बिना निकेत[2]॥

(दूसरी)

दो०—हेतु अपूरन ते जहाँ कारज पूरन होय।

१—चौपाई

काम कुसुम-धनु-सायक[3]लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हें।

२—कवित्त—तासो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों,
जीत्यों जंग सरदार सौ हजार असवार को।

३—सवैया

राजकुमार सरोज से हाथन सों बांहि संभु-सरासन[4] तोर्यो।

४—सवैया

संकर पायन में लगु रे मन थोर ही बातन सिद्ध महाई।

५—दो०—मंत्र परम लघु जासुबस, बिधि हरिहर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहँ, बस करु अंकुस खर्व[5]॥

(तीसरी)

दो०—प्रति बंधक के होत हू होय काज जेहि ठौर।

१—दो०—अति बिचित्र गति रावरी, जग जाहिर जसवंत।
तेज छत्रधारीनहू[6], असहन ताप करंत॥

२—चौपाई

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहिं अछय[7] जेइ मारा।

३—दो०—नैना नेक न मानहीं, कितो कहौ समुझाय।
ये मुँहजोर तुरंग लौं[8], ऐंचत हू चलि जाँय॥

---

१ जीभ। २ स्थान। ३ फूल के धनुष बाण। ४ धनुष। ५ छोटा। ६ राजा (छाता लगाए हुए)। ७ अक्षय कुमार। ८ घोड़े की तरह।

४—दो०—तुव बेनी नागिन रहै, बांधी गुनन[1] बनाय।
तऊ बाम[2] ब्रजचंद को, बदाबदी[3] डसि जाय॥

सूचना—तऊ, तौभी, इस अलंकार के वाचक हैं।

(चौथी)

दो०—जाको कारन जो नहीं उपजत ताते तौन।

१—सवैया

चंपक की लतिका तें सुबास सुमालती की पसरै सुखदैन री।
कौंल[4] के कोस तें गंध गुलाब की आवत है लखि[5] दायक चैन री॥
'गोकुलनाथ' कुहू[6] निसि में यह राका[7] की रातिकीदाहऽवहैन री।
देखु कपोत के कंठ ते आली कढ़ै कल कोकिल को बर बैन री॥

२—दो०—भयो कंबु[8] ते कंज[9] इक, सोहत सहित विकास।
देखहु चंपक की लता, देत गुलाब सुबास॥

३—दो०—बन बिहार थाकी तरुनि, खरे थकाये नैन।

४—चौपाई—भयो तात निसिचर-कुल-भूषन।

५—दो०—बीना नाद जु संख सों, होत सुनौ दै ध्यान॥

(पाँचवीं)

दो०—बरनत हेतु बिरुद्ध तें, उपजत है जहँ काज।

१—दो०—सिय हिय सीतल भो लगे, जरत लंक की झार[10]।

२—सवैया

आनन ऐन[11] सुधा को हहा तहिते इतनो विषबैन बकै तू।

३—दो०—तुव मुख रबि बालातप[12] जु, मरुनायक जसवंत।
अन्य नृपन के कर-कमल, युत-संकोच करंत॥

---

१ डोर। २ टेढ़ा। ३ शर्त बाँधकर, अवश्य। ४ कमल। ५ देखो। ६ अमावस्या। ७ पूर्णिमा। ८ शंख (गर्दन)। ९ कमल (मुख)। १० ज्वाला, लपट। ११ ठीक। १२ बाल सूर्य की धूप।

४—कवित्त—क्यों न उतपात होइ बैरिन के झुंडन में,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं[1]।

(छठीं)

दोहा—कारज सों जहँ होति है, कारन की उतपत्ति ।
१—दो०—तुव कृपान धुव[2]-धूम तें, भयो प्रताप-कृसानु[3]।
२—कवित्त—और नदी नदन तें कोकनद[4] होत तेरो,
कर-कोकनद नदी नदी प्रगटत है[5]।
३—दो०—कल-कलपद्रुम सों कर्‌यो, जस-समुद्र उतपन्न ।

४—सवैया

हाय उपाय न जाय कियो ब्रज बूड़त है बिनु पावस पानी ।
धारन तें अँसुवान की है चखमीनन[6] तें सरिता सरसानी ॥

(४१) विशेषोक्ति

दो०—विद्यमान कारन बन्यो, तऊ न फल जहँ होय ।
ताहि बिसेषोकति कहैं, कबि कोबिद सब लोय ॥

१—सवैया

हाथी हजारन के बल 'केसव' खेंचि थके पट की डर डारे ।
द्रौपदी को दुहसासन पै तिल अंग तऊ उघर्‌यो न उघारे ॥
२—दो०—त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाय[7]।
सगुन सलोने रूप की, जु न चख तृषा[8] बुझाय ॥
३—दो०—लिखन बैठ जाकी सबिहि[9] गहि गहि गरब गरूर[10]।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर[11]॥

---

१ काले केशों में बँधे लाल गिरे पड़ते हैं । २ निश्चय । ३ अग्नि । ४ कमल । ५ दान के जल से । ६ नेत्र रूपी मछली । ७ छककर । ८ नेत्र की प्यास (दर्शन की इच्छा) । ९ छबि चित्र । १० अभिमान । ११ मूर्ख ।

४—सवैया

दौलति इंद्र समान बढ़ी पै खुमान को नेक गुमान न आयो।

५—सो०—लाग न उर उपदेश, जदपि कह्यो सिव बार बहु।

(४२) असंभव

दो०—अनहोनी सी बात कछु होय असंभव सोय।

१—सवैया

जोग सिखावन को हमको बहुर्यो तुमसे उठि धावन[1] ऐहैं।
ऊधो नहीं हम जानती तीं मनमोहन कूबरी हाथ बिकैहैं॥

२—कवित्त—ऐसी कौन जानत हों ए हो कवि 'रघुनाथ',
बूड़ि घरी द्वै लौं[2] तरे पानी ही के लरिहैं।
सीस पर चढ़ि आपु ताली दै करत नृत्य,
नाथ ब्याल-काली[3] कालीदह ते निकरिहैं॥

३—दो०—को जानै था गोपसुत, गिर धारैगो आज।

४—दो०—यह को जानत हो जु कपि, जैहैं लंका जारि॥

५—कवित्त—जासों बैर करि भूप बचैं न दिगंत ताके,
दंत तोरि तखत तरे तैं[4] आयो सरजा[5]।

सूचना—'कौन जानता था कि' या इसी भाव के अन्य शब्द इस अलंकार के सूचक हैं।

(४३) असंगति

दो०—कारन कारज को जहाँ लखौ बिरोधाभास।
ताहि असंगति जानिये कबि जन सहित हुलास॥

(असंगति अलंकार के तीन भेद हैं।)

---

१ दूत। २ तक। ३ कालीय नाग। ४ पास से। ५ शिवाजी।

(प्रथम)

दो०—कारन कहुँ कारज कहूँ, देस काल को बीच।
कहैं असंगति प्रथम तेहि, कबिजन बुद्धि-अनीच॥

१—सवैया

सीतहि लै दसकंध गयो पै गयो है बिचारो समुंदर बांध्यो।

२—दो०—और करै अपराध कोउ, और पाव भल-भोग।
अति विचित्र भगवंत-गति, को जग जानै जोग॥

३—दो०—कोयल मदमाती भई, झूमत अम्बा-मौर[1]।

४—कवित्त—महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जाति नै करि गनीम[2] अतिबल की।
'भूषन' चलत सरजा की सैन भूमि पर।
छाती दरकति है खरी अखिल खल की॥
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिली-दल की।
सूरति जराई कियो दाह पात साह उर,
स्याही[3] जाय सब पात साही मुख झलकी॥

(दूसरी)

दो०—और ठौर करनीय जो, करै और ही ठौर।
द्वितिय असंगति कहैं तेहि, जे कविता सिर मौर॥

१—दो०—पहिर कंठ बिच किंकिनी[4], कस्यो कमर बिच हार।

२—सवैया

पायन की सुधि भूलि गई अकुलाय महाउर आंखिन दीन्हीं।

---

१ आम की बौंर। २ शत्रु की गरदन झुक जाती है। ३ कालिख। ४ कर्धनी।

(तीसरी)

दो०—काज कियो चाहत प्रथम, तासों करै बिरुद्ध ।
ताहि असंगति तीसरी, बरनत जे मति सुद्ध ॥

१—चौपाई

राज देन कहँ सुभ दिन साधा[1] । कह्यो जान वन केहि अपराधा ॥

२—दो०—प्रगट भये घनस्याम[2] तुम, जग प्रतिपालन-हेत ।
नाहक बिथा-बढ़ाय के, प्रेमिन के जिय लेत ॥

३—दो०—प्रगट भयो है जलद तू, जग को जीवन[3] दान ।
मेरी जीवन लेत है, कौन बैर मन आन ॥

४—दो०—मोह मिटावन हेत प्रभु, लीन्हों तुम अवतार ।
उलटो मोहन-रूप धरि, मोहीं सब व्रजनार ॥

५—सवैया

काज महाऋतुराज बली के यहैं बनि आवत है लखतेही ।
जात कह्यो न कहा कहिए 'रघुनाथ' कहैं रसना एक एही[4] ॥
साल रसाल तमालहिं आदि दै जेतिक वृच्छ लता बन जेही ।
नौ दल की बहि को प्रगट्यो पर कै पतझार दियो पहिले ही ॥

(४४) विषम

अनमिल वस्तुओं वा घटनाओं के वर्णन में विषम अलंकार होता है ।

(प्रथम)

अनमिल अनमिल बस्तु को, वर्नन है जेहि ठौर ।
प्रथम बिषम तेहि कहत हैं, सकल सुकबि सिरमौर ॥

---

१ ठीक किया । २ बादल (श्रीकृष्ण) । ३ जल । ४ यही ।

१—दो०—मैं के बा[१] बिनती करी, मान ठानि दुःख दैन ।
कहाँ मधुर मृदु मुख कहाँ, कठिन काठ[२] से बैन ॥

२—सवैया

जोग कहाँ मुनि लोगन जोग कहाँ अबला गति है चपला सी ।
स्याम कहाँ अभिराम सुरूप कुरूप कहाँ वह कूबरी दासी ॥

३—चौपाई—कहँ कुंभज[३] कहँ सिंधु अपारा ।

४—सवैया

राजकुमार के कंज से पानि[४] कहाँ कहँ संभुसरासन बज्र सो ।

५—दो०—कहाँ सीप मुक्ता कहाँ, कहाँ कमल कहँ पंक ।
कहँ कस्तूरी मृग कहाँ, बिधि बुधि है सकलंक ॥

६—दो०—को कहि सकै बड़ेन की, लखे बड़ी हू भूल ।
दीन्हें दई[५] गुलाब के, इन डारन ये फूल ॥

७—चौपाई

जेइ बिधि तुमहिं रूप[६] अस दीन्हा । तेइ जड़बर[७] बाउर[८] कस कीन्हा ॥

८—हरि०—कस कीन्ह बर बौराह जेइ बिधि तुमहिं सुंदरता दई ।
जो फल चहिय सुरतरुहि[९] सो बरबस बबूरहिं लागई ॥

९—सवैया

खारोकियोहैपयोनिधि[१०] कोप यकारो[११] कियोपिक[१२] सो अनुमानो ।
कंटक पेड़ गुलाब किए अरु चातक बारहु मास तृषानो[१३] ॥
पंक को अंक[१४] कियो है मयंक में आग कियो है चकोर को खानो ।
'सागर मित' सबै परखा[१५] कर हंसपती[१६] हर-बाहन[१७] जानो ॥

---

१ कितनी ही बार । २ काठ से कड़े । ३ अगस्त्य । ४ हाथ । ५ दैव, ब्रह्मा । ६ सौंदर्य । ७ दूल्हा । ८ पागल । ९ कल्प वृक्ष । १० समुद्र । ११ जल । १२ कोयल । १३ प्यासा । १४ चिन्ह । १५ देख लिया । १६ ब्रह्मा । १७ बैल ।

(दूसरी)

दो०—कारन औरै रूप को, कारज औरै रूप।
विषम अलंकृत दूसरो, बरनत हैं कबिभूप॥

१—दो०—खड्ग-असित[1] जसवंत को, प्रगट कर्‌यो जस सेत।

२—बरवै—स्याम गौर दोउ मूरति, लछिमन-राम।
इनते भइ सित[2] कीरति, अति अभिराम॥

३—दो०—उपजे जदपि पुलस्ति-कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर[3]-साप बस, भये सकल अघरूप[4]॥

४—दो०—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम[5] रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥

५—सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लखे कुनबा[6]-नृप सारे॥

६—कवित्त—'भूषन' भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही[7] के उड़ाय गये जियरे[8]।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे॥

सूचना—विषमालंकार के इन भेदों को फ़ारसी तथा उर्दू में 'सनअत तजाद' कह सकते हैं।

(तीसरी)

दो०—और भलो उद्यम कियो होत बुरो फल आय।
ताहि विषम तीजो कहत बुद्धिवंत कबिराय।

---

१ काला। २ सफेद। ३ ब्राह्मण। ४ काले। ५ काला, श्रीकृष्ण। ६ वंश। ७ बादशाहत। ८ हृदय।

१—चौपाई

सीतलसिख[१] दाहक भइ कैसे। चकइहिं सरद चाँदनी जैसे॥

२—चौ०—भलो कहत दुख रउरेहु लागा।

३—दो०—लोने मुख दीठि न लगै, यों कहि दीन्हों ईठ[२]।
दूनी ह्वै लागन लगी, दिये दिठौना दीठ[३]॥

४—कवित्त—कोप बस ह्वै कै हिरनाकुस उदित[४],
प्रह्लादै मारिबे को भया आपु ही हनों गयो[५]।

५—कवित्त—जारिबे को चाहत लंगूर जातुधान देखो,
बीर हनुमान जू जराय दई लंका को।

६—कवित्त—जीतिबे को आये भृगुनंद रघुनंदन को,
जीते गये आपु भये रीते[६] बीरताई सों॥

सूचना—कई एक कवियों ने 'विषम' अलंकार के ६ भेद लिखे हैं। परंतु विचार करने से जान पड़ता है कि आगे के तीन भेद इसी तीसरे भेद के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(४५) सम

यह विषमालंकार का ठीक विरोधी, इसके भी तीन भेद हैं,

(पहला)

दो०—बरनत जहाँ बिसुद्ध मति यथा योग्य को संग।
प्रथम समालंकार तेहि भाषत बुद्धि उतंग॥

१—सो०—जेहि बिधि रच्यों गोपाल, तेइ ठकुराइन[७] राधिका।
लखि चख होत निहाल[८], समसरि जुगुल किसोर की॥

२—दो०—चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा[९] वे हलधर के बीर[१०]॥

---

१ शिक्षा। २ इष्ट, सखी। ३ दृष्ट। ४ उद्यत। ५ मार गया। ६ रहित। ७ स्वामिनी। ८ आनंदित। ९ वृषभानु की पुत्री, (वृषभ=बैल+अनुजा=बहन, गाय)। १० बलदेव के भाई, (हलधर=बैल, वीर=भाई)।

३—चौपाई

जेइ बिरंचि[1] रचि सीय सँवारी। तेइ स्यामल बर रच्यों बिचारी॥

४—कवित्त—देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान वेद,
बूझे हैं सुजान साधु नरनारि पारखी[2]।
ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान,
राम से न बर दूलही न सीय सारखी॥

५—चौपाई

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक[3] बिबिध होहिं मगु जाता॥

६—दो०—कुबजा को कूबर मधुप, अहै त्रिभंगिहि[4] जोग।

(विनय पत्रिका से)

७—पद—देव! तू दयाल, दीन हौं तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी[5] तू पाप-पुंजहारी॥ १॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत[6] नहिं आरतिहर[7] तोसो॥ २॥
ब्रह्म तू, हौं, जीव हौं, तू ठाकुर[8], हौं चेरो[9]।
... ...॥ ३॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यौं त्यौं 'तुलसी' कृपालु चरन-सरन पावै॥ ४॥

८—दो०—मो सम दीन न दीन हितु, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु विषम भव-भीर[10]॥

(दूसरा)

दो०—कारन के सम बरनिये कारज को जेहि ठौर।
देखि सरिस गुन रूप तहँ, बरनत हैं 'सम' और॥

---

१ ब्रह्मा। २ परखने वाले। ३ खेल। ४ तीन जगह (ग्रीवा, कमर, पैर) से टेढ़े, श्रीकृष्ण। ५ पापी। ६ दुःखी। ७ दुःख हरने वाला। ८ स्वामी। ९ दास। १० सांसारिक पीड़ा।

१—दो०—सिय जु दुसह दुख सहि लियो सुता[1] भूमि की होय।

२—सो०—जग जीवन को दंद[2], उदय होत ही तम हरै।
छीर-सिंधु को नंद[3], क्यों न उजेरी होय ससि॥

३—दो०—मधुप ! बालपन ही पियो, दूध पूतना केर।
ताही ते दासी रुची, यामें कछू न फेर॥

(तीसरा)

**दो०—ताकी सिद्धि अनिष्ट बिनु, उद्यम जाके अर्थ।
ताको सम तीजो कहैं, जिनकी बुद्धि समर्थ॥**

१—चौपाई

दुंदुभि अस्थि[4] ताल[5] दिखराये। बिनु प्रयास[6] रघुबीर ढहाये॥

सुग्रीव ने राम की परीक्षा लेनी चाही। राम ने तुरंत परीक्षा दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

२—दो०—हरि ढूंढ़न ब्रज में गई, पाये गिरधर लाल।

३—चौ०—छुवतहिं टूट पिनाक[7] पुराना।

४—चौ०—छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू।

५—दो०—अति उतंग[8] गिरि पादप[9] लीलहिं[10] लेहिं उठाय।
आनि[11] देहिं नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु[11] बनाय॥

६—चौपाई

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक[12] इव नलनील सो लेहीं॥

७—चौपाई

तुरत बैद्य तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

(४६) विचित्र

**दो०—जहाँ करत उद्यम कछू, फल चाहत बिपरीत।
बरनत तहाँ विचित्र कहि, जे कविता के मीत॥**

---

१ पुत्री। २ दुःख। ३ पुत्र। ४ हड्डी। ५ ताड़। ६ प्रयत्न। ७ शिव का धनुष। ८ ऊँचा। ९ वृक्ष। १० खेल में। ११ लाकर। १२ फल।

१—दो०—जीवन हित प्रानहिं तजत, नवत उँचाई हेत।
सुख कारन दुख संग्रहैं, बहुधा पुरुष सचेत॥
२—दो०—क्यों नहिं गंगा को सुमिरि, दरस परस सुख लेत।
जाके तट में मरत नर, अमर होन के हेत॥
३—कवित्त—करिबे को उज्वल सुधा सो अभिरास देखो,
मन ब्रजबास रंगती है स्यामरंग[1] में।
४—सवैया
भवसागर के तरिवे के लिये बहु डूबत तीरथ नीर मँझारे।
५—दो०—इक सौ इक निजु पूरबजु, तृप्त करन के हेत।
अनछाने जब चून[2] को, पिंड गया में देत॥
६-दो०-अमर होन हित समर महँ जूझत पुरुष पुनीत॥

(४७) अधिक

इस अलंकार में आधार और आधेय का उत्कर्ष कहा जाता है। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—जहाँ बड़े आधार ते, अधिक होय आधेय।
अर्थात् बड़े आधार से भी आधेय का बड़ा कहना। जैसे :—
१-दो-जामे भारी भुवन सब, गँवई से दरसात।
तेहि अखंड ब्रह्मंड में, तेरो जस न अमात[3]॥
२—सवैया
सातो समुद्र धरी बसुधा यह सातो गिरीस धरे सब ओरे।
सात ही दीप सबै दरम्यान में होहिंगे खंड किते तेहि ठोरे।
'दास' चतुर्दस लोक प्रकासित हैं ब्रहमांड इकीसहि जोरे।
एते ही में भजि जैहै कहाँ खल श्रीरघुनाथ सों बैर बिथोरे[4]।

१ कालारंग, श्रीकृष्ण का प्रेम। २ चूर्ण, आटा। ३ अँटना। ४ बैर करके।

इसमें व्यंग से यह बात निकलती है कि श्रीरामजी का अमल दखल इससे भी अधिक स्थानों में है, अर्थात् इतने आधार से बहुत बड़ा है।

(दूसरा)

दो०–जहँ अति लघु आधार महँ, धरैं बड़ो आधेय।

अर्थात् बड़े आधेय का छोटे आधार में रखना। जैसे—

१—दो०—जो यदुपति के उदर में, सिगरी बसत जहान।
सुख सों राखति ताहि तू, हियरे हार-समान॥

२—दो०—बिस्वामित्र मुनीस की, महिमा अपरम्पार।
करतलगत आमलक[1] सम, जिनको सब संसार॥

३—चौपाई

ब्रह्मांड-निकाया[2] निर्मित माया रोम-रोम प्रति बेद कहै।
मम उदर सो बासी यह उपहासी सनत धीर मति थिर न रहै॥

४—दो०—ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत-बिनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस, कौसल्या की गोद॥

५—दो०—तुम जो गिरिवर कर धर्‌यौ, सो है हलकी बात।
गिरि-समेत मैं उर धरयो, नेकौ ना गरुआत॥

(४८) अल्प

दो०–अति छोटे आधेय ते, अति छोटी आधार।
ताहि अल्प भूषन कहैं, जे सुबुद्धि-आगार॥

अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म आधेय की अपेक्षा आधार का अति सूक्ष्म वर्णन करना इस अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। यथा :—

१—बरवा—अब जीवन की हे कपि, आस न मोहिं।
कन गुरिआ की मुंदरी, कँगना होहिं॥

---

१ आँवला। २ समूह।

जानकीजी हनुमानजी से कहती हैं कि छिगुनी का छल्ला (अति छोटा छल्ला) हाथ में कंकड़ की तरह होता है (अर्थात् इतनी दुबली हो गई हूँ)।

यहाँ छल्ला आधेय और कर आधार है। अति छोटे आधेय से आधार को और भी सूक्ष्म कहा गया है।

२—दो०—राम-रोम-प्रति राजहीं, कोटि-कोटि ब्रह्मांड।

३—दो०—भुजा भई अति दूबरी, कंकन कीन्हीं छाप॥

(मुरारिदान की सम्मति)

चौपाई—रम्य होय जेहि ठाँ अलपाई।
अल्प अलंकृत सों सुखदाई॥

इस परिभाषा से आधार और आधेय का झगड़ा मिट जाता है। हमारी भी यही सम्मति है कि इस अलंकार के लिये आधार और आधेय का झगड़ा न लगाना चाहिये। मनोरंजक अल्पता के वर्णन में इसे स्वच्छंद विचरने देना चाहिये।

(४६) अन्योन्य

दो०—जो जासों जैसो करै, सो तासों तस कीन।
अन्योन्यालंकार तेहि, भाषैं सब मति-पीन॥

१—सवैया

मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन-अगोचर[1] अनुभवहीं।

२—दो०—सर की सोभा हंस है, राजहंस की ताल।

३—सवैया

वे उनको अपराध करैं नहिं, वे उनको न उदास करैं चित।
वे मित[2] राखे रहैं उनकी 'रघुनाथ' वे राखे रहैं उनकी मित॥

१ जो वचनों द्वारा न कहा जा सके, अनिर्वचनीय। २ प्रेम-भाव की मर्यादा।

प्रेम पगे दोउ आपुस में यहि भाँति बरोबर क्यों न बढ़े हित।
वे सुख देत रहैं उनको नित वे सुख देत रहैं उनको नित ॥

४—दो०—सब्द सु सोभा अर्थ की देत बढ़ाय निहार।
त्योंही सोभा सब्द की बढ़वत अर्थ 'मुरार' ॥

५—चौ०—ससि सों निसा निसा सों ससि भल।

६—चौ०—कबि सों सभा सभा सों कबिवर।

७—दो०—रामचंद्र बिनु सिय दुखी, सिय बिनु उत रघुराय।

८—सो०—मनमोहन तन घन, घन सु रमनि-राधिका-मोर।
श्रीराधा-मुखचंद्र को गोकुलचंद[1] चकोर ॥

(५०) विशेष

इस अलंकार के तीन भेद हैं।

(पहला)

दो०—जहँ जाहिर आधार बिनु, है आधेय सुरंज।

१—दो०—सुभदाता, सूरो, सुकबि, सेंत करै आचार।
बिना देहहू 'दास' ये जीवित हैं संसार।

२—दो०—बंदनीय केहिके नहीं, ये कबिंद मतिमान।
स्वरग गयेहू काव्यरस, जिनको जगत[1] जहान।

३—सवैया

सेनप[2] केते लपेटि लँगूर सों दीन्हे उड़ाय फटे फहरात हैं।
सागर व्योम के बीच लटे[3] उलटे दल ऊपर ते मँडरात हैं ॥

४—दो०—बिनू बारिद बिजुरी बिना, बारि लसत जुग मीन।
बिधु ऊपर तम-तोम[4] है निरखी रीति नवीन ॥

५—कवित्त—मार के करैया अरि अमरपुरै[5] गे तऊ,
अजौं मारु-मारु सोर होत है समर में।

१ जगमगाता है। २ सेनापति। ३ लटके हुए। ४ समूह। ५ स्वर्ग।

(दूसरा)

दो०—थोरे ही आरंभ में, लाभ अलभ्य बखान।

१—दो०—पाइ चुके फल चारहू करि गंगाजल पान।

२—सवैया

आज की या छबि देखि सखी अब देखिये को न रहो कुछ बाकी।

३—चौपाई

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहिं राम पिरीते[1]।

(तीसरा)

दो०—बस्तु एक जहँ युक्ति तें, बहु थल बरती जाय।

१—दो०—घर बाहर अध[2] ऊरधो सब ठां राम लखाय।

२—दो०—सोवत जागत दिसि-बिदिसि, देखि परैं घनस्याम।
कंस-हृदय आठहु पहर, कृष्न करैं बिश्राम॥

२—चौपाई

सती दीख कौतुक[3] मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता।
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर भेषा।
जहँ चितवै तहँ प्रभु आसीना[4]। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना।

४—चौपाई

सीयराम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

५—दो०—निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सों करैं बिरोध।

६—दो०—गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस रास।
लहाछेह[5] अति गतिन को, सबन लखे निज पास॥

७—दो०—जल में थल में गगन में, जड़ चेतन में 'दास'।
चर अचरन में एक है, परमातम-प्रकास॥

१ प्यारे। २ नीचे। ३ तमाशा। ४ बिराजमान। ५ एक प्रकार का नाच।

सूचना—यह अलंकार पर्याय अलंकार से मिलता-जुलता है। भेद यह है कि इसमें एक वस्तु का 'एक ही समय' में 'बहु थलों' में होना कहा जाता है और पर्याय में एक ही वस्तु का बहु थलों में क्रमशः आश्रय लेना वर्णन किया जाता है।

(५१) व्याघात

व्याघात = धक्का—इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—एकहि बस्तु जहाँ कहूँ, करै सुकाज बिरुद्ध।
प्रथम तहाँ व्याघात कहि, बरनै कवि मतिसुद्ध॥

१—दो०—जासों काटत जगत के, बंधन दीनदयाल।
ता चितवनि सों तियन के, मन बाँधे गोपाल॥

२—सवैया

जान उतारत हो तन-ताप[1] सो जारत आजु सुधाधर सोई।

३—सवैया

तू सबको प्रति पालनहार बिचारे भतार[2] न मारु हमारे॥

४–दो०—बरसत जु ससि पियूष सो, विष बरसत मोहिं जोय[3]।

५—चौपाई

नाम-प्रभात जान सिव नीके। कालकूट फल दीन अमी[4] के।

(दूसरा)

दो०—एकै कारक साधनो, करिकै क्रिया बिरुद्ध।
सो दूजो व्याघात है, बरनत सुकबि सुबुद्ध॥

१—दो०—लोभी धन संचय करै, दारिद[5] की डर मानि।
'दास' यहै डर मानि कै, दान देत है दानि॥

---

१ गर्मी। २ पति। ३ देखकर। ४ अमृत। ५ गरीबी।

२—दो०—रन ते हूवे को अमर, भागत कायर कूर।
यहै चाह चित करि, नहीं बिचलत साँचे सूर॥
३—दो०—दुख दारिद की संक सों, लोभी स्वधन न देत।
दातहु ताही संक सों, सरबस देत सहेत॥

४—चौपाई

मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

(५२) कारणमाला (गुंफ)

(प्रथम)

दो०—कारन ते कारज प्रगटि, कारन ह्वै ह्वै जात।
तेहि कारनमाला कहैं, जे कबिबर बिख्यात॥

१—दो०—बिद्या देती बिनय को, बिनय पात्रता मित्त[1]।
पात्रत्वै[2] धन, धन धरम, धरम देत सुख नित्त॥
२—सो०—होत लोभ ते मोह, मोहहिं ते उपजै गरव।
गरव बढ़ावै कोह[3], कोह कलह, कलह हु व्यथा॥
३—दो०—होत पाप ते जड़ नृपति, जड़ नृप ते अविवेकु।
फौज दुखित अबिबेक तें, ता दुख जीति[4] न नेकु॥
४—दो०—बिनु सतसंग न हरि-कथा, तेहि बिनु मोह न भागु।
मोह गए बिनु राम-पद, होय न दृढ़ अनुरागु॥
दो०—सतसँग तें बैराग है, ताते मन-संतोष।
संतोषहिं तें ज्ञान है, होत ज्ञान तें मोष[5]॥

(दूसरी)

दो०—कारज को कारन जु सो, कारज ह्वै ह्वै जाय।
कारनमाला ताहु को, कहैं सकल कबिराय॥

१ हे मित्र। २ पात्रता से। ३ क्रोध। ४ विजय। ५ मोक्ष।

१—दो०—राम कृपा तें परमपद, कहत पुराने लोय[१]।
रामकृपा है भक्ति तें, भक्ति भाग्य तें होय।
२—दो०—अन्न-मूल घन[२], घनन को मूल जज्ञ अभिराम।
ताको धन, धन को धरम, धर्ममूल हरिनाम।

३—सवैया

दुख पाप तें, पाप सु दारिद तें; पुनि दारिद तुच्छ किए मन के;

(५३) एकावली (शृंखला)

दो०—किए जँजीरा जोर पद, एकावली प्रमान।

विवरण—जहाँ पदों का ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढंग से सब पद जंजीर की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हों वहाँ एकावली समझना चाहिए। कारणमाला में कारण और कार्य का शृंखलाबद्ध संबंध जैसा दिखलाया गया है वैसा ही इसमें भी होता है, भेद केवल इतना है कि कारणमाला में केवल कारण और कार्य की शृंखला बनाई जाती है, और इसमें सब ही वस्तुओं की। 'कारणमाला' को एकावली कह सकते हैं, पर 'एकावली' को सदा कारणमाला नहीं कह सकते। यथा—

१—दो०—गिरि पै बृष[३], बृष पै जु सिव, सिव पै सुरसरि नीर।
२—चौ०—सो नहिं सर जित[४] सर जित नाहीं।
सरसिज नहिं जेहि अलि न लोभाहीं।
अलि नहिं जो कल गुंजन हीना।
गुंजन नहिं जु मन न हरि लीना।

३—सवैया

सोभति सो न सभा जहँ बृद्ध न बृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित[५] दीह दया न दिपै जिन माहीं।

१ लोग। २ बादल। ३ बैल। ४ जहाँ। ५ साधुओं का सत्संग नहीं किया।

सो न दया जु न धर्म धरै धर धर्म न सो जहँ दान वृथाहीं।
दान न सो जहँ साँच न 'केसव' साँच न सो जु बसै छल छाहीं।

४—कवित्त—कूरम पै कोल[1] कोलहू पै सेष-कुंडली[2] है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पदमाकर' त्यौं फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार[3] की।
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर जोति जटाजूट है अपार की।
संभु जटाजूटन पै चंद्र की छठी है छटा,
चंद्र की छटान पै छटा है गंगधार की।

(५४) सार

दो०—अर्थन को उतकर्ष जहँ, आगे आगे होत।

विवरण—जहाँ वर्णित वस्तुओं का उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष वर्णन किया जाय, उसे 'सार' कहते है। इसका दूसरा नाम 'उदार' भी है। जैसे—

(उत्कर्ष)

३—चौपाई

सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहिं भाये।
तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी[4]। तिनमहँ निगम[5] नीति अनुसारी
तिन महँ पुनि बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु ते अति प्रिय विज्ञानी।
तिनतें मोहि अतिप्रिय निज दासा। जेहि गति[6] मोरि न दूसरि आसा।

२—दो०—मखमल ते कोमल महा, कदलि-गरभ को पात[7]।
ताहू ते कोमल अधिक, राम तुम्हारे गात[8]॥

१ शूकर। २ शेषनाग। ३ कैलास। ४ वेदज्ञ। ५ वेद। ६ आसरा। ७ पत्ता। ८ शरीर।

३—दो०—उन्नत अति गिरि गिरिन तें, हरिपद हैं विख्यात ।
तिनहूँ ते ऊँचो घनो, संत हृदय दरसात ॥

४—सवैया

हे करतार विनै सुनो 'दास' की, लोकनि को अवतार कर्‌यो जनि ।
लोकनि को अवतार कर्‌यो तौ मनुष्यन को तो सँवार कर्‌यो जनि ।
मानुषहू को सँवार कर्‌यौ तौ तिन्हैं बिच प्रेम-पसार कर्‌यो जनि ।
प्रेम-पसार कर्‌यो तो दयानिधि केहूँ बियोग बिचार कर्‌यो जनि ।

(अपकर्ष)

१—चौपाई

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन महँ मैं मतिमंद गँवारी ॥
२—दो०—सिला कठोरी काठ तें, तातें लोह कठोर ।
ताहू तें कीन्हों कठिन, मन तुव नंदकिसोर ॥
३—दो०—तृन ते लघु है तूल[1], तूलहु ते लघु माँगनो ।

सूचना—इस अलंकार को अँग्रेजी में 'क्लाईमेक्स' (Climax) कहैंगे ।

(५५) क्रम

दो०—क्रम सों कहि पहले कछू, क्रम ते अर्थ मिलाय ।
यों ही और निवाहिए, क्रम भूषन सु कहाय ॥

विवरण—दो चार अथवा और भी अधिक चीजों का जिस क्रम से पहले वर्णन करें उसी क्रम से उनका वर्णन अंत तक निवाहें, उसे 'क्रम' अलंकार कहते हैं । 'यथासंख्य' भी इसी का नाम है । इस अलंकार के मुख्य ३ भेद हैं—

(१) यथाक्रम, (२) भंगक्रम, (३) विपरीत क्रम ।

१ रूई ।

(१) यथाक्रम

१—दो०—रंक, लोह, तरु कीट[1] ए, परसि न पलटैं अंग।
कहा नृपति, पारस कहा, कह चंदन कह भृंग॥

यहाँ पहले चार वस्तुओं का उल्लेख किया—रंक, लोह, तरु और कीट। फिर कहा कि ये चारो सत्संग पाकर अपना रूप न पलट दें तो राजा, पारस, चंदन और भृंग व्यर्थ ही हैं। यहाँ जिस क्रम से पूर्वार्द्ध में चार वस्तुओं के नाम आये हैं उत्तरार्द्ध में ठीक उसी क्रम से उनको पलटानेवाली वस्तुओं के नाम भी आये हैं अर्थात् रंक के लिये नृपति, लोह के लिये पारस, तरु के लिये चंदन और कीट के लिये भृंग। ऐसी ही वर्णन-प्रणाली में 'क्रम' अलंकार माना जाता है।

२—दो०—गिरे अरिन के तकत तुव, रूप रोप बिकरार[2]।
तन तें, मन तें, करन तें स्वेद, गरब हथियार॥

अर्थात् तेरा रोषपूर्ण रूप देखकर शत्रुओं के तन से, मन से और हाथों से गिर पड़े—पसीना, गर्व और हथियार अर्थात् तन से पसीना, मन से गर्व और हाथों से हथियार। यहाँ भी यथा-क्रम वर्णन है। इसी प्रकार और भी समझ लेना।

३—चौपाई

चंदो राम-नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

'राम' शब्द के तीन अक्षर र, अ, म क्रम से अग्नि, सूर्य और चंद्रमा के हेतु कहे गये।

४—कवित्त—शत्रुन को मित्रन को परम पवित्रन को,
घालियत पालियत पूजियत पाए ते।

५—दो०—अमी हलाहल मद-भरे, सेत स्याम रतनार[3]।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

---

१ कीड़ा। २ भयंकर। ३ लाल।

६—दो०—भौं चितवनि डोरे बरुनि, असि[1] कटार फँद[2] तीर।
करत फटत बंधत बिंधत, जिय हिय मन तन बीर॥

७—हरिगीतिका

जनि जल्पना[3] करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल[4]; रसाल[5], पनस[6]-समा।
इक सुमनप्रद, इक सुमनफल, इक फलहिं, केवल लागहीं।
इक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, इक करहिं कहत न बागहीं।

सूचना—इस अलंकार को फ़ारसी, उर्दू तथा अरबी-साहित्य में 'लफ़्ज़ोनशर मुरत्तब' कहते हैं। इस अलंकार का एक अति उत्तम उदाहरण फिरदौसी ने अपने शाहनामा में लिखा है। फारसीदां पाठकों के लिये उसे हम यहाँ लिखे देते हैं और हिंदी वालों के समझने के लिए उसका भावानुवाद भी लिख देते हैं। रुस्तम की तारीफ़ में फिरदौसी लिखता है—

८—शेर

बरोज़े नबद आं यले अर्जुमंद। बशमशीरो, खंजर, बगुर्ज़ो, कमंद।
बुरीदो, दरीदो, शिकस्तो, बिबस्त। यलांरासरो, सीनआ, पायोदस्त।

(भावानुवाद)

(सवैया)

संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी हथियार उठाये।
खड्ग, कटार, गदा, अरु पास[7] के अद्भुत, यों करतब्य दिखाये।
काटि गिरावत फारत तोरत बाँधत चारि खनौं[8] न लगाये।
शत्रुन के सिर और उरस्थल, पाद, भुजा नहिं जायँ गनाये।

१ तलवार। २ फंदा, डोर। ३ बकवाद। ४ गुलाब। ५ आम। ६ कटहल। ७ जाल, फंदा। ८ क्षण।

इसमें यथाक्रम वर्णन किया है—चक्र देखो।

खड्ग	कटार	गदा	पास
काटि गिरावत	फारत	तोरत	बाँधत
सिर	उरस्थल	पाद	भुजा

'यथाक्रम' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जो हमें मिला है, वह यह है।

६---छप्पय—आनन[1], बेनी, नैन, बैन, पुनि दसन, सुकटि[2] गति।
सखि, सर्पिन, मृग, पिक, अनार, कैहरि[3] करनिन-पति[4] ॥
पुरन[5], खिझित, जक[6], तरुन, पक्व, बरपंच[7], पुष्टबल।
सरद, पताल, ।बलोह, बाग, तरु, गिरि, बनकज्जल ॥
निसि, सन्निवेस[8], सावक[9], चुवत[10], बिगस प्रसूती[11], मदझरत।
'पृथिराज' भनत बंसी बजत अस वनिता[12] बन-बन फिरत ॥

इसमें प्रथम चरण में ७ वस्तुओं के नाम लिए, पुनः दूसरे चरण में यथाक्रम उनके उपमान कहे। तीसरे, चौथे और पाँचवें चरण में यथाक्रम उन्हीं के उपमानों के विशेषण कहते चले गए।

इस अलंकार का इससे बढ़कर हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

१ मुख। २ कमर। ३ शेर। ४ हाथी। ५ पूर्ण। ६ चकपकाई हुई। ७ मंडली में श्रेष्ठ। ८ बिल में घुसते समय की। ९ बच्चा। १० मदमस्त। ११ बच्चा होने के बाद की। १२ स्त्री।

(२) भंगक्रम

जिसमें कथित वस्तुओं का क्रम भंग हो जाय—

१—दो०—सचिव वैद्य गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय-आस।
राज्य धर्म तन तीन कर, होइ बेगिहिं नास॥

यहाँ सचिव, वैद्य और गुरु के क्रम से राज्य, तनु और धर्म कहना चाहिए था, सो क्रम भंग है।

सूचना—इसको फ़ारसी तथा उर्दू में 'लफ़ोनशर गैर मुरत्तब' कहते हैं।

(३) विपरीत क्रम

जिसमें पूर्वोक्त वस्तुओं के वर्णन का क्रम उलट दिया गया हो जैसे—

१—चौपाई

राज्य नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरहिं समर्पे बिनु सत ,कर्मा
विद्या बिनु बिवेक उपजाये। श्रम फल पढ़े, किये अरु पाये।

यहाँ चार वस्तुएँ कही गईं—राज्य, धन सत्कर्म और विद्या। फिर कहा गया है कि इन चारों के साथ अगर ये चार गुण न हों तो विद्या का पढ़ना सत्कर्म का करना और धन तथा राज्य का पाना केवल श्रम मात्र है। यहाँ स्पष्ट देख पड़ता है कि जो क्रम बर्ण्य वस्तुओं का है ठीक उसके विपरीत उनके वर्णन का है।

(५६) पर्याय

(प्रथम)

दो०—एक वस्तु क्रम सों जहाँ, आश्रय लेय अनेक।
ताहि प्रथम परयाय कबि, बरनैं सहित बिबेक॥

विवरण—एक वस्तु का क्रमशः बहुत स्थानों में आश्रय लेना वर्णन किया जाय वहाँ प्रथम पर्याय जानो। जैसे—

१—चौपाई—मनि मानिक[1] मुकता छवि जैसी।
अहि[2] गिरि गज-सिर सोह न तैसी॥
नृप-किरीट तरुनी-तनु पाई।
लहैं सकल सोभा अधिकाई॥

इसमें माणिकादि का पहला स्थान अहि, गिरि, गजसिर वर्णन किया, फिर नृप-किरीट और तरुणी-तन कहा गया।

२—दो०—अँसुवन ते वह नद कियो, नद ते कियो समुद्र।
अब सिगरो जग जलमई, करनि चहति बनि रुद्र[3]॥

यहाँ आँसुओं का आश्रय पहले नद, पुनः समुद्र, पुनः सारा जग कहा गया है।

३—दो०—हालाहल! तोहि नित नये, किन बतराये ऐन[4]।
अंबुधि[5] हिय पुनि संभुगर, अब निवसत खलबैन॥

४—दो०—जीति रही औरंग मैं, सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा कर मांड़ि॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि पर्याय अलंकार में एक आश्रय के त्याग के अनन्तर दूसरे आश्रय को ग्रहण करना कहा जाता है। जहाँ ऐसा न हो, वरन् प्रथम आश्रय में रहते हुए ही उस वस्तु का अन्य आश्रयों में भी जाना वर्णन किया जाय वहाँ कई एक कवियों ने 'विकास' नामक एक पृथक् ही अलंकार माना है। जैसे—

१—दो०—सर सरिता गिरि सिंधु सों, रुकत नहीं दिन रात।
जस तेरो जसवंत नृप, जग में पसरत जात॥

२—दो०—तुव अधरहिं में हे सखी, हुतो जो पूरब राग।
अब तुव हिय में भी वहै, लख्यो परत बड़ भाग॥

१ लाल रत्न। २ सर्प। ३ महादेव। ४ घर। ५ समुद्र।

३—सवैया

गोपिन के अँसुवान के नीर, पनारे[1] भये फिर ह्वै गये नारे।
नारे भये नदियाँ बढ़िकै नदियाँ नद ह्वै गईं काटि करारे[2]॥
बेगि चलो तो चलो व्रज में कबि 'तोष' कहैं व्रजराज हमारे।
वे नद चाहत सिंधु भये पुनि सिंधु ते ह्वैहैं जलाहल[3] सारे॥

सूचना—विकास के विपरीत भाव में कोई-कोई कवि 'संकोच' अलंकार भी कहते हैं :—

१—दो०—तेज-तरनि[4] जसवंत तुव होत जगत-विख्यात।
कुवलय[5] इव अरि-कुवलय[6] जु, सनै सनै सकुचात॥

इस दोहे में पूर्वार्द्ध में 'विकास' अलंकार और उत्तरार्द्ध में 'संकोच' है।

(दूसरा पर्याय)

दो०—क्रम ही तें जहँ एक में, आवैं बस्तु अनेक।
सो दूजो पर्याय है बरनत कबि सबिबेक॥

१—दो०—हिय में अबिबेक हो छाया तहाँ बिबेक।

यहाँ एक ही हृदय में पहले अविवेक का रहना पुनः विवेक का आना कहा गया।

२—दो०—ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय॥

३—चौ०—जनक लह्यो सुख सोच बिहाई।

यहाँ जनक के हृदय में पहले सोच था, पुनः सुख आया। आधार एक है, आश्रय लेनेवाले भिन्न-भिन्न हैं।

४—दो०—हुती देह में लरिकई, पुनि तरुनाई जोर।
बिरधाई[7] आई अजहुँ, भजिले नंदकिसोर॥

---

१ छोटी नाली। २ किनारा। ३ जलमय। ४ सूर्य। ५ कुमुदिनी। ६ पृथ्वी-मंडल। ७ बुढ़ापा।

(५७) परिवृत्ति

दो०—जहाँ अधिक अरु न्यून को, लीबो दीबो होय।

विवरण—परिवृत्ति का अर्थ है 'अदला-बदला' वा लेना-देना। इसके तीन भेद हो सकते हैं—(१) बहुत देकर थोड़ा लेना, (२) थोड़ा देकर बहुत लेना, (३) सम देकर सम लेना।

जिसमें से तीसरे में हमारे मत से कोई अलंकारता नहीं आती इससे हम केवल प्रथम दो के ही उदाहरण लिखेंगे।

(१) बहुत देकर थोड़ा लेना

१—दो०—कासों कहिये आपनो, यह अजान जदुराय।
मन-मानिक दीन्हों तुम्हें, लीन्हीं विरह बलाय[1]॥

२—चौपाई

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया।

३—दो०—तन मन धन दै प्रेम सों, लाये रोग बिसाहि[2]।

४—सवैया

तुम कौन धौं पाटी पढ़े[3] हो लला, मन[4] लेत पै देत छटाँक नहीं।

(२) थोड़ा देकर बहुत लेना

१—कबित्त—चारो फल देत चार चाउर चढ़ाये ते।

२—पद—सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत[5] थोरे।
दिये सबै जहँ लौं जगत सुख गज रथ घोरे॥

३—दो०—इक धतूर फल दै सिवहिं, लिये अमोघ[6] फल चारि।

४—कबित्त—तीन मूठी भर आज देकर अनाज आपु,
लीन्हीं यदुराय जू सों संपति धनेस[7] की।

१ क्लेश। २ खरीदकर। ३ पाटी पढ़ना = सीखना। ४ चित्त, एक मन तौल। ५ अक्षत, चावल। ६ उत्तम। ७ कुबेर।

५—कवित्त—देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ
पैये फल चारि एक फूल दै धतूरे को।

सूचना—इस अलंकार को 'विनिमय' भी कहते हैं।

(५८) परिसंख्या

दो०—करि निषेध थल एक तें, रखिए औरहिं ठौर।
बस्तु, धर्म, गुन, जाति जहँ, परिसंख्या तेहि ठौर॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु, धर्म, गुण वा जाति को अन्य सब स्थानों से (जो उसके उपर्युक्त माने जाते हों) वर्जन करके किसी एक विशेष स्थान पर ठहरावें वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है। 'परिसंख्या' शब्द का अर्थ यहाँ पर 'अपने स्थान से हटाई गई और दूसरे स्थान पर बैठाई हुई वस्तु की गणना' है।

१—दो०—नृपति राम के राज में, हैं न सूल दुखमूल।
लखियत चित्रन में लिखो, संकर के कर सूल॥

यहाँ राज्य भर में 'शूल' (कष्ट) का वर्जन करके केवल चित्र में शंकर के हाथ में (त्रिशूल) को स्थापित किया है। यही अलंकारता है।

२—दो०—दंड जतिन कर भेद जहँ, नर्तक-नृत्य-समाज।
जीतौ मनसिज सुनिय अस, रामचंद्र के राज॥

यहाँ यह कहा गया कि रामराज्य में दंड (सज़ा) कहीं नहीं है केवल नाममात्र को दंड (लाठी) संन्यासियों के हाथ में है। भेद (भेदनीति) कहीं नहीं है, केवल नृत्यक-समाज में सुर, ताल, राग इत्यादि का भेद (बिलगाव) देखा जाता है, और कोई किसी को जीतने का उद्योग नहीं करता, केवल काम को जीतने की इच्छा करते हैं। इसी प्रकार और भी समझना।

३—कवित्त—साम[1] को तो काम मुनिबर के मुखन माहिं,
और ठौर में तो तासों रंचक न काज है।
दाम[2] जल भरिबे के काम ही में देखियत,
दंड को निवास एक कर-यतिराज है॥
'रतनेस' भेद एक सुर के मिलाइबे में,
देखा जहाँ होत गान नृत्य को समाज है।
साम दाम दंड भेद अनत न देखे कहूँ,
ऐसो दुखदाई रघुराज जू को राज है॥

४—दो०—केसन ही में कुटिलता[3], संचारिन[4] में संक[5]।
लखो राम के राज में इक, ससि माहिं कलंक॥

५—रोला—मूलन[6] ही की जहाँ अधोगति[7] 'केसव' गाइय।
होम-हुतासन-धूम[8] नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति[9] दुर्गन ही, जो कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल[10] को अभिलाष प्रकट कबिकुल के जी में॥
(रामचंद्रिका से)

६—कवित्त—सत्रु को उथापि पीछे थापिबे में व्रत-भंग,
दीखत युधिष्ठिर में, गिद्धन में कंकता[11]।
कैद[12] लोक-कुल की त्यौं बेद-मरजाद ही में,
स्वैरगति[13] मारुत[14] में चातक में रंकता॥
इति ग्रंथ-पूर्नता में संकर लिखैया लिखैं,
चोरी इतिहास में है होरी में निसंकता।

१ सामदेव का गान, शमन। २ डोर, दान। ३ टेढ़ापन। ४ संचारी भाव (रसांतर्गत)। ५ संदेह। ६ जल। ७ बुरी दशा, नीचे जाना। ८ होम की अग्नि का धुआँ। ९ बुरी गति, घुमाव-फिराव से जाने का मार्ग। १०. कुच, बेल। ११ दुर्बलता। १२ कारावास, मर्यादा। १३ अनाचार, मन-मानी चाल। १४ वायु।

चंद्रमा में काहू[1] काल-राहू में ससंकता त्यों,
द्वितिया में बंकता[2] है पूनो में कलंकता ॥

७—कवित्त—आए जुरि जाँचिबे को जाचक जहाँ लौं रहे,
एहो 'कवि रघुनाथ' आज तीनों थर में ॥
एते मान दान तिन्हैं भूप दसरथ दीन्हें,
देत न दिखाई कहूँ कोऊ सौज[3] घर में ।
बसन[4] के नाते पास बास कौसिला के एक,
भूषन के नाते नथ नाक छला कर में ।
घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माहिं,
राम के जनम रहे दाम[5] दफतर में ॥

८—दो०—पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास ।
नित-प्रति पूनो ही रहत, आनन-ओप-उजास[6] ॥

९—कवित्त—अति मतवारे जहाँ दुरदै[7] निहारियत,
तुरँगन ही में चंचलाई-परकीति[8] है ।
'भूषन' भनत जहाँ पर[9] लगैं बानन में,
कोक[10] पच्छिनहिं माहि बिछुरन-रीति है ।
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधे जहाँ एक सरजा की गुन-प्रीति है ।
कंप कदली[11] में बारिबुंद बदली[12] में,
सिवराज-अदली[13] के राज में यों राजनीति है ॥

सूचना—कभी-कभी प्रश्नोत्तर रीति से भी यह अलंकार कहा जाता है ।

१—दो०—सेव्य कहा ? तट-सुरसरी, कहा धेय[14] ? हरि-पाद ।
करन उचित कह ? धर्म नित, चित तजि सकल बिषाद ॥

---

१ क्षीणता । २ टेढ़ापन । ३ सामान । ४ वस्त्र । ५ छदाम । ६ उजाला । ७ हाथी । ८ प्रकृति । ९ पंख, शत्रु । १० चक्रवाक । ११ केला । १२ बादलों की घटा । १३ न्यायी । १४ ध्येय, पूज्य ।

(५६) विकल्प

दो०—कै तो वह कै यह जहाँ, यह बिकल्प दिखराय।
ताहि बिकल्प बखानहीं, सिगरे कबि-समुदाय॥

विवरण—'या तो ऐसा ही होगा या वैसा ही होगा, इस प्रकार के कथन में 'विकल्प' अलंकार माना जाता है। जैसे—

१—चौपाई

जन्म कोटि लगि रगर[1] हमारी। बरों संभु न तु रहौं कुमारी।

२—दो०—दिसि-दिसि कूजहि[2] कोकिला, फूले रुचिर रसाल[3]।
दूरि करेगा बिरह दुख, कै गोपाल कै काल॥

३—सवैया

कोमल श्रीरघुवीर महा नवनीतहुँ[4] ते नव नूतन माई।
है शिव का धनु ब्रज्र समान ससी रबि ताहि सकैं न उठाई॥
तात[5] को बोल अडोल सबै निर्मूलक आनि बनी दुचिताई।
जानकी जान की आस तजी कि बरौं इनको कि मरौं बिष खाई॥

४—सवैया

सीय स्यों[6] राज करौ जुग लौं पथ ते भरते[7] मिलि हौं पलटाऊँ[8]।
जूझि मरौं कि करौं प्रभु कारज तौ अपनो मुख आनि दिखाऊँ॥

(जटायु-वाक्य रावण-प्रति)

५—सवैया

हौं बरुड़ासन राम को सेवक रे छलिकै कोउ लेत तिया को।
कै तजु देह कि छाँडु सनेह कि तू रन मांडु[9] कि छाँडु सिया को॥

(६०) समुच्चय

समुच्चय=समूहः। यह अलंकार दो प्रकार का है।

---

१ हठ। २ बोलती हैं। ३ आम। ४ मक्खन। ५ पिता। ६ सहित। ७ भरत से। ८ लौटते समय। ९ युद्ध करो।

(प्रथम)

दो०—बहुत भाव इक बारही, तिनको गुंफन होय।
कबि कोबिद सिगरे कहैं, प्रथम समुच्चय सोय॥

१—चौपाई

चकित चितव सुँदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी।

यहाँ आश्चर्य, हर्ष, विषाद और व्याकुलता सब भाव एक ही साथ उदय हुए।

२—दो०—हे हरि तुम बिनु राधिका, सेज परी अकुलाति।
तरफराति, चमकति[1] तचति[2], सुसकति[3], सूखी जाति।

३—सवैया

माँगि पठाए सिवा कछु देस वजीर अजानन[4] बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों 'भूषन' जो दिन होय लगे ना।
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आयगो खान खवास के फेना।
भै-भर की[5] करकी[6] धरकी दरकी दिल एदिलसाह की सेना॥

(द्वितीय)

दो०—एक काज के कारन को, हेतु जु होयँ अनेक।
ताहि समुच्चय दूसरो, बरनैं कबि सबिबेक॥

विवरण—किसी कार्य के होने के लिए एक हेतु (काफी तौर से) वर्तमान है ही, पर साथ ही साथ अन्य हेतु भी उपस्थित कहे जायँ। यथा—

१—दो०—गंगा गीता गायत्री, गनपति गरुड़ गोपाल।
प्रातकाल जे नर भजैं, ते न परैं भव-जाल॥

---

१ चौंकती है। २ तकलीफ उठाना। ३ सिसकी भरना। ४ मूर्ख। ५ भयभीत। ६ छिन-भिन्न हो गई।

यहाँ गंगा गीतादि उपर्युक्त कारणों में से कोई एक कारण भवजाल से छोड़ाने के लिए काफ़ी है, पर बहुतों का वर्णन किया गया है।

२—दो०—गंगा गीता गुरु गऊ, गोकुल औ गिरिराज।
ये देवतु[1] कलिकाल में, सदगति[2] दिव्य दराज[3] ॥

३—दो०—ग्रह-ग्रहीत पुनि बात-बस[4], तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी[5], कहौ कौन उपचार[6] ॥

४—दो०—एक मंद मैं मोह-बस, कीस-हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहिं बिसारेऊ, दीनबंधु भगवान ॥

(६१) समाधि

'समाधि' शब्द का अर्थ है 'शक्ति-संपन्न'।

दो०—और हेत के मिलन तें, सुगम होय जहँ काज।

विवरण—आकस्मिक कारणांतर के योग से जहाँ कार्य अति सुगमता से हो जाय।

१—चौपाई

पावक जरत देखि हनुमंता। भयो परम लघु रूप तुरंता ॥
निबुकि[7] चढ़्यो कपि कनक-अटारी। भई सभीत निसाचर नारी ॥
दो०—हरि-प्रेरित तेहि अवसर, चले पवन उनचास।

हनुमानजी लंका को जलाना चाहते थे कि अकस्मात् उनचासों पवनों की सहायता से वह काम और भी सुगम हो गया।

२—दो०—मीत-गमन-अवरोध-हित, सोचत कछू उपाय।
तब ही आकसमात तें, उठी घटा घहराय ॥

३—दो०—रामचंद्र सोचत रहे, रावन-बधन-उपाय।
सुपनखा ताही समय, करी ठठोली आय ॥

---

१ देते हैं। २ सद्गति। ३ उत्तम। ४ वायु के वंश। ५ शराब। ६ दवा। ७ निकलकर।

(६२) प्रत्यनीक

दो०—सत्रु मित्र के पक्ष सों, किए बैर अरु हेत।
प्रत्यनीक भूषन कहैं, सिगरे सुकबि सचेत॥

विवरण—जहाँ शत्रुपक्षवालों से बैर अथवा मित्रपक्षवालों से प्रेम करना कथन किया जाय। यह अलंकार 'अन्योन्य' अलंकार का संबंधी है। साक्षात् अपने साथ करने वाले के प्रति वैसा ही करना तो 'अन्योन्य' का विषय है, और उसके संबंधी के साथ वैसा ही बरतना इस अलंकार का विषय है। 'प्रत्यनीक' शब्द का अर्थ है, 'सेनापति' वा 'संबंधी-प्रति'।

(शत्रुपक्ष-प्रति)

१—चौपाई

विष्नु-बदन-सम बिधुहिं[1] बिचारी। अबहुँ राहु दै पीड़ा भारी।

विष्णु ने राहु का सिर काटा था। विष्णु के मुख के समान जानकर राहु चंद्रमा को अब तक ग्रसता है।

२—दो०—तेज मंद रबि ने कियो, बस न चल्यो तेहि संग।
दुहुँन नाम एकै समुझि, जारत दिया पतंग[2]॥

३—सवैया

लाज धरौ सिवजू सों लरौं सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
'भूषन' ह्यां गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यौं मठ तोरे रिसाय कै॥
हिंदुन के पति सों न बिसाति[3] सतावत हिंदू गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्ली के बालम[4] आलम[5] आलमगीर[6] कहाय कै॥

४—सवैया

एती कहै किन जाय कोऊ अब मोसों कछूक न चूक परी है।
बैर तिहारे हमारे हिये यह कोकिल कूकि कै हूक[7] करी है॥

१ चंद्रमा। २ फतींगा, (सूर्य)। ३ बस नहीं चलता। ४ स्वामी। ५ संसार। ६ औरंगजेब, संसार के रक्षक। ७ पीड़ा।

५—हरिगीतिका

नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहर तेऽपि दीन पुकारहीं॥

रावण जब यज्ञ से नहीं उठा तब बंदरों ने स्त्रियों को सताना आरंभ किया।

६—चौपाई

रावन-दूत हसहिं सुनि काना। कपिन बाँधि दीन्हें दुख नाना।

(मित्रपक्ष-प्रति)

१—दो०—छैल छबीले लाल को, नवल नेह लहि नारि।
लेति लगाय-लगाय उर, पहिरति धरति उतारि॥

२—चौपाई

हरि-जन[1] जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नैन पुलकावलि[2] ठाढ़ी।

३—सवैया

छैलजू सैल[3] तिहारी सुनै तेहि गैल की धूरि सों नैन धुरेंटति[4]।
रावरे अंग को रंग बिचारि तमाल की डार भुजा भरि भेंटति।

४—चौपाई

चलत मोहिं चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति-हृदय लाय सोइ लीन्ही।

(६३) काव्यार्थापत्ति

काव्यार्थापत्ति = काव्य में न कहे हुए अर्थ का आ पड़ना।

दो०—'यहै भयो तो यह कहा', यहि विधि जहाँ बखान।
कहत काव्य पदसहित तेहि, अर्थापत्ति सुजान॥

१—चौपाई

जितेउ सुरासर तब श्रम नाहीं। नर-बानर केहि लेखे माहीं।

---

१ दास। २ रोमांच। ३ शैर। ४ धूल लगाती है।

अर्थात् जब सुरासुर को जीत लिया तब नर-वानरों को जीतना उसी के अंतर्गत आ पड़ा।

२—दो०—सिंह पछार्‌यो बाहु-बल, कहा स्यार की बात।

३—कवित्त—जीत्यो जब चंदहि अमंद मुख तेरो,
तब 'चिंतामनि' मुकुर सरोज सनमानै को।

४—कवित्त—पूरो जिन पूरो पारावार[1] है पहार डारि,
इतनी सुनो हो ताको लंक लेन कितनी।

५—सवैया

पंकज-पात की बात कहा जिन कोमलता लई जीति गुलाब की।

६—कवित्त—'भूषन' भनत गढ़-कोट माल-मुलुक है,
सिवा सों सलाह राखिए तो बात भली है।
जाहि देत दंड[2] सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है॥

(६४) काव्यलिंग

काव्य=काव्य का अर्थ। लिंग=पहिचान करानेवाला चिह्न (कारण), इसलिये 'काव्यलिंग' शब्द का अर्थ है 'काव्य' में कही हुई बात की ठीक पहचान करानेवाला चिह्न (कारण)।

सूचना—पाठकों को खूब समझ लेना चाहिए कि हेतु (कारण) दो प्रकार का होता है—(१) उत्पादक। (२) सूचक वा ज्ञापक। उत्पादक हेतु वह है जिससे कार्य उत्पन्न हो, जैसे अग्नि धूम का उत्पादक हेतु है और सूचक वा ज्ञापक हेतु वह है जो किसी बात की सूचना दे, जैसे धूम अग्नि का ज्ञापक हेतु है। बस इस अलंकार में 'ज्ञापक' हेतु द्वारा ही काम लिया जाता है। उत्पादक हेतु का कार्य-कारण-संबंध 'हेतु' अलंकार में वर्णन किया जायगा। इसलिए इस अलंकार की परिभाषा यों हुई—

१ समुद्र। २ कर।

दो०—ज्ञापक कारन द्वार जहँ, अर्थ-समर्थन होय।
काव्यलिंग ताको कहत, कबि-कोबिद सब कोय॥

१—दो०—कनक[1] कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाए बौरात है, या पाए बौराय॥

कवि कहता है कि धतूरा की अपेक्षा सोने में सौगुनी मादकता है। इस कथन के समर्थन में ज्ञापक हेतु देता है कि धतूरा खाने से मनुष्य बौराता है और सोना पाने ही से बौरा जाता है। बौरा जाना मादकता का ज्ञापक हेतु है।

२—दो०—धर्महीन प्रभु-पद-बिमुख, काल-बिबस दससीस?
आए गुन तजि रावनहिं, सुनहु कोसलाधीस॥

अंगद कहते हैं कि राजनीति के चार गुण (दा[न], साम, दंड, भेद) रावण को छोड़कर आपके पास चले आए। कारण क्या? सो पूर्वार्द्ध में कथित है।

३—दो०—मेरी भव[2]-बाधा हरो, राधा-नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित[3]-दुति होय॥

४—दो०—तजि तीरथ हरि-राधिका, तन-दुति करु अनुराग।
जेहि ब्रज-केलि निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग॥

५—दो०—करौ कुबत जग-कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी[4] लाल॥

अपनी कुटिलता न छोड़ने की युक्ति कवि कैसी अच्छी कहता है। हे कृष्ण, तुम त्रिभंगी लाल हो इसलिये सरल (सीधे) हृदय में रहने से तुम्हें कष्ट होगा। इसलिये मैं अपने हृदय को कुटिल (टेढ़ा) ही बनाए रक्खूँगा, चाहे जगत-जन मुझे बुरा (कुबत = कुबात) ही क्यों न कहें।

---

१ धतूरे का फूल, (सोना)। २ संसार। ३ हरे, प्रसन्न। ४ तीन स्थान (गर्दन, कमर, पैर) से टेढ़े।

सूचना—कोई कोई आचार्य इस 'काव्यलिंग' अलंकार को 'हेतु' अलंकार का प्रकारांतर ही मानते हैं। परन्तु हमारी सम्मति से इसमें हेतु अलंकार की अपेक्षा कुछ विलक्षण ही अलंकारता है।

एक महाशय इस अलंकार की यह परिभाषा लिखते हैं—

"कव्यलिंग जहँ युक्ति सों, अर्थ-समर्थन होय।"

एक दूसरे महाशय यों लिखते हैं—

करै समर्थन युक्ति-बल, काव्यलिंग है सोय।
कहुँ सुभाव कहुँ हेतु कहि, कहुँ प्रमान दै होय॥

तात्पर्य तीनों परिभाषाओं का यही है कि किसी कही हुई बात का समर्थन कुछ हेतु-सूचक बात कहकर करे।

६—दो०—बृथा बिरस[1] बातैं करति, लेति न हरि को नाम।
यह न आचरज है कछू, रसना[2] तेरो नाम॥

७—दो०—अब न मोहिं डर बिघन को, करत कौनहू काज।
गननायक गौरी-तनय, भयो सहायक आज॥

८—चौपाई

स्याम-गौर किमि कहौं बखानी। गिरा[3] अनैन नैन बिनु बानी।

यहाँ न कह सकने का कारण बहुत ही अच्छा कहा गया है।

(६५) अर्थांतरन्यास

अर्थांतरन्यास=दूसरे प्रकार का अर्थ रखना।

दो०—साधारन कहिए बचन, कछु अवलोकि सुभाय।
ताको पुनि दृढ़ कीजिए, प्रगट बिसेष बनाय॥
कै बिसेष ही दृढ़ करै, साधारन कहि 'दास'।
ताको नाम बखानहीं, कहि अर्थांतरन्यास॥

---

१ नीरस। २ जीभ, जिसमें रस न हो। ३ वाणी।

विवरण—पहले कोई बात कही जाय, फिर यदि वह बात साधारण हो तो विशेष उदाहरण से और यदि विशेष हो तो साधारण सिद्धांत से उसका समर्थन किया जाय। इन दोनों प्रकार के कथनों में अर्थांतरन्यास अलंकार माना जाता।

(साधारण की दृढ़ता विशेष से)

१—दो०—कारन ते कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर।
कुलिस[1] अस्थि[2] तें, उपल[3] ते लोह कराल कठोर॥

इसमें दोहे के पूर्वार्द्ध में एक सामान्य बात कहकर उत्तरार्द्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट की गई है।

२—दो०—बड़े न हूजै गुनन बिनु, बिरद-बड़ाई पाय।
कनक[4] अतूरे सों कहत, गहनो गढ़ो न जाय॥

३—दो०—अति लघुहू सतसंग तें, लहत उच्च पदवी सु।
कीट सुलहि सँग सुमन को, चढ़त ईस के सीसु॥

४—दो०—जे छोड़त कुल आपनो, ते पावत बहु खेद।
लखहु बंस[5] तजि बाँसुरी, लहै लोह को छेद॥

५—दो०—लागत निज मन-दोष ते, सुंदरहू बिपरीत।
पित्त रोग-बस लखहिं नर, सेत संखहू पीत॥

६—दो०—बरजेहूँ जाचक जुरै, दानवंत[6] की ठौर।
करी[7] करन झारत रहैं, तऊ भ्रमैं तहँ भौंर॥

७—चौपाई

राम-भजन बिनु मिटहिं न कामा। थल-बिहीन तरु कबहूँ कि जामा॥

८—सवैया

छोटे, बड़े पद को पहुँचैं जब पावत हैं सतसंग-बिलास को।
पान के साथ है जात लखो छितिनाथ[8] के हाथ लौं पात पलास को॥

---

१ वज्र। २ हड्डी। ३ पत्थर। ४ सोना, (धतूरे का फूल)। ५ बाँस कुल। ६ दान देनेवाला, मद से मुक्त। ७ हाथी। ८ राजा।

(विशेष का समर्थन सामान्य से)

१—चौपाई

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भे निसिचर तबहीं।
साधु-अवज्ञा[1] तुरत भवानी[2]। कर कल्यान-अखिल कइ हानी॥

यहाँ पहले विशेष बात कही कि ज्यों ही विभीषण लंका को त्यागकर रामजी की शरण को चला, त्यों ही सब निश्चर आयुहीन हो गए, फिर साधारण सिद्धांत 'साधुओं की अवज्ञा सर्व कल्याण का विनाश करती है' से उसकी पुष्टि की गई। इसी प्रकार और भी जानो।

२—दो०—हरि-प्रसाद गोकुल बच्यो, का नहिं करहिं महान।

इसमें हरि-प्रताप गोकुल बच्यो = यह विशेष बात है।
का नहिं करहिं महान = सामान्य बात से समर्थन है।

३—सवैया

धूरि चढ़ी नभ पौन-प्रसंग ते कीच भई जल-संगत पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि, काँटन संग अनेक व्यथाई॥
चंदन-संग कुदारु सुगंध ह्वै नींब-प्रसंग लहै करुवाई।
'दास' जू देखो सही सब ठौरन संगति को गुन-दोष सदाई॥

इसमें प्रथम के तीन चरणों में विशेष बातें कह कर चौथे चरण में साधारण सिद्धांत द्वारा उन सबकी पुष्टि की गई है।

४—दो०—कैसे फूले देखियत, प्रात कमल के गोत[3]।
'दास' मित्र-उद्दोत[4] लखि, सबै प्रफुल्लित होत॥

५—चौपाई

परसुराम पितु-आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ। पितु-आज्ञा अघ अजस न भयऊ॥

---

१ अपमान। २ पार्वती। ३ समूह। ४ उदित होना।

दो०—अनुचित-उचित-बिचार जति, जे पालहिं पितु-बैन।
ते भाजन[1] सुख-सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन[2] ॥

सूचना—(काव्यलिंग और अर्थांतरन्यास का भेद)—काव्यलिंग में कथित बात के समर्थन की ज़रूरत जान पड़ती है और बिना समर्थन किए पाठक को शंका बनी रहती है। यह समर्थन कारणवत् होता है। अर्थांतरन्यास में समर्थन कारणवत् नहीं वरन् उदाहरणवत् होता है और अगर समर्थन न भी किया जाय तो भी बात पूरी हो जाती है।

(६६) बिकस्वर

विकस्वर=विकसनशील।

दो०—कहि बिसेष सामान्य पुनि, कहिए, बहुरि बिसेष।
ताहि बिकस्वर कहत हैं, जिनके बुद्धि असेष ॥

विवरण—पहले कोई विशेष बात कही जाय। उसके समर्थन को साधारण बात कही जाय, पर इतने से भी संतुष्ट न होकर फिर किसी विशेष उदाहरण से उसका समर्थन किया जाय। यथा—

१—दो०—बड़ी बिपत पांडवन पै, खोई हारि सुबाम[3]।
दुख न गनत कछु सतपुरुष, ज्यौं हरिचँद, नल राम ॥

यहाँ बड़ी बिपति······सुबाम=एक विशेष वर्णन है।

दुख न गनत कछु सतपुरुष=पुनः सामान्य से पुष्टि है।

२—सवैया

बारिधि बाँधि सिलान[4] सों रामजू लै कपि को दल रावन मारो।
कारज ये समरत्थन के चहिए इनको न अकत्थ[5] बिचारो ॥

---

१ पात्र। २ इंद्र का घर, स्वर्ग। ३ सुंदर स्त्री (द्रौपदी)। ४ पत्थर। ५ अकथनीय।

'गोकुल' देत कहे सो सुनो सति[1] मानि हिये मति में निरधारो।
गोपन के हित हेत[2] गोपाल लखो सिसुताईहिं[3] में गिरि धारो॥

यहाँ प्रथम चरण में एक विशेष बात कही गई है। दूसरे में सामान्य से उसकी पुष्टि है और चौथे चरण में विशेष से पुनः उस सामान्य की पुष्टि की गई है।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि इस अलंकार में अंतिम पुष्टीकरण या तो उपमान वाक्य से होता है या अर्थांतरन्यास से। पहले उदाहरण में उपमान से पुष्टीकरण किया गया है और दूसरे में अर्थांतरन्यास से। इसी तरह नीचे के उदाहरणों में भी समझ लो।

३—सवैया

देती स्वकीय तू पी को सुखै निजु केती बगारतहू मति खैली[4]।
'दास' जू ये गुन हैं जिनमें तिनहीं की रहै जग कीरति फैली॥
बात सहीविधि कीन्हो भलो तेहि यों ही भलाइन सों निरमैली।
काटि अँगारन में गहि गेरेहु देत सुबासना चंदन-चैली॥

इसमें प्रथम चरण में विशेष, दूसरे में सामान्य, पुनः चौथे में विशेष है।

४—चौपाई

रत्न-अनंत-जनक[5] हिमपरवत। महिमा घटहि न जो सीतल अत[6]।
डूबत एक दोष गुन-गन में। सखि-कलंक जैसे किरनन में।

इसमें प्रथम दो चरणों में एक विशेष बात कही गई है। तीसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है। चौथे चरण में पुनः उपमान वाक्य से विशेष कहकर सामान्य की पुष्टि की गई है।

५—सवैया

इंद्र की सामा[7] सुदामा को कृष्ण दई मिलतै न गयो पलसेखो[8]।
मैं कहौं जो सो सुनो मन दै इतने को न आप अपूरब लेखो।

---

१ सत्य। २ लिये। ३ लड़कपन में ही। ४ खराब। ५ उत्पन्न करने वाला। ६ अति। ७ सामान (संपत्ति)। ८ क्षणभर भी।

रीति बड़ेन की ऐसई है 'रघुनाथ' कहै उर में अवरेखी[1]।
अंक लगाय मिले रघुनायक लंक बिभीषन को दई देखी ॥

(६७) प्रौढ़ोक्ति

दो०—हेतु न जो उत्कर्ष को, कल्पित कीजै तौन।
प्रौढ़ोकति तासों कहत, कबि-कोबिद मति-भौन ॥

१—दो०—ईस-सीस के चंद्र सो, अमल आठहू जाम।
सुरसरि-तट के बरफ तें, धवल सुजस तव राम ॥

महादेव के शीश पर का चंद्रमा और गंगा तट का बर्फ कुछ अधिक सफेद नहीं होता, तथापि कल्पना की गई है। इसी को प्रौढ़ोक्ति कहते हैं।

२—दो०—तेरो जस सुरसरित के पुंडरीक[2] सो सेत।

३—कवित्त—मानसरबासी हंस-वंस न समान होत,
चंदन सों घस्यो घनसारऊ[3] घरीक[4] है।
नारद की सारद की हाँसी में कहाँ की भास[5],
सरद की सुरसरी[6] को न पुंडरीक है ॥
'भूषन' भनत छक्यो छीरधि[7] में थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरात[8] को करी कहै।
कयलास ईस . ईस-सीस रजनीस जहाँ,
अवनीस[9] सिवा के न जस को सरीक है ॥

विवरण—हंस मानसरबासी होने से कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते। इसी प्रकार चंदन के संग से कपूर, नारद और सारद की होने से हँसी, सरद ऋतु की गंगा का होने से श्वेत कमल कुछ अधिक श्वेत न होंगे, परंतु कल्पना की गई है। इसी प्रकार और भी समझ लो।

---

१ समझो। २ उज्ज्वल कमल। ३ कपूर। ४ क्षणभर। ५ प्रकाश (सफेदी)। ६ गंगा। ७ क्षीरसागर। ८ इंद्र का सफेद हाथी। ९ पृथ्वीपति।

४—सवैया

पान किएहू दवानल को जेहि को अधरारस नाहिं ढढ़ै[१] री।
ताके लगी मुख सों यह जाय तो ज्वाल सी तानन[२] क्यौं न गढ़ै री।
गोकुलनाथ के हाथ बसी है बिसासिनी नाथिबे ही को बढ़ै री।
छेदति या हिय को बँसुरी सखि पाहन[३] फोरि कै बाँस कढ़ै री।

यहाँ वंशी की उत्कर्षकता के जो हेतु कहे गए हैं, वास्तव में वे उसकी उत्कर्षता के हेत नहीं हैं, तो भी कल्पित किए गए हैं

(६८) संभावना

दो०—'होय जु यों तो होय यों', जहँ कहुँ बर्नन होय।
अलंकार संभावना, ताहि कहैं सब कोय॥

१—दो०—उगै जो कातिक अंत की, छनदा[४] छोड़ि कलंक।
तो कहुँ तेरे बदन की, समता लहै मयंक॥

२—चौपाई

जो छबि-सुधा-पयोनिध[५] होई परम-रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा-रजु[६] मंदर-सिगारू। मथै पानि[७]-पंकज निज मारू[८]॥

दो०—यहि विधि उपजै लच्छि[९] जब, सुंदरता-सुख मूल।
तदपि सकोच-समेत कबि, कहैं सीय-समतूल[१०]॥

३—चौपाई

जौ तुम अवत्यौ मुनि की नाईं। पद-रज सिर सिसुधरत गोसाईं[११]

५—दो०—मीत न नीति गलीत[१२] है, जो धन धरिए जोर।
खाए खरचे जो बचै, तो जोरिए करोर॥

सूचना—'प्रमाण' अलंकार के अंतर्गत एक भेद 'संभव' भी है। उसमें और इस संभावना अलंकार में यह भेद है कि इसमें तो निश्चय

---

१ जले। २ स्वर-लहरी। ३ पत्थर। ४ रात्रि। ५ क्षीर-सागर। ६ डोर। ७ हाथ। ८ कामदेव। ९ लक्ष्मी। १० सामान। ११ स्वामी। १२ नीति छोड़कर।

कहा जाता है कि 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' और उस 'संभव' में केवल यह कहा जाता है कि 'ऐसा होना संभवित है' हो या न हो, यह निश्चित नहीं।

(६६) मिथ्याध्यवसिति

मिथ्या बात को निश्चित कर लेना कि यह ऐसा ही है।

दो० —जहँ मिथ्या को सत करैं, कहि मिथ्या कछु और।
मिथ्याध्यवसिति होत है, अलंकार तेहि ठौर॥

१—दो०—जो आँजै नभ-कुसुम[1]-रस, लखै सो अहि[2]के कान।

२—सवैया

'गोकुलनाथ' सुनो वन मैं यह आज बड़ी अचरज्जहिं लेख्यो।
एक ससा[3] गहि दौरि कै सिंहहिं फारत पेट पछारत पेख्यो।
मीत कह्यो यह तो सब साँच है ईस्वर की महिमा अवरेख्यो।
इंदुर[4] एक दुरद[5] को आज नदी-तट मैं रह्यो लीलत देख्यो।

३—दो०—ससा-सींग के धनुष लिय, गगन-कुसुम धरि माल।
खेलत बंध्यासुतन[6]-सँग, तुव अरि-गन छितिपाल॥

४—दो०—तेरो कुजस सुनाइबे, बधिरन[7] बसुधा-बीर।
गावत गूंगा कछुक पी, दूध-उदधि के तीर॥

५—चौपाई

या भूपति के अजस निहारे। गने परारध[8] ते अति भारे॥
गावत हैं गूंगा-गन खरे। जिनके बचन समझ नहिं परे॥

६—सो०—मैं चढ़ि सौध[9] असंद, गहे मूठि भरि कै नखत।
मीत महूँ गहि चंद, अंक लिए कब लौं रह्यो॥

---

१ आकाश में उगा पुष्प। २ सर्प। ३ खरगोश। ४ चुहा। ५ हाथी। ६ बाँझ का पुत्र। ७ बहरा। ८ वह संख्या जिसके बाद की गणना नहीं है, असंख्य। ९ महल।

७—पद—सस-सींग की करि लेखनी, मसि कुरँग-तृष्ना[१]-नीर।
आकासपत्रहिं पर लिख्यो, करहीन कोउ कबिवीर॥
जनमांध पंगुर मूक बंध्या, को जु सुत लै जाय।
जसवंत अपजस बधिर-गन, को है सुनावत गाय॥

(७०) ललित

दो०—ललित अलंकृत जानिए, कह्यो चाहिए जौन।
ताही के प्रतिबिंब ही बरनन कीजैं तौन॥

विवरण—जो वृत्तांत कहना है, उसे न कहकर केवल उसका प्रतिबिंबमात्र कहा जाता है। यथा—

१—चौपाई

लिखत सुधाकर गो लिखि राहू। बिधि-गति बाम[२] सदा सबकाहू

यहाँ 'रामजी का राज्याभिषेक था सो न हुआ उलटा बनवास हुआ' यह प्रस्तुत वृत्तांत है, सो नहीं कहा, उसका प्रतिबिंबमात्र कहा गया।

२—चौपाई

सोचहिं दूषन दैवहिं[३] देहीं। बिरचत हंस काक किय जेहीं।

३—चौपाई

यहि पापिनिहिं सूझि का परेऊ। छाय भवन पर पावक धरेऊ॥

४—दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत[४] मराल[५]॥

'रामराज्य' की चर्चा केवल सुनने में आयी है देखने में न आयी, यह कहना था, सो न कहकर यों कहा।

५—दो०—मेरी सीख सुनति न सखि, उलटै उठति रिसाय।
सोयो चाहति नींद भरि, सेज अँगार बिछाय॥

---

१ मृगतृष्णा का जल। २ टेढ़ी। ३ ब्रह्मा। ४ एक। ५ हंस।

६—दो०—तब न सीख मानी अली, कियो बिचार न कोय।
चाखो चाहति अमृत-फल, विष को बीजा बोय॥

७—सवैया

हे 'रघुनाथ' कहा कहिए कहते कछु बात नहीं बनि आवै।
देखति हौ इनकी मति को ऋतु पावस बीति गए घर छावै॥

(७१) प्रहर्षण (त्रिविधि)

प्रहर्षण = मनचाहा आनंद

(१) प्रथम

दो०—जतन बिना ही होत है, जहँ चित-चाही बात।

१—दो०—जाको रूप अनूप लखि, सखि न गयो धरि धीर।
आपुहि ते गयो दुहन, आयो वही अहीर॥

२—सवैया

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस बिसे व्रत-भंग भयो सु कहो अब केसव को धनु ताने[१]॥
सोक की आग लगी परिपूरन आय गए घनस्याम[२] बिहाने[३]।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु-पुन्य पुराने॥

३—चौपाई

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥

४—दो०—निस्चर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रन कीन।
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय-जाय सुख दीन॥

मुनि लोग ऐसा चाहते ही थे, वही बात बिना किसी आग्रह के रामजी ने कह दी, और वे स्वयं ही उनके आश्रमों पर गए, उन्हें कोई विशेष उद्योग नहीं करना पड़ा।

१ चढ़ना। २ काला मेघ (राम)। ३ प्रातःकाल।

५—चौपाई

खुलि गए सकल पटल[1] के तारे[2] । भए निद्रा-बस सब रखवारे ॥
अरु बसुदेव देवकी दोऊ । छूटि गए बंधन ते सोऊ ॥

६—पद—राम कृपा भव-निसा सिरानी[3] जागे पुनि न डसैहौं ।
(विनय-पत्रिका)

राम-कृपा से ऐसी बात हुई, किसी उद्योग से नहीं ।

सूचना—आपुहि तें, राम-कृपा तें, अनायास ही, अचानक ही इत्यादि वा इसी अर्थ के अन्य वचन इस अलंकार के वाचक जान पड़ते हैं ।

(२) द्वितीय

दो०—जहँ चितचाही बात तें, अधिक अरथ-सिधि होय ।

१—दो०—चहत सात पावत सहस[4], गज पावत हय[5] चाहि ।
भाउसिंह दीवान है, जगत सराहत जाहि ॥

२—चौपाई

वरहु धीर ह्वैहैं सुत चारी । त्रिभुवन बिदित भगत-भयहारी ॥

राजा दशरथ एक पुत्र माँगने गये थे, चार पाए ।

३—दो०—इक फल चहि पूजत सिवहि, तुरत मिलै फल चारि ।

४—सवैया

आपुन के कर में बसिबे को बजार में रावरे हाथ बिकाने ।
भाग लखौ मुकतान को ए जू हरा[6] ह्वै रहैं हियरे लपटाने ॥

(३) तृतीय

दो०—ढूँढ़त जाके जतन को, वस्तु चढ़ै कर आन ।

१—दो०—हरि की सुधि को राधिका चली अली[7] के भौन ।
हँसत बीच ही मिलि गए, बरनि सकै सुख कौन ॥

---

१ किवाड़ । २ ताला । ३ बीत गई । ४ हज़ार । ५ घोड़ा । ६ माला । ७ सखी ।

२—दो०—निधि-अंजन की औषधी, ढूँढ़त लह्यो निधान[१]।

भूमि में गड़े हुये धन को देखने के लिए एक अंजन बनता है उसे 'निधि-अंजन' कहते हैं। उस निधि-अंजन की औषधी को ढूँढ़ते हुए भूमि में गड़ा हुआ धन ही मिल गया।

(७२) विषादन

दो०—जहँ चितचाही बस्तु तें, पावे बस्तु विरुद्ध।
बुद्धिवंत नर बरनहीं, तहाँ विषादन सुद्ध॥

१—दो०—उड़िहौं खिलिहै कमल जब, निसि बीते परभात।
यों सोचत अलि कोस[२] गत, तोर्‌यो करि[३] जलजात[४]॥

किसी कमलकोश में बंद हुआ भौंरा सोच रहा था कि कल सबेरे इस बन्दीखाने से निकलूँगा कि इतने में किसी हाथी ने आकर वह कमल तोड़-मरोड़ डाला।

२—चौपाई

एक विधातहिं दूषन देहीं। सुधा दिखाय दीन विष जेहीं॥

३—चौपाई

लिखत सुधाकर गा लिख राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

४—दो०—जेता औगुन ढूँढ़िए, गुनै हाथ परि जाय।

५—दो०—कन[५], देवो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी[६] जानि।
रूप रहँचटे[७] लगि लग्यो, माँगन सब जग आनि॥

सूचना—इन उपर्युक्त चौपाइयों में वाक्यार्थ से 'ललित' अलंकार है परंतु व्यंग्यार्थ से 'विषादन' भी है—राम-राज्याभिषेक चितचाही बात न हुई, वरन् उसके विरुद्ध उन्हें वनवास दिया गया—यह इच्छा से विरुद्ध हुआ। अतः विषादन है।

१ खजाना। २ कमल का छत्ता। ३ हाथी। ४ कमल। ५ भीख। ६ छोटे हाथवाली। ७ लालच।

(७३) उल्लास

दो०—औरहि के गुन-दोष तें, औरहि को गुन-दोष।
होत, तहाँ उल्लास कहि, बरनत मति के पोष॥

विवरण—उल्लास शब्द का अर्थ है—'प्रबल सम्बन्ध' जहाँ संसर्ग-संबंध से संगति का गुण-दोष अन्य में वर्णन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है। इसके चार भेद हैं। यथा—

(१) पहला

दो०—और वस्तु के गुनन तें, और होत गुनवान।

१—चौपाई

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु[1] सोहाई॥

२—चौपाई

सज्जन सकृत[2] सिंधु सम कोई। देखि पूर विधु बाढ़हि जोई॥

३—दो०—कह्यो देवसरि[3] प्रगट है, 'दास' जोरि जुग हाथ[4]॥
भयो सीय तुव न्हान ते, मेरो पावन पाथ॥

४—कवित्त—कुटिल कराही[5] क्रूर कलही कलंकी कलिकाल,
की कथन में रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ बिष्नु-अंगन में बैठि सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै।

५—दो०—नृप-समान मैं आपनी, होन बड़ाई काज।
साहि-तनय सिवराज के, करत कवित कबिराज॥

६—चौपाई

मज्जन[6] फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक[7] बकहु मराला॥

---

१ बुरी धातु (लोहा)। २ एक। ३ गंगा। ४ जल। ५ बुरे मार्ग पर चलनेवाले। ६ स्नान। ७ कोयल।

(२) दूसरा

दो०—लगै औरं के दोप तें, दोप जु औरहि आय।

१—दो०—संगति को गुन साँच है, कहैं जु गुनी रसाल।
कुटिल कूबरी संग ते, भये त्रिभंगी लाल॥

२—चौपाई—दुखित होहिं पर-बिपत बिसेषी।

३—दो०—रहिबो उचित न मलय[1] तरु, यहि कुबंस-बन माहिं।
बसत परस्पर ह्वै अगिन, औरहु तरु जरि जाहिं॥

४—दो०—सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गए वजीर॥

५—दो०—स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा[2] तीर।
अँसुवन करति तरौंस[3] को, छिन खौरोहों[4] नीर॥

६—दो०—निरखु परस्पर घसन सों, बाँस अनल[5] प्रगटाय।
जरत आपु सकुटुंब अरु, बनहू देत जराय॥

७—सवैया

भूलि गयो अपनो दुख ताछिन बानर के दुख नैन बहाए।

(३) तीसरा

दो०—बरने ते गुन और में, दोष और को होत।

१—चौपाई—'जरहिं सदा पर-संपति देखी'।

२—सवैया

चंद-अलोक[6] ते लोक सुखी यह कोक[7] अभागो न सोक तें छूटै।

३—दो०—बरसे बारिद के लता, तृन तरु सब हरियात।
भाग लखो या आक[8] को, जलहू सों जरिजात॥

४—चौपाई

आक जवास पात बिन भयऊ। जिमि सुराज्य खल-उद्यम गयऊ॥

---

१ चंदन। २ यमुना। ३ तल का, नीचे तक का। ४ खौलता हुआ। ५ आग। ६ आलोक, प्रकाश। ७ चक्रवाक। ८ मदार।

(४) चौथा

दो०—अवगुन ते जहँ और के, गुन औरहि परकास।

१—चौपाई—खल परिहास[1] होय हित मोरा।

२—चौपाई—पर-हित-हानि लाभ जिन केरे।

३—चौपाई—सुखी होहिं पर-बिपति बिसेषी।

४—कवित्त—डाँवरे[2] की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै वैरु,
रावरे के वैर होत काज सिवराज के।

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि यह 'उल्लास' अलंकार 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से कुछ मिलता-जुलता है। दोनों में भेद यह है कि उसमें कार्यकारण का संबंध है और इस अलंकार में केवल स्वभाव की अपेक्षा है, कारण-कार्य की नहीं।

(७४) अवज्ञा

दो०—औरै के गुन दोष तें, औरै गुन नहिं दोष।
ताहि अवज्ञा कहत है, सकल सुकबि मतिपोष॥

विवरण—यह अलंकार 'उल्लास' का उलटा है। इसके दो भेद हैं।

(१) प्रथम

दो०—जहाँ एक के गुनन ते, दूजो गुनहि गहै न।

१—दो०—करि बेदांत बिचारहू, सठहि, बिराग न होय।
रंच न मृदु मैनाक[3] भो, निसि-दिन जलनिधि सोय॥

२—सवैया

देखो अभाग कलानिधि[4] को 'रघुनाथ' सदा सिव सीस पै जाग्यो।
जैसे का तैसो कलंक रहो सिव-संगति को गुन नेकु न लाग्यो॥

---

१ हँसी। २ लड़का, बच्चा। ३ एक पर्वत जो समुद्र के भीतर रहता है। ४ चंद्रमा।

३—दो०—बिपुल बारि बरषत जलद, तरु-तृन सब हरियात।
इन पापिन करील में, कबहुँ न उलहत[1] पात॥
४—दो०—बड़वानल-सह सिंधु-जल, उषन न होत निहार।
५—दो०—'तुलसी' प्रभु भूषन किए, गुंजा बढ़ो न मोल।

(२) द्वितीय

दो०—जहाँ और के दोष ते, दोष न औरै होय।

१—दो०—सब तरुवर नव दल लहैं, रितु बसंत के माहिं।
पत्र न लगै करील महँ, दोष बसन्तहिं नाहिं॥
२—दो०—तिमिर-तोम[2] तुरतै मिटै, प्रगटै जाहि कछूक।
कहा दोष दिननाथ[3] दिन, देखे जो न उलूक॥
३—दो०—मोती-संग जु पोत[4] के, पहिरै बाला[5] काय।
तो महिमा मुकतान की, घटै न नेकौ साय॥
४—दो०—कहा भयो जो तजत हैं, मिलन मधुप दुख मानि।
सुवरन[6] बरन सुबासयुत, चंपक लहै न हानि॥

५—सवैया

दोष बसंत को नेक नहीं उलहै न करील की डार जु पाती।
६—दो०—कह बसंत का दोष जो, पत्र न लहै करील।
दूषन मेघहि कौन जो, चातक-मुख नहिं नीर॥
७—दो०—बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
'तुलसी' दोष न जलद को, जल ते जरै जवास॥
८—दो०—'तुलसी' देवल[7] देव का, लागे लाख करोर।
काक अभागे हगि भरो, महिमा भई कि थोर॥

नहीं उगते। २ समूह। ३ सूर्य। ४ शीशे की गुरिया। ५ स्त्री।
६ सोना। ७ मंदिर।

(७५) अनुज्ञा

अनुज्ञा=जो अंगीकार करने योग्य न हो उसे अंगीकार-करना।

दो०—इच्छा करिए दोष की, दोषहिं में गुन देखि।
ताहि अनुज्ञा कहत हैं, सुकबिन-मत अवरेखि।

१—चवपैया

मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह[1] मैं माना।
देख्यौं भरि लोचन हरि भवमोचन[2] यहै लाभ संकर जाना॥

२—चौपाई

रामहिं चितव सुरेस[3] सुजाना। गौतम-साप परम हित माना॥

३—कवित्त—तप करि-करि कमलापति[4] सों माँगत यों
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के।
बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमैं कीजै महाराज सिवराज के॥

४—सवैया

चेरिए[5] पै जो गोपाल रचैं तो चलोरी सबै मिलि चेरि लहावैं।
कूबर ही पै लगै मन जो सब कम्मर टारि कै हाँडी बँधावैं।

५—दो०—होउ बिपति जामें सदा, हिये चढ़त हरि आनि।

(७६) तिरस्कार

दो०—त्यागिय आदरनीयहू, लखिय जो दोष-बिसेष॥
तिरस्कार भूषन कहैं, जिनकी सुमति असेष॥

---

१ कृपा। २ सांसारिक दुःख दूर करने वाले। ३ इंद्र। ४ विष्णु। ५ दासी।

१—दो०—जरौ सुसंपति सदन-सुख, सुहृद मातु पितु भाय।
सनमुख होत जो रामपद, करै न सहज सहाय ॥

२—पद—जाके प्रिय न राम बैदेही।
तेहि त्यागिए कोटि बैरी-सम यद्यपि परम सनेही।

३—दो०—जिन होवहु तिय श्रियविभव[1], गज तुरंग कलबाग[2]।
जिनसे बस नर करत नहिं, हरिचरनन अनुराग ॥

४—चौपाई

सो सुख धर्म-कर्म जरिं जाऊ। जहँ न राम-पद-पंकज-भाऊ[3] ॥

५—दो०—वा सोने को जारिए जाते फाटै कान।

(७७) लेश

दो०—जहँ बरनत गुन-दोष कै, कहै दोष गुन-रूप।
भूषन ताको लेस कहि, गावत कुकबि अनूप ॥

(दोष को गुन मानना)

१—दो०—नहिं राजा ते दंड-भय, नहिं कछु चोर-कलेस।
नाहिं दिवाले तें डरैं, धनि दरिद्र को देस ॥

२—दो०—कोऊ बचत न सामुहे, सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय समर ते, जिय लै आए भाजि[4] ॥

३—दो०—कागा परत न बंध में, श्रुतिकटु बचन उचारि।

४—दो०—निर्गुनता जग धन्य है, धिक गुन-गौरव ताहि।
और बिटप सुख से रहैं, चंदन-तरु कटि जाहि ॥

५—चौपाई

बालि परम हितु जासु प्रसादा[5]। मिल्यो राम तुम समन-बिषादा।

६—चौपाई

जो नहिं होत सोह अति मोहीं। मिलत्यों तात कवन बिधि[6] तोहीं।

१ लक्ष्मी का ऐश्वर्य। २ सुंदर बगीचा। ३ प्रेम। ४ भाग आए। ५ कृपा। ६ प्रकार।

(गुण को दोष मानना)

१—दो०—कैद होत सुक सारिका[१], मधुरी बानि[२] उचारि।

२—चौपाई

मुनि बिनु काज करिय[३] कत रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥

३—चौपाई

सुक सारिक[४] जो पढ़ते नाहीं। तौ कत परत पिंजरन माहीं।
सब्द-बेध सर जो न चलौते। अंध-साप कत दशरथ पौते[५]॥
रबि-ससि जो न जरत परकासा। तो संतत कत फिरत उदासा।
जो न होत रघुपति के दाया। तो बन-दुख कत सहत निकाया[६]।

(७८) मुद्रा

दो०—प्रकृत अर्थ में मिलहिं पद, औरहु नाम-प्रकास।
मुद्रा तासों कहत हैं, कबि जन सहित हुलास॥

विवरण—प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले पदों से जहाँ कोई दूसरा सूचनीय अर्थ भी निकलता हो, वहाँ मुद्रा अलंकार माना जाता है।

१—दो०—सुनि मुरली-सुर-धुनि सखि गो[७]मति को सुबिबेक।
जमुनायकु को हित भयो, सरसइ[८] हिय धरि टेक॥

इस दोहे में प्रस्तुत अर्थ के अलावा सुरधुनि (गंगा) गोमति (गोमती) जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियों के नाम भी सूचित होते हैं।

केशवकृत रामचंद्रिका में अयोध्या के वर्णन में यह छंद है—

१ मैना। २ वाली। ३ करते हैं। ४ मैना। ५ पाते। ६ दुःख के समूह। ७ गया। ८ फैलता है।

२—त्रिभंगी

कविकुल विद्याधर[1] सकल कलाधर[2] राजराज[3] वर बेस बनै।
गनपति[4] सुखदायक पसुपति[5] लायक सूर[6] सहायक कौन गनै॥
सेनापति बुधजन[7] मंगल[8] गुरुगन[9] धर्मराज[10] मन बुद्धि घनी।
बहु सुभ मनसाकर[11] करुनामय[12] अरु सुरतरंगिनी[13] सोभ सनी॥

इसमें अयोध्या नगरी का वर्णन प्रस्तुत है, पर साथ ही इसमें ऐसे शब्द आए हैं जिनसे देवपुर (अमरावती) की भी सूचना मिलती है।

३—भुजंगप्रयात

यचौ मैं प्रभू ते यही हाथ जोरी। फिरै आपु ते ना कबौं बुद्धि मोरी॥
भुजंगप्रयातोपमा चित्त जाको। जुरै ना कदा भूलि के संग ताको॥

इस छंद में ईश्वर-प्रति विनयरूपी प्रस्तुत अर्थ के अलावा यह भी सूचित होता है कि यही छंद 'भुजंगप्रयात' नामक छंद का उदाहरण भी है। 'यचौं' शब्द से सूचित होता है कि य, चौं अर्थात् चार यगण का यह छंद होता है।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कविवर जगन्नाथप्रसाद (भानु) कृत 'छंद-प्रभाकर' ग्रंथ में वर्णित छंदों के उदाहरणों में सर्वत्र यही अलंकार निबाहा गया है।

---

१ विद्वान् २ कलाविद। ३ श्रेष्ठ छत्री। ४ समूह के अफसर। ५ पशुशाला के अधिकारी। ६ वीर। ७ पंडित। ८ मांगलिक पाठ करनेवाले। ९ पाठशाला के शिक्षक। १० न्यायकर्ता। ११ मनवांछित फल देने वाले। १२ दयावान। १३ सरयू नदी।

* इस छंद में कवि (शुक्र), विद्याधर (देव-विशेष), कलाधर (चंद्रमा), राजराज (कुवेर), गनपति (गणेश), सुखदायक (इंद्र), पशुपति (महादेव), सूर (सूर्य), सेनापति (स्वामि कार्तिकेय), बुध, मंगल, गुरु (बृहस्पति), धर्म राज (यम), मनसाकर (कल्पवृक्ष या कामधेनु), करुनामय (विष्णु), (सुरतरंगिनी) में मुद्रा है।

सूचना—कभी कभी नाटक-ग्रंथ में अथवा कथा-ग्रंथ में चतुर कवि आदि ही में कोई ऐसा छंद रख देता है कि जिससे समस्त ग्रंथ में वर्णित कथा की सूचना मिल जाती है। ऐसे छंद में मुद्रा अलंकार माना जाता है।

अनघराघव नाटक में आदि ही में सूत्रधार कहता है।

४—दो०—नीति रीति सों चलत तेहि, तिर्यक[1] होत सहाय।
कुपथ चलै तेहि का तजहिं, सोदरहू जग भाय॥

चौपाई

जो जन नय-पथ-बिचरन लायक। तिर्यहू तेहि होत सहायक॥
जो जग में अनीति मग भजहीं। तुरंत सहोदरहू तेहि तजहीं॥

इन कविताओं से नाटक की पूरी कथा की सूचना मिलती है।

बाबू हरिश्चंद्र-कृत 'मुद्राराक्षस' नाटक के आदि में यह दोहा :—

५—दो०—चंद्र बिंब पूरन[2] भए, क्रूर केतु हठ दाप।
बल सों करिहै ग्रास कह, जेहि बुध[3] रक्षत आप॥

इस दोहे से 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णित चंद्रगुप्त, मलय केतु और बुध (चाणक्य) की कार्रवाई की सूचना मिलती है।

इसी प्रकार 'रत्नावली नाटिका' तथा 'प्रेमयोगिनी' में बाबू हरिश्चंद्र ने यह दोहा नांदी में कहलाकर ग्रंथ के वर्णन की सूचना दिलवाई है।

६—दो०—भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर[4]॥

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण में आरण्य-कांड का यह सोरठा कांड भर की कथा की सूचना देता है—

१ पशु-पक्षी। २ पूर्ण, पूर्ण न। ३ बुध नक्षत्र। ४ मेरा, मयूर।

७—सो०—उमा रामगुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति[1]।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि-बिमुख न धर्म-रति[2]॥

सुंदरकांड के आदि का यह श्लोक कांड भर की कथा का सूचक है—

८—मालिनी
अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं,
दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं, वातजातं नमामि[3]॥

लंकाकांड के आरंभ का यह दोहा लंकाकांड भर की कथा का सूचक है—

९—दो०—लव निमेष परमान युग, बरष कल्प सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु को दंड[4]॥

सूचना—फ़ारसी और उर्दू में इस अलंकार को "मिराआतुन्नज़ीर" कहते हैं। उर्दू में इसी को ज़िला भी कहते हैं। एक उदाहरण यह है—

१०—शेर—नज़र बदली जो देखी उस सनम की।
न दी नालो[5] ने फ़ुर्सत एक दम की॥

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के सिवा बदली, नदी, नाला से अन्य सूचनीय अर्थ भी निकलते हैं।

(७९) रत्नावली

दो०—प्रस्तुत अर्थ कहत कढ़ैं, क्रम ते औरौ नाम।
वहै रुचिर रत्नावली, अलंकार सुखधाम॥

१ संसार से वैराग्य। २ प्रेम। ३ अत्यंत बलशाली, सुमेरु-सामान शरीरवाले, राक्षस रूपी वन को जलाने के लिए अग्नि, ज्ञानियों में प्रधान, सब गुणों की खानि, वानरों के अधिपति, रामचंद्र के श्रेष्ठ दूत, पवन के पुत्र (हनूमान) को मैं प्रणाम करता हूँ। ४ धनुष। ५ रोना।

१—दो०—रसिक चतुरमुख लच्मिपति, सकल ज्ञान के धाम।

अर्थात् हे रसिक, तुम चतुरों में मुख्य हो, लक्ष्मीवान हो और संपूर्ण ज्ञान के धाम हो। यह प्रस्तुत अर्थ हुआ। परंतु साथ ही अन्य नाम भी क्रम से निकलते हैं अर्थात् चतुरमुख= ब्रह्मा, लक्ष्मीपति=विष्णु, सकल ज्ञान के धाम=शिव।

२—कवित्त—जीतहि एरावत[१] ऐराबत सों जंग[२] अंग,
पुंडरीक के गनत पुंडरीक[३] छंद हैं।
बावन बावन[४] मृदु कुमुद कुमुद[५] गनै,
अंजन[६] के जैतवार अंजन के कंद हैं॥
पुष्यदंतहू के दंत तोरैं ज्यों पुहुपसार[७],
छीन लेत सार्वभौमहू के सदा मंद हैं।
प्रबल प्रतीक[८] सुप्रतीक के जितैया।
रैयाराव भाऊसिंह तेरे दान के दुरद[९] हैं॥

यहाँ भाऊसिंह के दिए हुए हाथियों की प्रशंसा तो प्रस्तुत अर्थ है, पर साथ ही आठों दिग्गजों के नाम क्रम से निकलते हैं—अर्थात् ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक।

२—सवैया

रबि सिर-फूल मुखै ससि-तूल महीसुत[१०] बदनबिंदु[११] सुभाँति।
पना[१२] बुध केसर-आड़[१३] गुरौ नथ मोतिय सुक्र करैं दुख साँति।
सनी है सिंगार बिधुंतुद[१४] बार सजै झखकेतु[१५] सबै तन-काँति।
निहारिय लाल भरो सुखजाल बनी यह बाल नवग्रह-पाँति।

१ प्रधान। २ युद्ध। ३ कमल। ४ बौना। ५ कुई। ६ काजल। ७ फूलों का सार। ८ स्वरूप। ९ हाथी। १० मंगल। ११ रोली। १२ पन्ना। १३ केसर का टीका। १४ राहु। १५ कामदेव।

इसमें क्रम से 'नवग्रह' के नाम आए हैं।

४—सवैया

आदित सोम कहौ कबहूँ कबहूँ कहौ मंगल औ बुध होते।
औ गुरु सुक्र सनीचर को कहिबो कबहूँ मुख सो नहि रीते।
मोहिं न जानि परै 'रघुनाथहिं' भेंट को है दिन कौन सो चीते,।
आवत जात मैं हारि परी तुम्हैं बार बतावत बासर बीते।

इसमें सातो दिनों के नाम क्रम से आए हैं।

सूचना—इसमें यह आवश्यक है कि कही हुई वस्तुओं का प्राकृतिक क्रम भंग न होने पावे।

(८०) सद्गुण

दो०—छोड़ि आपनो गुन जहाँ, औरन को गुन लेत।
अलंकार तद्गुण तहाँ, बरनै कबि करि हेत॥

विवरण—'गुण' शब्द का अर्थ इस अलंकार में केवल 'रंग' है। उल्लास और अवज्ञा अलंकारों में गुण का अर्थ 'धर्म' अथवा 'दोष' विरोधी भाव है। यह अंतर भले प्रकार समझ लेना चाहिये। 'भूषन' ने स्पष्ट कहा है—

दो०—जहाँ आपनो रंग तजि, गहै और को रंग।
ताको तद्गुण कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग॥

१—सवैया

जाहिरै[१] जागत सो जमुना जब बूड़ै बहै उलहै[३] वह बेनी[४]।
त्यौं 'पदमाकर' हीर के हारन गंग तरंगन-सी सुख देनी।
पायन के रँग सों रँगि जाति सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी[५]।
पैरै जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ[६] तहाँ ताल में होति त्रिबेनी।

१ बिचारे हुए। २ प्रत्यक्ष। ३ ऊपर निकलती है। ४ चोटी। ५ श्रेणी। ६ नायिका।

२—दो०—गई बिसद रँग रुचिरई, भई अरुन छबि नौल[1]।
लै मुकता कर में करति, तू मूँगा को मोल॥

३—दो०—सोनजुही सी होति दुति, मिलत मालती माल।

४—दो०—अधर धरत हरि के परत, ओंठ डीठि पट-ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्रधनुष-रँग होति॥

सूचना—किसी किसी आचार्य का मत है कि 'रंग' के अलावा 'रस' और 'गंध' भी इसी अलंकार का विषय है। परंतु हमें जितने उदाहरण इसके मिले हैं वे सब रंग ही से संबंध रखते हैं और भूषण ने तो परिभाषा ही में 'रंग' शब्द कह दिया है।

(८१) अतद्गुण

दो०—रहे आन के संगहू, गुन न आन को होय।
ताहि अतद्गुन कहत हैं, कबि कोबिद सब कोय॥

विवरण—इसे तद्गुण का उलटा समझना चाहिये। इसमें भी केवल रंग का विचार ही मुख्य है।

१—दो०—लाल बाल अनुराग सों, रँगत रोज सब अंग।
तऊ न छाँड़त रावरो, रूप साँवरो रंग॥

२—दो०—गंगाजल सित[2] अरु असित[3], जमुना जलहु अन्हात।
हंस रहत तो सुभ्रता, तैसिय बढ़ न घटात॥

३—दो०—सिव सरजा की जगत में, राजति कीरति नौल।
अरि-तिय-दृग-अंजन हरै, तउ धौल[4] की धौल॥

४—दो०—कज्जल इव जमुना जलहिं, ससि सम सुरसरि नीर।
न्हात न घट बढ़ स्वेतता, राजहंस धरि धीर॥

---

१ नवल, नई। २ उज्ज्वल। ३ श्याम। ४ उज्ज्वल।

(८२) पूर्वरूप (द्विधा)

(प्रथम)

दो०—बहुरि मिलै गुन आपनो, जहाँ आन के संग।
पूरबरूप तहाँ प्रथम, भाषैं सुमति उतंग॥

१—दो०—लखत नीलमनि होत अलि! कर विद्रुम[1] ठहरात।
मुकता को मुकुता बहुरि, लख्यो तोहिं मुसुकात॥

२—दो०—मुकुत-माल हरि के हिये, मरकत[2] मनिमय होत।
पुनि पावत निज रूप लहि, राधे-मुख-उद्योत॥

३—सवैया

'भूषन' यों सिवराज की धाक भये पियरे अरुने रँगवाले।
लोहे कटे लपटे अति लोहु[3] भये मुँह मीरन के पुनि लाले॥

४—बरवै—केस मुकुत सखि मरकत-मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥

—बरवै रामायण

सूचना—पुनि, बहुरि, फिरि इत्यादि इसके वाचक हैं।

(दूसरा)

दो०—बस्तु बिनासेहू बहुरि, तरह पीछली होत।
दूजो पूरबरूप तेहि, बरनत पंडित-गोत॥

विवरण—जिस वस्तु से मिलकर कुछ गुण बढ़ जाना कहा गया हो वा अनुमान किया जाय, उसके विनष्ट हो जाने पर भी पूर्ववत् (वैसा ही, जैसा उस वस्तु के साथ रहते समय था) बना रहना वर्णन किया जाय वहाँ दूसरा पूर्वरूप होता है।

---

१ मूँगा २ नीलम। ३ खून।

१—दो०—अंग-अंग नग जगमगत, दीप-सिखा सी देह।
दिया बढ़ाएहू[१] रहत, बड़ो उजेरी गेह॥
२—दो०—अथयेहू ससि हँसनि की, छाई छटा अनूप।
३—दो०—दीप बढ़ायेहू रहै, रसनामनि[२] परकास।
४—दो०—अथयेहू इन्दुहि तिमिर-तोमहिं दियो पछैलि[३]।
चहुँ ओर मुख-चंद की, रही चाँदनी फैलि॥

५—सवैया

भौन अँधेर हूँ बीच गए मुख-जोति तें वैसिए होत उज्यारी।

६—सवैया

आठयें[४] के ससिहू के अथौत[५] भई मुख रावरे की उजियारी।

(८३) अनुगुन

(अनुगुण = गुण का और अधिक बढ़ना)

दो०—पहिले को गुन आपनो, बढ़ै आन के संग।
तासों अनुगुन कहत जे, जानत कबिता-अंग॥

विवरण—इस अलंकार में पिछले तीन अलंकारों की तरह केवल रंग ही का ग्रहण न समझना चाहिए वरन् सभी प्रकार के गुणों का ग्रहण समझना चाहिए।

१—दो०—मुक्तमाल हिय हास तें, अधिक सेत ह्वै जात।
२—कवित्त—भानुबंस-भूषन महीप रामचंद्र बीर,
रावरो सुजस फैल्यो आगर[६] उमंग में।
कबि 'लछिराम' अभिराम दूनो सेषहू सों,
चौगुने चमत्कार हिमगिरि गंग में॥

---

१ बुझाने पर। २ करधनी के जवाहिरात। ३ पीछे कर दिया। ४ अष्टमी। ५ अस्त होने पर। ६ चतुर।

जाको भट घेरे तासों परै है और,
पचगुनो हीरा-हार चमक-प्रसंग में।
चंद मिलि नौ गुनो नछत्रन सों सौगुनो है,
सहसगुनो भो छीर सागर-तरंग में॥

३—कवित्त—कज्जल-कलित[1] अँसुवान के उमंग-संग,
दूनो होत रोज रंग जमुना के जल में।

४—चौपाई

मनि मानिक मुकता छबि जैसी। अहि गिरिगज सिर सोह न तैसी॥
नृप-किरीट तरुनी-तनु पाईं। लहैं सकल सोभा अधिकाई॥

सूचना—इस चौपाई में क्रमालंकार भी है। परंतु हमारा लक्ष्य केवल चौथा चरण है।

५—बरवा—चंपक-हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाय।

(८४) मीलित

दो०—दुइ चीजैं इक रंग जहँ, मिले न भेद लखाय।
मीलित तासों कहत हैं, कबि-कोबिद हरषाय॥

१—दो०—मरकत मनि अलि सीस पै, नेकहुँ नाहिं लखात।
सुबरन[2] के भूषन सिया, तन सुबरन[3] मिलि जात॥

२—दो०—अधर पान अंजन नयन, लगा महाउर पाय।
सिय-तन ये दरसत नहीं, अंगन रहे समाय॥

३—चौपाई

बेनु[4] हरित मनिमय[5] सब कीन्हें। सफल सपर्न[6] परांह नहिं चीन्हें॥

४—दो०—पँखुरी लगी गुलाब की, गात न जानी जाय।

५—दो०—पान-पीक अधरान में, सखी लखी नहिं जाय।
कजरारी अँखियान में, कजरा[7] री न लखाय॥

---

१ युक्त। २ सोना। ३ सुंदर रंग (वर्ण)। ४ बाँस। ५ हरा रत्न। ६ पत्रयुक्त। ७ काजल।

(८५) उन्मीलित

दो०—जहँ मीलित में हेतु लहि, कछुक भेद बिलगाय।
उन्मीलित, सुरसुरि मिले ज्यों जमुना लखिजाय॥

१—दो०—समझा परत सुगंध तें तन केसर को लेप।

२—बरवै—चंपक-हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुम्हलाय॥

३—दो०—चंपक-तन घन-बरन बर, रह्यो रंग मिलि रंग।
जानी जात सुबास ही केसर लाई अंग॥

४—दो०—सम प्रकास तम पाख[1] दुहुँ नाम-भेद बिधि कीन्ह।
ससि-पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥

५—दो०—सिव सरजा तव सुजस में मिले धवल छबि-तूल[2]।
बोल बास तें जानिये, हंस चमेली फूल॥

६—दो०—मिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखात।
ज्यों ज्यों मद[3] लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरत जात[4]॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि तद्गुण और अतद्गुण अलंकारों में केवल 'रंग' का ही विषय वर्णित होता है। मीलित और उन्मीलित में केवल 'रंग' ही नहीं वरन् रस, गंध के भी विषय वर्णित होते हैं। आगे सामान्य और विशेषक अलंकार लिखे जायँगे जिनमें 'आकार' वर्णित विषय होता है। इन अलंकारों का भेद खूब बारीकी से समझना और स्मरण रखना चाहिए।

(८६) सामान्य

दो०—बस्तु दोय आकार इक, भेद न परै लखाय।
तहँ सामान्य बखानहीं, अलंकार कबिराय॥

१—चौ०—एक रूप तुम भ्राता दोऊ।

१ पक्ष। २ समान उज्ज्वल छविवाले। ३ शराब। ४ प्रकट हो जाती।

२—नाहिं फरक श्रुतिकमल अरु हरिलोचन अनिमेष।

यहाँ कान में खोंसे हुए प्रस्फुटित कमल पुष्प के दलों और कृष्ण के अनिमेष नेत्रों में आकार की एकता से भेद नहीं जान पड़ता।

३—सवैया

जानी न जात मसाल औ बाल[1] गोपाल गुलाब चलावत चूकैं।

यहाँ भी आकार ही के विचार से एकता है।

४—भुजंगप्रयात

भगी देखि कै संकि लंकेस-बाला[2]। दुरी[3] दौरि मंदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरिगो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो॥
गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको। तजै जा दिसा को भजै बाम ताको।
भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुंदरी क्यों दरी को बिहारी[4]॥

—रामचंद्रिका

लंका में युद्ध होते समय अंगद और हनुमान रावण के रनिवास में घुसकर मंदोदरी को पकड़ना चाहते हैं। मंदोदरी चित्र सारी में जा घुसी और वहाँ बनी हुई तसवीरों में ऐसा मिल गई (आकार की समता से) कि अंगद यह नहीं जान सके कि कौन चित्र है और कौन असल मंदोदरी है।

५—चौपाई

भरत राम एकै अनुहारी[5]। सहसा लखि न सकैं नर नारी॥
लखन सत्रुसूदन इक रूपा। नख-सिख तें सब अंग अनूपा॥

(८७) विशेषक

दो०—सामान्यहि में जहँ कछू, कैसहुँ भेद जनाय।
ताहि बिसेषक कहत हैं, सब कबि कोबिद राय॥

---

१ नायिका। २ मंदोदरी। ३ छिपी। ४ कंदरा में घुसने वाला (बंदर)। ५ समान रूपवाले।

विवरण—पूर्वोक्त 'सामान्य' अलंकार ही में (आकार का विचार लिये हुए) जहाँ किसी कारणवश दोनों वस्तुओं का भेद ज्ञात हो जाय वहाँ विशेषक अलंकार होगा। जैसे—

१—दो०—मनमोहन मनमथन को, द्वै कहतो को जान।
जो इनहू कर कुसुम को, होतो बान-कमान॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और कामदेव एक ही रूप और आकार के हैं, भेद यों जाना जाता है कि कृष्ण के हाथ में फूलों के धनुष-बाण नहीं हैं।

२—कवित्त—'भूषन' भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दल ते।
सम बेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँके देत[१] मीर जाने चलते॥

३—दो०—कागन में मृदु बानि[२] तें पिक लियो पिछानि[३]।

(८८) विशेषकोन्मीलित

दो०—जहँ विशेषकोन्मिलित मिलि, भेदहि प्रगटैं आय।
तहँ विशेषकोन्मिलित हैं, कहत सुकबि-समुदाय॥

जहाँ उन्मीलित और विशेषक दोनों का मेल पाया जाय वहाँ यह अलंकार कहा जाता है।

१—दो०—ससि में मुख में भेद कछु, नेकु न परत लखाय।
बिन कलंक अरु बास[४] तें, सिय-मुख जानो जाय॥

२—चौपाई

बय[५] बपु[६] बरन[७] रूप सोइ आली। सील सनेह सरिस समचाली॥
बेष न सो सखि तीय न संगा। आगे अनी[८] चली चतुरंगा॥

---

१ हुँकार करते हुए। २ बोलो। ३ पहचान। ४ सुगंध। ५ अवस्था। ६ शरीर। ७ रंग। ८ सेना।

सूचना—गुमान कवि कृत 'नैषधकाव्य' में 'पंचनली' का प्रसंग देखो। दमयंती के स्वयंवर में राजा 'नल' आए हैं। इंद्र, अग्नि यम और वरुण देवता भी राजा नल ही का रूप (ज्यों का त्यों) धारण कर स्वयंवर में बैठे हैं। इस प्रकार 'नल' के पाँच रूप देखकर दमयंती घबराई है कि इन पाँचों में से असली 'नल' कौन है। सरस्वती का स्मरण करके दमयंती विचारने लगी है, तब भेद स्फुरित हुआ है। वह काव्य यों है—

३—त्रोटक

सुनिकै यह अद्भुत बात नई। पँचहु नल ओर चकी[1] चितई।
नहिं पावत है निरधार कियो। धरको हियरा तन ताप लियो।

संयुक्ता

सुर चारि आनँद सो पगे। नहिं पायँ भूतल में लगे।
नल के लगे पग मेदनी[2]। लखि जानि जाति नितंबिनी[3]।
सुर के सरीरन में कहीं। कन रेनु के लखिये नहीं।
नल देह पै द्युति पायके। जनु भूमि भेंटत चाय[4] के।

त्रोटक

नल के पल लोयन[5] माहिं लगैं। सुर-नैनन में न निमेष लगैं।
सुर सीस न फूल मलीन भये। नल के सिर के कुम्हिलाय गये।

तारक

इन भेदन सों नल को पहिचानो। चित अंतर सिंधु सुधाहि समानो।

इस कविता में 'विशेषकोन्मीलित' अलंकार है। केवल 'उन्मीलित' इसलिए नहीं है कि शुद्ध उन्मीलित में केवल एक वस्तु में कोई बिशेषतासूचक बात कही जाती है, इसमें दोनों वस्तुओं (देवता और नल) में विशेषतासूचक चिह्न कहे गए हैं। और केवल 'विशेषक' इसलिये नहीं है कि 'विशेषक' में केवल 'आकृति' की ही समानता वर्णन की

१ चकपकाई। २ पृथ्वी। ३ रमणी (दमयंती)। ४ चाव। ५ नेत्र।

जाती है, अन्य गुणों की नहीं। इसमें आकृति के अलावा अन्य गुणों अर्थात् रूप, रंग, कोमलता इत्यादि की भी समता (राजा नल और देवताओं की) विवक्षित है।

(८६) गूढ़ोत्तर

दो०—अभिप्राययुत ज्वाब जहँ, कहि गूढ़ोत्तर सोय।
प्रस्न मानि लीजै कहूँ, कहुँ पूँछे पर होय॥

विवरण—जहाँ कुछ गूढ़, अभिप्राय सहित उत्तर का वर्णन हो, वहाँ यह अलंकार होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक वहाँ जहाँ केवल उत्तर कहा जाता है और उसी उत्तर से कल्पना कर ली जाती है कि ऐसा प्रश्न किया गया होगा। दूसरा प्रश्न सहित कहा जाता है।

(१) कल्पित प्रश्न

१—दो०—घाम घरीक निवारिये, कलित[1] ललित अलिपुंज।
जमुना-तीर तमाल-तरु, मिलति मालती-कुंज॥

बिना पूछे ही स्वयं अपना परिचय देने में सर्वत्र यही अलंकार होगा। जैसे तुलसीकृत रामायण के सुंदरकांड में बिना हनुमानजी के पूछे ही विभीषण अपना परिचय दे चले हैं। देखो—

२—चौपाई

सुनहु पवनसुत रहनि[2] हमारी। जिमि दसनन महँ जीभ विचारी॥
......इत्यादि

इसमें विभीषण का गूढ़ अभिप्राय अपनी दीनता दिखाकर रामदूत की कृपा संपादन करना था।

१ सुंदर। २ रहना, बसना।

हनुमानजी जब संजीवनी लेने जाते थे, तब कालनेमि राक्षस कपटमुनि के भेष से बिना पूछे ही कह चला है—

३—चौपाई

होत महारन रावन रामहिं। जितिहैं राम न संसय या महिं॥
इहाँ भए[1] मैं देखौं भाई। ज्ञान दृष्टि बल मोहिं अधिकाई॥
......आदि

इसमें गूढ़ अभिप्राय अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके हनुमान जी का ठगना था।

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—स्वयं दूतिका नायिका के बचनों में सर्वत्र यही अलंकार होता है।

(२) प्रश्न-सहित

(रावण और हनुमान का प्रश्नोत्तर)—

१—हरिगीतिका

कपि कौन तू? सुत-अक्षय-घातक, कौन बल? रघुनाथ के।
रघुनाथ को? खर-दूषणाँतक, अनुज-लक्ष्मण साथ के।
लखन को? तव भगिनि जानति, परसुधर[2]-मद जेहि हर्‌यो।
परसुधर को? सहसभुजरिपु दीप जेइ तव सिर धर्‌यो।
पठवा जो केइ? सुग्रीव, को, हरि[3] बालि सोदर[4] जानिये।
कपि बालि को? तुम रह्यो जाकी काँख में सुधि आनिये।
किमि सिंधु नाँघो? गोपद[5] ज्यों, केहि हेत? सिय-चोरै लखै।
सिय कौन? कन्या जनक की तुम बाण[6] गे जाके मखै[7]।
कस बाण? सोइ बलि-सुवन जेइ तोहिं बाँधि नचायऊ।
को कहत यहि बिधि? पद्मिनी[8] जेइ जलधि माँझ चलायऊ।

१ से। २ परशुराम। ३ बंदर। ४ सहोदर। ५ गोखुर से बना गड्ढा। ६ बाणासुर। ७ यज्ञ। ८ हथिनी।

इसमें हनुमानजी का गूढ़ अभिप्राय रावण को लज्जित करना है।

२—दो०—बाल कहा लाली परी, लोयन-कोयन[1] माँह।
लाल तिहारे दृगन, की परी दृगन में छाँह॥

(६०) चित्रोत्तर

(यह अलंकार दो प्रकार का हैं)

(प्रथम)

दो०—जहँ बूझत कछु बात के उत्तर सोई बात।
प्रथम चित्र तेहि कहत हैं सकल सुकवि अवदात॥

विवरण—जिन शब्दों में प्रश्न किया जाता है वे ही शब्द उत्तर के भी हो जाते हैं।

१—दो०—को है जारत अगिन बिनु ? को रे नेह-विहीन ?
२—चौ०—तात कहाँ ते पाती आई ?
३—चौ०—का वर्षा जब कृषी सुखाने ?
४—को कहिये जल सों सुखी ? को कहिये पर[2] स्याम ?
को कहिये जे रस बिना ? को कहिये सुख बाम[3]॥

(१) प्रथम उदाहरण में,—(प्रश्न)—बिना अग्नि के कौन जलाता है ? (उत्तर)—कोह (क्रोध) ही बिना अग्नि के जलाता है। (प्रश्न)—नेहविहीन व्यक्ति को क्या कहते हैं। (उत्तर)—नेहविहीन व्यक्ति को 'कोरा' कहते हैं।

(२) दूसरे उदाहरण में–भरतजी राजा दशरथ से पूछते हैं।

(प्रश्न) हे तात यह पाती (पत्री) कहाँ से आई है ?
इन्हीं शब्दों में राजा दशरथ का उत्तर भी हो जाता है (उत्तर)—तात (रामचंद्र) के यहाँ से पाती आई है।

---

१ नेत्रों का कोया। २ पंख। ३ टेढ़ा।

(३) तीसरे उदाहरण में भी ठीक इसी प्रकार समझो।

(४) चौथे उदाहरण में (प्रश्न)—जल से किसको सुखी कहना चाहिए। (उत्तर)—कोक (चक्रवाक) का हृदय जल से सुखी होता है। (प्रश्न)—जिसके पर काले हों उसे क्या कहते हैं। (उत्तर) काक (कौवा) का सीना और पर श्याम होते हैं। (प्रश्न)—जो रसहीन हैं उन्हें क्या कहना चाहिए? (उत्तर)—जो अरसिक हैं उन्हें काक (हृदय) कहना चाहिए। (प्रश्न)—स्त्री किसके लिए सुखरूप है? (उत्तर)—स्त्री कोक (चक्रवाक) के लिए सुखरूप है।

(२) दूसरा

दो०—बहुतै बातन को जहाँ, उत्तर दीजै एक।
चित्रोत्तर सो दूसरो, कहैं सुकबि सविवेक॥

१—सो०—गाउ, पीठ पर लेहु, अंगराग करु हार करु।
गृह प्रकास करि देहु, कृष्ण कह्यो 'सारंग' नहिं॥

इसमें राधिकाजी के पाँच वाक्य हैं—(१) गाओ, (२) पीठ पर ले लो, (३) अँगराग कर दो, (४) माला बना दो, (५) घर में प्रकाश कर दो। इन पाँचों का उत्तर कृष्ण ने एक बात कहकर दिया कि 'सारंग नहीं है'। 'सारंग' शब्द अनेकार्थ-वाची है। यहाँ इसके अर्थ यों है—(१) बीणा, (२) घोड़ा, (३) चंदन, (४) फूल, (५) दीपक।

२—दो०—को हरि-बाहन? जलधिसुत? काको हाथ जहाज?
चतुर सुकबि उत्तर दियो, एक बचन 'द्विजराज'॥

यहाँ तीन प्रश्न हैं? सबका उत्तर 'द्विजराज' शब्द है—(१) गरुड़, (२) चंद्रमा, (३) ब्राह्मण।

३—दो०—को मरु-भुव पालत सु अब ? को नित थिर जु रहंत ?
यूरुप-पदवी कौन मुख, जानहु प्रिय 'जसवंत' ॥

(प्रश्न)—मरुभूमि का इस समय कौन पालन करता है ?
(उत्तर)—जसवंत = (महाराजा जसवंत सिंह)।
(प्रश्न)—नित्य कौन स्थिर रहता है ?
(उत्तर)—जसवंत = (यशस्वी पुरुष)।
(प्रश्न)—यूरुप में कौन सी पदवी मुख्य मानी जाती है।
(उत्तर)—'ज' और 'स' वाली पदवी अर्थात् जी० सी० (G. C.)।

४—चौपाई

प्यावहु बारि[1], बिदारहु मृगवर। 'सर[2]'ढिग नाहिंप्रियायहिअवसर

५—दो०—पंथी प्यासो जाय, गदहा रहै उदास क्यों।
उत्तर दीन बताय, एक बचन 'लोटा[3] न था ॥

६—दो०—को रन में सनमुख लरत ? को तमरिपु भरपूर।
उदर-व्याधि अति कठिन का ? सुकबि 'दीन' कह 'सूर'[4] ॥

इसमें तीन प्रश्न हैं। तीनों का उत्तर 'सूर' शब्द से हो जाता है।

(६१) सूक्ष्म

दो०—सूछम कृति लखि आन की, करै क्रिया कछु भाय।
ताको नाम बखानहीं, सूछम सब कबिराय ॥

विवरण—दूसरे का किया हुआ कोई सूक्ष्म कृत्य (इशारा वा चेष्टा) देखकर इशारे ही से उसका उत्तर देने वा समाधान

१ जल। २ बाण, तालाब। ३ लोटा (बर्तन), ज़मीन में लेटना। ४ शूर, सूर्य, शूल की पीड़ा।

कर देने के वर्णन में यह अलंकर होता है। इस अलंकार के लिये यह जरूरी है कि इशारा वा कोई कृत्य दोनों ओर से होना चाहिए। आगे जो 'पिहित' अलंकार है, उसमें और इसमें यह भेद है कि इसमें एक कोई तात्पर्य सूचक क्रिया करेगा, तब दूसरा उसके उत्तर में कोई साभिप्राय चेष्टा करेगा और पिहित में एक के आकार से (बिना किसी क्रिया के) उसका छिपा हुआ वृत्तान्त समझकर दूसरा कोई ऐसी क्रिया करेगा जिससे प्रगट हो जाय कि वह उसका छिपाया हुआ वृत्तान्त जान गया। यथा:—

१—चौपाई

सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई॥

यहाँ सूपनखा का विकट रूप देखकर सीता जी ने भय, सूचक कोई चेष्टा की, तब रामजी ने सीता का समाधान करने के लिए इशारे से लक्ष्मण जी से सूपनखा के नाक-कान काट लेने का इशारा किया।

२—चौपाई

विनय प्रेम बस भई भवानी[1]। खसी[2] माल मूरति मुसकानी॥

यहाँ विनय से भवानीजी सीताजी के मन का अभिप्राय समझ गईं और मुसकाकर अपना तात्पर्य भी जता दिया।

३—दो०—गौतम-तिय-गति[3] सुरति करि[4], नहिं परसति पद पानि।
मन बिहँसे रघुबंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि॥

४—सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे-अटपटे।
बिहँसे करुना-ऐन[5], चितै जानकी लषन-तन[6]।

१ पार्वती। २ खिसकी। ३ दशा। ४ स्मरण कर (पत्थर से स्त्री हो जाना)। ५ घर। ६ ओर।

(६२) पिहित

दो०-जहाँ छिपे पर-बृत्त को, समुझि करै कछु काज।
जाते प्रगटै जानिबो, सो पीहित कबिराज॥

विवरण—'पिहित' शब्द का अर्थ है 'आच्छादित'। जहाँ अपना हाल छिपानेवाले व्यक्ति के प्रति कोई ऐसी क्रिया की जाय जिससे जान पड़े कि उसका वह हाल क्रिया करने वाले को ज्ञात हो गया, वहाँ वह अलंकार होता है जैसे सतीजी ने सीता का रूप धरकर रामजी को धोखा देना चाहा वहाँ तुलसीदासजी कहते हैं :—

१—चौपाई—सती कपट जाना सुर स्वामी।
जोरि पानि[1] प्रभु कीन्ह प्रनामू।
पिता समेत लीन्ह निज नामू।

२—दो०—गैरमिसिल[2] ठाढ़ो सिवा अन्तरयामी नाम।
प्रगट करी रिस[3] साह[4] सों, सरजा[5] करि न सलाम॥

३—दो०—'आनि मिलो अरि' यों गह्यो, चखन[6] चकत्ता भाव।
साहि-तनय सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव॥

४—सवैया

जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ[7] बयारि[8] करौं अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े।
'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्रम जानिकै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह[10] को नेह लख्यो पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े[9]।

वनगमन समय राह में चलने से थक कर सीताजी ने लक्ष्मणजी को पानी लेने भेजा है। तदनंतर अपनी थकावट

---

१ हाथ। २ अयोग्य स्थान में। ३ क्रोध। ४ बादशाह। ५ सरजाह, शिवाजी। ६ नेत्रों में। ७ पसीना। ८ हवा। ९ तपी भूमि से झुलसे हुए। १० पति।

छिपाते हुए लक्ष्मण के आने तक महाराज से परखने का अनुरोध करती हैं। रामजी ने उनका तात्पर्य समझ लिया और वे एक वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ी देर तक अपने पैरों से काँटे निकालते रहे। (चौथा चरण छंद पूर्ति के लिए लिख दिया है, यहाँ पिहित अलंकार की पूर्ति केवल तीन ही चरणों में हो गई है)।

(९३) व्याजोक्ति

व्याज=बहाना, उक्ति=कथन=बहाने की बात।

दो०—कछु मिस करि कछु और बिधि, कहै दुरै के रूप।
सबै सुकबि व्याजोक्ति तेहि, भूषन कहैं अनूप॥

विवरण—किसी खुलती हुई बात वा वृत्तान्त को छिपाने की इच्छा से कोई बहाने की बात कहना। छेकापह्नुति में निषेधपूर्वक छिपाना होता है, इसमें 'वचन' से काम लिया जाता है।

तुलसीदास कृत रामायण में राजा भानुप्रताप और कपट मुनि के प्रसंग में राजा अपने को छिपाने के लिए कहता है—

१—चौपाई

भूप प्रताप भानु अवनीसा[1]। तासु सचिव[2] मैं सुनहु मुनीसा॥

पुष्पवाटिका में जब सीताजी रामछबि देखकर मोहित हुईं और आँख मूँदकर रामजी के ध्यान में मग्न हुईं तब एक चतुर सखी ने अन्य सखियों से सीताजी की महावस्था छिपाने के लिए यह कहा है—

२—चौपाई

बहुरि गौरि[3] कर ध्यान करेहू। भूप-किसोरि देखि किन लेहू॥

१ राजा। २ मंत्री। ३ पार्वती।

३—दो०—सिवा-बैर औरँग-बदन, लगी रहै नित आहि[१] ॥
कबि 'भूषन' बूझे सदा कहै, देत दुख साहि ॥
साहि=(शाही) राज्य ।

४—दो०—कारे बरन[२] डरावने, कब आवत यहि गेह ।
कइ वा[३] लख्यो सखी लखे, लगै थरहरी[४] देह ॥

५—सवैया

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लये हैं ।
'भूषन' ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस-बिदेस गये हैं ॥
लोग कहैं इमि 'दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठये[५] हैं' ।
देत रिसाय कै उत्तर यों—'हमहीं दुनिया ते उदास भये हैं' ॥

(६४) गूढ़ोक्ति

दो०—औरै प्रति उद्देश्य करि, कहै और सों बैन ।
ताहि कहत गूढ़ोक्ति कबि, जिनकी मति अति पैन ॥

विवरण—किसी दूसरे को कोई विशेष सूचना देने के अर्थ किसी अन्य-प्रति कोई बात कहना जिससे वह सुन ले और समझ ले । जैसे—

१—चौ०—पुनि आउब यहि बेरियाँ[६] काली[७]—(रामायण)

२—कवित्त—सुनिये विटप हम पुहुप[८] तिहारे अहैं,
राखिहो हमैं तो सोभा रावरी बढ़ावैंगे ।
तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछु,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस पावैंगे ॥
सुरन चढ़ैंगे नर-सिरन चढ़ैंगे पर सुकबि,
'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे ।

१ आह, हाय, शोक । २ रंग । ३ बार । ४ कपन । ५ ऐसी हालत कर दी है । ६ इसी समय । ७ कल । ८ पुष्प ।

देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे,
काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे ॥

३—दो०—वृष[1] छाँड़ो पर-खेत[2] को, आवत यहि रखवार ।

४—दो०—साँझ सखी मैं जाइहौं, पूजन देव महेस ।

५—दो०—रे हरिना[3] अब भागु द्रुत[4] वारी[5] करु न बिहार ।
या वारी को देखियत, आवत राखनहार ॥

सूचना—प्रस्तुतांकुर और इसमें यह भेद है कि इसमें कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य सुननेवाले से होता है, जिससे बात कही जाती है उससे नहीं। प्रस्तुतांकुर में कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य उससे होता है जिसके प्रति बात कही जाय, सुननेवाला भी उससे लाभ उठावे तो अच्छा ही है नहीं तो कोई आग्रह नहीं। प्रस्तुतांकुर मुख्यतः उपालंभ वर्णन के लिए है, और यह अलंकार सूचनार्थ है।

(६५) विवृतोक्ति

दो०—छिप्यों अर्थ जो स्लेष सों प्रगट करै कबिताइ ।
विवृतोक्ति तासों कहैं, सकल सुमति कबिराइ ॥

विवरण—शिलष्ट शब्दों द्वारा कहे हुए गुप्त अर्थ को कवि स्वयं खोल दे उस कथन को विवृतोक्ति कहते हैं—(विवृत शब्द का अर्थ खोला हुआ वा उद्घाटित है)।

१—दो०—तजौ निकुंजहिं इत कढ़त, जब तब स्याम भुजंग[6] ।
यों कहि सखि सिख दै सबनि, रखी चतुर तिय संग ॥

२—दो०—जो गोरस[7] चाहत लियो, तो आवहु मम धाम ।
यों कहि याचक सो हरिहिं, किय सूचित निज काम ॥

३—दो०—वृष[8] भागो पर-खेत तें, कहत जताये सैन ।

१ बैल, नायक । २ दूसरे का खेत, नायिका । ३ हरिण, श्रीकृष्ण । ४ शीघ्र । ५ वाटिका, नायिका । ६ सर्प, उपपति । ७ दूध, इंद्रियों का आनंद । ८ बैल, नायक ।

सूचना—किसी किसी का मत है कि विवृत्तोक्ति गूढ़ोक्ति में और गूढ़ोक्ति सूक्ष्म में अंतर्भूत है।

(९६) युक्ति

दो०—ठगै क्रिया करि आन को, मरम छिपावन हेत।
युक्ति बतावत ताहि को, सिगरे सुमति निकेत॥

विवरण—पूर्व के तीन अलंकारों में "वचन चातुरी से" कुछ छिपाने की बात कही गई है। इस अलंकार में कोई मर्म की बात व घटना किसी "क्रिया द्वारा" छिपाने की मुख्यता है इसलिये यह अलंकार उससे भिन्न है।

१—दो०—लिखत रही पिय-चित्र तहँ, आवत लखि सखि आन[1]।
चतुर तिया तेहि कर[2] लिखे, फूलन के धनु-बान॥

सूचना—न कहने योग्य बात को किसी चेष्टा द्वारा कर देने में भी यहीं अलंकार मानना पड़ता है। जैसे एक सज्जन के पास एक गूँगा नौकर था। उस सज्जन ने उससे कहा कि एक पैसा का मुरदासंख (मुर्दासंख) ला दे। वह नौकर पैसा लेकर पँसारी के पास गया और पँसारी के सामने पहले मुर्दा सा होकर लेट रहा, फिर उठकर शंख बजाने की सी मुद्रा दिखलाकर पैसा उसके सामने रख दिया। पँसारी था चतुर, उसने उसकी चेष्टा से बात समझ ली और एक पैसे का मुर्दासंख देकर उसे बिदा किया।

२—दो०—परो मृतक के रूप पुनि, संखाकृत किय सोर।
दियो सु मुरदासंख तेहि, बनिया बुद्धि अथोर॥

तुलसीकृत रामायण में बन में जब ग्राम-स्त्रियों ने सीता जी से उनके साथ राम-लक्ष्मण का संबंध पूछा है तब लक्ष्मण जी के लिए सीता ने कह दिया कि—

१ अन्य। २ हाथ।

चौपाई

सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन-बिधु[२] अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥

पर राम जी का संबंध बतलाते हुए सीताजी ने कुछ चेष्टाओं से ही काम लिया है जिसे गोस्वामी जी ने यों कहा है—

३—चौपाई

खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि॥

यहाँ भी युक्ति अलंकार माना जायगा। इसलिये ऊपर लिखी हुई परिभाषा (यद्यपि प्राचीन है पर) हमारी सम्मति में ठीक नहीं जँचती। हमारे समत्यनुसार यह परिभाषा यों होनी चाहिए—

दो०—मर्म छिपावन हेत वा, मर्म जनावन हेत।
करै क्रिया कछु 'युक्ति' तेहि, भाषत सुकबि सचेत॥

'सूक्ष्म' और 'पिहित' अलंकारों से इसमें प्रत्यक्ष विभिन्नता है, जो परिभाषा पढ़नेमात्र से प्रगट हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बरवा रामायण' में इस युक्ति अलंकार का एक और भी बहुत अच्छा उदाहरण लिखा है।

४—बरवै—वेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास॥

वेद=श्रुति=कान। अकास=नाक, नासा।

तात्पर्य यह कि रामजी ने युक्ति से लक्ष्मणजी पर अपना मर्म प्रगट कर दिया कि इसके कान और नाक काट लो।

यदि कोई कहे कि इसमें 'सूक्ष्म' अलंकार है तो ठीक नहीं क्योंकि सूक्ष्म में दोनों ओर से केवल इशारे से ही बात होनी चाहिये। इसमें इशारे से रामजी की आज्ञा है, जिसका

१ सुंदर। २ मुखचंद्र।

पालन लक्ष्मणजी ने कृत्य द्वारा किया है। इस हेतु यहाँ युक्ति अलंकार ही मानना चाहिए।

युक्ति का अर्थ है 'हिकमत', 'चतुराई'। इसलिए हिकमत से अपना कर्म छिपाना वा अपना तात्पर्य प्रगट करना दोनों दशाओं में यह अलंकार हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि मर्म छिपाने ही में हिकमत से काम लिया जाय, अन्यथा नहीं। हाँ हम यह बात मानने के लिए तैयार हैं कि मर्म छिपाने में अधिक बारीक हिकमत की ज़रूरत होती है।

(१७) लोकोक्ति

दो०—लोकोक्ति जहँ लोक की, कहनावत ठहराउ।

१—दो०—राजा करै सो न्याउ है, पासा परै सो दाउ।

२—सवैया

फिरि रैहै न रैहै यहो समयौ[1] बहती नदी पायँ पखार[2] लै री।

३—सवैया

भो बिधना[3] प्रतिकूल जबै तब ऊँट चढ़े पर कूकर काटत।

४—चौपाई

वृथा मरहु जनि गाल बजाई[4]। मनमोदकनि[5] कि भूख बुझाई॥

५—चौपाई

देब कहा हम तुमहिं गोसाईं। ईंधन-पात किरात-मिताई[6]॥

६—चौपाई

कर्म-प्रधान बिस्व कर राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा[7]॥

सूचना—अँगरेज़ी में इसे ईडियम (Idiom) कह सकते हैं। फ़ारसी और उर्दू में इस अलंकार को "इरसालुल मसल" कहते हैं स्मरण रखना

१ अवसर। २ धो ले। ३ ब्रह्मा। ४ डींग हाँककर। ५ लड्डू। ६ मित्रता। ७ खाया, पाया।

चाहिए कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा। प्रसंग बनाकर अंत में लोकोक्ति पर घटित करने से अलंकारता आवेगी।

हिंदी-साहित्य में 'ठाकुर' (बुंदेलखंडी) कवि की कविता में लोकोक्तियों की योजना सराहनीय मानी जाती है।

(६८) छेकोक्ति

दो०--जहँ परार्थ की कल्पना, लोकउक्ति में होय।
छेकोकति तासों कहैं, कबिद कोबिद सब कोय॥

विवरण—जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग साभिप्राय हो अर्थात् पहले कोई बात कह के उपमान-वाक्य की भाँति लोकोक्ति कही जाय, वहाँ छेकोक्ति होगी।

१—दो०—जे सोहात सिवराज को, ते कबित्त रसमूल।
जे परमेस्वर पैं चढ़ैं, देई आछे फूल॥

२—सवैया

दुरावत हौ सहवासिनी[1] सों 'रघुनाथ' वृथा बतियान के जोर।
सुनौ जग में उपखान[2] प्रसिद्ध है चोरन की गति जानत चोर॥

३—सवैया

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवैतो ह्याँ ते सिधावै सोऊ बिन कप्पर[3]।
दोनों मुहीम[4] को भार बहादुर छागो[5] सहै क्यों गयंद को झप्पर[6]॥
सासताँखा सँग वे हठि हारे जे साहेब सातएँ ठाँ के भुवप्पर[7]।
ये अब सूबहु आवैं सिवा पर कालिह के जागी कलींदे[8] को खप्पर॥

४—सवैया

छिति[9] नीर कृसानु[10] समीर अकास ससी रबिहू तन रूप धरै।
अरु जागत सोवतहू 'मतिराम' सो आपनी जोति प्रकास करै॥

१ साथी। २ कथा। ३ कपड़ा। ४ चढ़ाई। ५ बकरा। ६ झापड़, चोट। ७ स्थान पर, सातवें आसमान पर। ८ तरबूज़। ९ पृथ्वी। १० अग्नि

जग ईस अनादि अनंत अपार वही सब ठौरन में गिहरै ।
सिगरे तन मोहन मोय रहे, तिन ओट पहार न देखि परै ।

५—चौपाई

सत्य सराहि कह्यो बर देना । जानेहु लेइहि माँग चबेना[1] ॥

(६६) वक्रोक्ति

दो०—जहाँ स्लेष सों चतुर नर, अर्थ लगावै और ।
ताहि कहत बक्रोक्ति हैं, सिगरे कबि सिरमौर ॥

विवरण—वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है—(१) शब्दमूला, (२) अर्थमूला । शब्दमूला वक्रोक्ति की व्याख्या शब्दालंकार में देखो । यहाँ केवल अर्थमूला वक्रोक्ति का वर्णन है ।

जहाँ श्लेष से अर्थ का उलट फेर हो जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होगा । जैसे—

१—सवैया

भिक्षुक गो कित का गिरिजे ? सुतो माँगन को बलि द्वार गयो री ।
नाच नच्यो कित हो भवभाम[2], कलिंदसुता-तट नीके ठयो री ॥
भाजि गयो वृषपाल[3] सु जानत ? गोसन संग सदा सुछयो री ।
सागर-सैल-सुतान के आज परस्पर यों परिहास भयो री ।

यहाँ भिक्षुक, नाच नच्यो और वृषपाल शब्द श्लिष्ट हैं । लक्ष्मीजी इन्हीं शब्दों से शिव का इंगित करती हैं और पार्वती जी इन्हीं शब्दों का अर्थ फेर कर विष्णु पर आरोपित कर देती हैं । इससे वक्रोक्ति है । और यह अर्थ-वक्रोक्ति इसलिए है कि यदि हम 'भिक्षुक' के स्थान पर 'मंगन' 'नाच नच्यो' के स्थान पर 'नृत्य किया' और 'वृषपाल' के स्थान पर 'गोपाल वा पशु-

१ दाना । २ महादेव की पत्नी, पार्वती । ३ महादेव ।

पाल' शब्द रख दें तो भी अर्थ और युक्ति ज्यों की त्यों रहेगी। शब्दालंकारवाली उक्तियों के श्लिष्ट शब्दों की इस प्रकार नहीं बदल सकते। इसीसे वे शब्दालंकार के उदाहरण हैं, और यह अर्थालंकार का उदाहरण है।

काकु से जो वक्रोक्ति होती है वह शुद्ध शब्दालंकार है, क्योंकि वहाँ विलक्षण प्रकार की कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर-फेर होता है, और कंठध्वनि कान से सुनने का विषय है।

(१००) स्वभावोक्ति

दो०—जाको जैसो रूप गुन, बर्नत ताही साज।
सुभावोक्ति भूषन तहाँ, कहैं सबै कबिराज॥

विवरण—जाति वा अवस्था के अनुसार जिसका जिस समय जैसा प्राकृतिक कृत्य हो वैसा ही कहना स्वभावोक्ति अलंकार है इसके दो प्रकार हैं; (१) सहज, (२) प्रतिज्ञावद्ध।

(१) सहज

१—दो०—धूरि-धुरेटे[1] धरनि मैं, धरत लटपटे पाय।
लाल अटपटे आखरन, भाषत ससि हरषाय॥

२—चौपाई

धूसर धूरि भरे[2] तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

३—दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय।
भागि चलत किलकात मुख, दधि ओदन[3] लपटाय॥

(कृष्णबानिक)—

४—दो०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक[4] मो उर बसौ, सदा बिहारीलाल॥

१ धूल लपेटे। २ मटमैला। ३ भात। ४ वेश।

(तुरंग-स्वभाव)—

५—सार

जित रुख[1] पावै तित पहुँचावै छन आवै जन जावै।
जमिजमि थमिथमि थिरकि भूमि पर गति नहिं तेहि दरसावै।
फाँदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झापैं।
भरमत-कुँवर को तुरँग रँगीलो बरनि जाय कहु का पै।

(कुल-स्वभाव)

६—चौपाई

कहौं सुभाव न कुलहिं प्रसंसी। कालहुँ डरहिं न रन रघुबंसी।

७—चौपाई

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई।

तात्पर्य यह कि जिस समय जिसका जैसा रूप गुण हो उस समय वैसा ही कहना।

सूचना—किसी का कोई स्वाभाविक गुण साधारणतः प्रगट नहीं होता वैसे ही किसी मनोविकार वा उत्तेजनाके समय प्रतिज्ञा रूप से प्रगट होता है। उसे प्रतिज्ञाबद्ध स्वभाव कहते हैं। ऐसे स्वभाव का वर्णन भी स्वभावोक्ति ही कहा जाता है। जैसे—

(२) प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति

१—चौपाई

सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। यहि तन सतिहिं भेंट अब नाहीं॥

२—दो०—तोरौं छत्रकदंड[2] जिमि, तुव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु-पद-सपथ, पुनि न घरौं धनु हाथ॥

३—चौपाई

जो सत संकर करैं सहाई। तदपि हतौं रन राम दोहाई॥

१ मालिक की इच्छा। २ गोबर छत्ता।

सूचना—ऐसी स्वभावोक्ति शपथ वा असम्भव कथन द्वारा भी प्रगट की जाती है। यथा—

४—कवित्त—चारि टारि डारौं कुंभकर्नहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यों बल अनंत हौं।
कहैं 'पद्माकर' त्रिकूट[1] हू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन[2] को अंत हौं॥
अच्छहिं निरच्छ[3] कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तो से तिच्छ तुच्छन[4] कों कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावन को तौ मैं हनुमंत हौं॥

—कवित्त—लोक तिहुँ जारौं सातो सागर सुखाय डारौं,
गिरिन ढहाय डारौं भूमि उलटाऊँ मैं।
रंच में बिदारि डारौं दसो दिगपालन को,
खगन[5] समेत ससि सूरहिं गिराऊँ मैं॥
नभ से पताल लैके कितहूँ कहूँ जो नेक,
'रसिक बिहारी' प्रानप्यारी सुधिपाऊँ, मैं।
जानकी न लाऊँ तौ पै छत्री न कहाऊँ,
राम नाम पलटाऊँ धनु-बान न उठाऊँ मैं॥

६—चौपाई

कह हनुमंत जोरि जुग हाथा। लखन सोच जनि कीजै नाथा॥
कहौ चंद्रमहिं पट-इव गारी[6]। अबही देहुँ अमी मुख डारी॥
कहौ बिबुध-बैदहिं[7] गहि आनौं। मीचु[8] मारि सब के दुखभानौं[9]॥
कहौ फोरि नभ रबिहिं निकारौं। रिपु तेहिं द्वार राहु बैठारौं॥

---

१ लंका के तीन शिखर (लंका, सुवेला, निकुंभिला)। २ राक्षस। ३ रक्षाहीन। ४ अत्यंत साधारण। ५ पक्षी। ६ निचोड़कर। ७ अश्विनी कुमार। ८ मृत्यु। ९ नष्ट करूँ।

कहौ ब्रह्म हरि हर कहँ आनी। अमर अमर बुलवाऊँ बानी॥
कहौ पाताल जाय हित नागा। आनौं अमी-कुंड यहि जागा[1]॥
कहौ देहुँ निज देहै त्यागी। अबहीं उठौं लखन घट[2] जागी॥
दो०—जो कछु तुव मन में रुचै, सो मोहिं आयसु होय।
नाथ-सपथ छिन में करौं, प्रभु प्रताप बल सोय॥
—(विश्राम-सागर)

(१०१) भाविक

दो०—जहाँ भूत भावी अरथ, बरनत कबि परतच्छ।
अलंकार भाविक कहत, ताको सब मति स्वच्छ॥

(१) भूतार्थ प्रत्यक्ष वर्णन

१—दो०--जाकी छबि को देखि कै, होत मनहिं बिसराम।
चित्रकूट में जानिये, अबहूँ राजत राम॥
२—कवित्त—अजौं भूतनाथ[3] मुंडमाल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।
'भूषन' भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुंजरन[4] पर कठिन कराह[5] है॥
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हों कतलाम[6] दिल्ली-दल को सिपाह[7] है।
नदी रनमंडल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रबिमंडल रुहेलन की राह है॥

३—सवैया

आवत हौं जमुना तट को नहिं जानि परै बिछुरे गिरधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत कुंजन तें कढ़ि कुंजबिहारी।

१ जगह। २ शरीर में। ३ महादेव। ४ हाथी। ५ पीड़ा की आह।
६ संहार। ७ सेना।

४—दो०—जहाँ जहाँ ठाढ़ो लखो, स्याम सुभग सिरमौर ।
उनहूँ बिन छिन गहि रहत, दृगन अजौं वह ठौर ॥

५—दो०—दलन[१] दबाई ही जु तुम, हनत दसानन-गोत ।
लखहु राम वह आज लौं, धक धक धरती होत ॥

सूचना—इसे अँगरेज़ी में ऐतिहासिक वर्तमान (Historic Present) कहते हैं। अजौं, अजहुँ, अब भी इसके वाचक जान पड़ते हैं।

(२) भावी अर्थ प्रत्यक्ष वर्णन

१—दो०—जनि चलाइये चलन की, चरचा स्याम सुजान ।
मैं देखति हौं वाहि यह, बात सुनत बिन प्राय ॥

२—दो०—गहन बिपिन गिरि गैल के, जे गढ़ दृढ़ भरपूर ।
राम रावरो दल चलत, देखत हौं चकचूर ॥

३—दो०—कही जाय क्यौं अलि भली, छबि प्रति-अंग अनूप ।
भावी भूषन भारहू, लसत अबहिं तव रूप ॥

(१०२) उदात्त

दो०—संपति की अत्युक्ति को, कोबिद कहत 'उदात्त'।
जहँ उपलक्षन बड़न को, ताहू की यह बात ॥

(१) संपति की अत्युक्ति

१—चौपाई

जेहि तिरहुति[२] तेहि समै निहारी। तेहि लघु लगे भुवन दस चारी ॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा ॥

२—दो०—जगत-जनक[३] बरनै कहा, जनक-नगर को ठाट ।
सहल[४] महल हीरन बने, हाट बाट करहाट[५] ॥

---

१ सेना। २ जनक का राज्य। ३ संसार का पिता, ब्रह्मा। ४ साधारण
५ कमलदंड ।

३—दो०—सुबरनपुर[1] मनिमय महल, रही महा छबि फैलि ।
चौकी चिंतामनिन की, बैठी कंचन-बेलि ॥

४—चौहाई

नंद द्वार जे माँगन आये । बहुरो फिर याचक न कहाये ॥
लक्ष्मी सी जहँ मालिन बोलै । बंदनमाला बाँधत डोलै ॥
द्वारबुहारत फिरत अष्ठसिधि । कौरन[2] सथिया[3] चीतन[4] नवनिधि॥

(२) महाजनों की उपलक्षणता

संसर्ग जन्य बड़ाई अर्थात् बड़ों के संबंध से बड़ाई की प्राप्ति ।

१—दो०—भूषित संभु स्वयंभु[5] सिर, जिनके पद की धूरि ।
हठ करि पाँव झँवावतीं[6], तिन सों तिय मगरूर[7] ॥

२—दो०—यह अरण्य[8] पह है, जहाँ मानि पिता के बैन ।
बसत राम एकहि कियो, हनन[9] निसाचर सैन ॥

३—दो०—खरदूषन त्रिसिरा-सिरन, तजि दूषन जिहि ठौर ।
रघुकुल-भूषन जे कर्‍यो, हर-भूषन[10] निज जोर ॥

४—दो०—या पूना में मति टिको, दीन्हीं सिवा सजाय ।

(१०३) अत्युक्ति

दो०—योग्य व्यक्ति को योग्यता, अति करि बरनी जाय ।
भूषन सो अत्युक्ति है, समुझैं जे मतिराय ॥
सुंदरता अरु सूरता, अरु उदारता भाव ।
या भूषन में कहत ही, उर उपजै अति चाव ॥

---

१ सोने का नगर । २ फाटक के दाहेने-बाएँ का स्थान । ३ स्वस्तिक । ४ चित्रित करती हैं । ५ ब्रह्मा । ६ पैर को झाँवा (एक प्रकार की ईंट) से रगड़वाना । ७ मानिनी । ८ वन । ९ मारना । १० महादेव का गहना (मुंडमाल) ।

१—(सुंदरता)

१—दो०—भूषन-सार सँभारिहै क्यों, वह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर[1] परत, सोभा-ही के भार॥

२—दो०—सुमनमयी[2] महि में करै, जब राधिका विहार।
तब सखियाँ सँग ही फिरैं, हाथ लिये कचभार[3]॥

२—(शूरता)

१—चौ०—जासु त्रास[4] डर कहँ डर होई।

२—कवित्त—जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन[5] दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधर[6] धमकै नगारा धूरि-
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है॥
'भूषन भनत भुवगाल कोल[7] हहरत,
कहरत[8] दिग्गज मगज[9] फाटियतु है।
कीच[10] से कचरि जात सेष के असेष फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है॥

३—हरिगीतिका

कह 'दास तुलसी' जबहि प्रभु सर-चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ[11] अहि महि सिंधु भूधर[12] डगमगे॥

१—दो०—इते उच्च सैलन[13] चढ़े, तुव डर अरि सकलत्र[14]।
तोरत कंपित करन सों, मुकता समुझि नछत्र॥

३—(उदारता)

१—दो०—बारिद लौं बसु[15] बरसि के, कबिकुल किये कुबेर।
निकट जो होतो मेरु तो, देत न होती देर॥

---

१ पृथ्वी। २ पुष्पयुक्त। बालों का बोझ। ४ आतंक, भय। ५ शत्रु। ६ बादल। ७ शूकर। ८ कराहते हैं। ९ मस्तक। १० कीचड़। ११ कच्छप। १२ पर्वत। १३ पर्वत। १४ स्त्री-पुत्र सहित। १५ धन।

अ० मं०—१८

३—दो०—जाचक तेरे दान ते, भये कल्पतरु भूप।

३—सवैया

मैं हौं अनाथ अनाथन में तजि तेरोइ नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे के मंगन ते कल्पद्रुम आजु है माँगिबे लायक॥

४—कवित्त—संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै,
ताहि तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
'कहै पदमाकर' सु हेम[१] हय[२] हाथिन के,
हलके[३] हजारन के बितर[४] बिचारै ना॥
एते गज बकस[५] महीप रघुनाथराव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू दइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन[६] कौ गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

५—दो०—गनत न कछु पारस पदुम[७], चिंतामनि का ताहि।
निदरत मेरु कुबेर को, तुव जाचक जग माहिं॥

सूचना—केवल सुंदरता, शूरता और उदारता ही नहीं वरन् और वस्तुओं में भी अत्युक्ति हो सकता है। यथा—

४—(प्रेमात्युक्ति)

१—दो०—कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥

५—(विरहात्युक्ति)

२—दो०—गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोस[८] अपार।
डगर-डगर नै[१०] ह्वै रही, बगर-बगर[११] के बार[१२]॥

इसी प्रकार और भी समझ लो। अत्युक्ति, सब वस्तुओं की हो सकती है, परंतु सुंदरता, शूरता और उदारता की

---

१ सोना। २ घोड़ा। ३ समूह। ४ खंडित करना। ५ हाथियों के झुंड का दानी। ६ गणेश। ७ देखभाल कर रही है। ८ पद्म (एक-निधि)। ९ अशोष्य। १० नदी। ११ घर-घर। १२ दरवाज़ा।

अत्युक्ति अत्यंत आनंददायक होता है, इसीसे परिभाषा में केवल इन्हीं के नाम गिनाये गये हैं।

सूचना—इस अलंकार को अंगरेजी में 'एग्जैजरेशन' (Exaggeration) और फ़ारसी तथा उर्दू में 'मुबालिग़ा' कहते हैं।

(१०४) निरुक्ति

दो०—नामन को निज बुद्धिबल कहिये अर्थ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं भूषन जे कबिराय॥

विवरण—जहाँ किसी नाम का कोई कल्पित अर्थ किया जाता है उसे निरुक्ति कहते हैं। जैसे:—

१—दो०—कविगन को दारिद-द्विरद[१], यारी दल्यो अमान[२]।
याते श्रीसिवराज को, सरजा कहत जहान।

२—दो०—हर्‍यो रूप इन मदन को, यातें भो सिव[३] नाम।
लियो बिरह सरजा[४] सबल, अरि-गज दलि संग्राम॥

३—दो०—छीनी छबि मृग मीन की, कहौं कहाँ की रीति।
नामहिं में नहिं नीति, का करैं नयन[५] ये नीति॥

४—दो०—बिरही नर-नारीन को यह रितु चाय चबाय।
'दास' कहै याको सरद[६] याही अर्थ सुभाय।

५—दो०—रखत न हित कहुँ काहु सो, बन-बन करत बिहार।
यहै समुझि बिधि ने कर्‍यो, मोहन नाम तुम्हार।

६—दो०—तनु बिचित्र कायर[७] बचन, अहि-अहार मन घोर।
'तुलसी' हरि भये पच्छधर[८], ताते कह सब मोर[९]॥

---

१ दारिद्रय रूपी हाथी। २ अपरिमाण। ३ शिवाजी की उपाधि सरजाह, सिंह (अ० शरजः)। ४ शिवाजी, महादेव। ५ नेत्र, जिनमें नीति न हो (नय + न)। ६ कष्टदायक, (सर = बाण + द)। ७ दीनतायुक्त। ८ पंख धारण करनेवाले, पक्ष लेनेवाले। ९ मयूर, मेरा।

(१०५) प्रतिषेध

दो०—जहाँ जु वस्तु प्रसिद्ध को, प्रगटहिं करैं निषेध।
कबि कोबिद तासों कहत, अलंकार प्रतिषेध ॥

१—दो०—जीत्यो जाहि बिरोध करि, सो बिरोध मैं नाहिं।
मैं हौं रावन राम तुम, का समुझ्यौ मन माहिं ॥

२—सवैया

बेगि चलो 'रसखान' बलाय ल्यौं क्यौं अभिमान तें भौंह मरोरत।
प्यारे पुरंदर[1] हाय न प्यारी अबै पल आधिक में ब्रज बोरत ॥

३—दो०—छुटी न गाँठि जु राम सों, तियन कह्यो तेहि ठाहिं।
सिय-कंकन को छोरिबो, धनुष तोरिबो नाहिं ॥

४—चौपाई

निपटहिं[2] द्विज करि जानेसि मोहीं। मैं जस बिप्र सुनावहुँ तोहीं ॥

५—चौपाई

जीतेहु जे भट संगर[3] माहीं। सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं ॥

६—दो०—अंगद कह दसबदन सों, यह न चोरिबो नारि।
नर बानर सों राम सँग, प्रान हरन है रारि[4] ॥

सूचना—शुद्धापह्नुति, पर्य्यस्तापह्नुति और प्रतिषेध में भेद यह है कि (१) शुद्धापह्नुति में सत्य वस्तु को छिपाकर उसके स्थान में उसी के समान किसी दूसरी वस्तु की कल्पना की जाती है। (२) पर्य्यस्तापह्नुति में एक वस्तु का गुण किसी दूसरी वस्तु में आरोपित किया जाता है। (३) प्रतिषेध में प्रसिद्ध वस्तु का निषेध होकर मनमानी कल्पना की जाती है।

(१०६) विधि

दो०—जहाँ सिद्धऊ अर्थ को, करिये बहुरि बिधान।
अलंकार बिधि ताहि सों, कहत सबै मतिमान ॥

---

१ इंद्र। २ अत्यंत, सिर्फ। ३ युद्ध। ४ युद्ध।

१—चौपाई

बिस्वभरन पोषन करु जोई। ताकर नाम भरत अस होई।

२—चौपाई

जाके सुमिरन ते रिपु-नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

३—चौ०—सेवक सो जो करै सेवकाई।

४—सवैया

दीनदयाल हरो हमरो दुख तौ तोहि दीनदयाल सराहौं।

५—दो०—कोकिल है कोकिल तबै, रितु में कहिहै टेर।

६—दो०—मुरली मुरली होति है, मोहन के मुख लागि।

इन उदाहरणों में प्रत्येक नाम स्वयं सिद्ध है, परंतु कवि ने पुनः उसका विधान किया है।

सूचना—'निरुक्ति' में मनमाना अर्थ कल्पित किया जाता है। 'विधि' में सिद्धार्थ ही पुनः कहा जाता है।

(१०७) प्रमाण

प्रतक्ष कहुँ[१] अनुमान[२] कहुँ, कहुँ उपमान[३] दिखाय।
कहूँ बड़न की बात[४] लै, आत्मतुष्टि[५] कहुँ पाय॥
अनुपलब्धि[६] संभव[७] कहूँ, कहूँ, लहि अर्थापत्ति[८]।
कबि प्रमान भूषन कहैं बात जो बरनैं सत्ति॥

विवरण—'सत्य कथन' को 'प्रमाण' कहते हैं। इसके आठ भेद हैं। यथाः—

(१) प्रत्यक्षप्रमाण

दो०—इन्द्रिय अरु मन ये जहाँ बिषय आपनो पाय।
ज्ञान करैं, प्रत्यक्ष तेहि कहैं सकल कबिराय॥

१—छप्पय—सर सर हंस न होत बाजि गजराज न थर थर।
तरु तरु सुफल न होत नारि पतिव्रता न घर घर॥

तन तन सुमति न होति मलैगिरि[१] होत न बन बन।
फन फन मनि नहिं होत मुक्तजल[२] होत न घन घन[३]॥
रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्त हरि।
'कवि नरहरि' निरख कवित्त कहि सब नर होत न एकसरि[४]॥

२—चौपाई

तात जनक तनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकास फिरति फुलवाई[५]॥

३—कवित्त—कुल को कुलीन होय उपकार लीन होय,
पंडित प्रवीन होय दोष सब खोई है।
उदित उदार होय, पूर परिवार होय,
चाबुक सवार होय बैद बुध जोई है॥
बल को निधान होय बोल को प्रमान होय,
सब गुन थान होय सील संत सोई है।
सूर होय बीर होय सुंदर शरीर होय,
लच्छिमी न होय ताहि पूछत न कोई है।

सूचना—इन उदाहरणों में कही हुई बातें सब कोई जानता है कि प्रत्यक्ष सत्य मानी जाती है।

(२) अनुमान प्रमाण

दो०—चिन्हहि लखि अनुमान बल बस्तुहिं लीजै जानि।
तहँ अनुमान प्रमान सब भूषन कहैं बखानि॥

१—दो०—नाचि अचानक ही उठे, बिन पावस[६] बन मोर।
जानति हौं नंदित करी, यहि दिसि नंदकिसोर॥

२—दो०—यह पावस तम साँझ नहिं, ह्वै दुचिती मति भूल।
कोक असोक बिलोकिये, रह्यौ कोकनद[७] फूलि॥

---

१ चंदन। २ मुक्ता उत्पन्न करनेवाला (स्वातिजल)। ३ बादल। ४ एकसे। ५ पुष्प वाटिका। ६ बर्षा। ७ लाल कमल।

३—दो०—धुवाँ देखि सब कोउ करत, आगी को अनुमान।

४—दो०—जिन लोखरी[1] मारी नहीं, कहा मारिहै सेर ?

(३) उपमान प्रमाण

दो०-उपमा के सादृस्य ते, बिन देखो उपमेय।
जानि परै, उपमान सो, अलंकार है ज्ञेय॥

१—दो०—सहस घटन में लखि परै, ज्यों एकै रजनीस[2]।
त्यौं घट घट में 'दास' हैं, प्रतिबिंबित जगदीस॥

२—दो०—सो रोहिनि जानहु सखे जो है सकट[3] समान।

(४) बड़ों की बात वा शब्द प्रमाण

दो०-जहाँ सास्त्र अरु बड़न को, बचन प्रमाण बखान।
सोई शब्द प्रमान है, भाषत सुकबि सुजान॥

१—छप्पय—मरै सूम सरदार मरे वह कट्टर टट्टू[4]।
मरै हठीली नारि मरै वह पुरुष निखट्टू।
ब्राह्मन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग[5] लगावै॥
बेनियाउ[6] राजा मरै नींद धड़ाधड़[7] सोइये।
'बैताल' कहै बिक्रम सुनो इनके मरे न रोइये॥

२—पद

देखु बिचार सार का साँचो कहा निगम निजु[8] गायो।
भजहिं न अजहुँ समुझि 'तुलसी' तेहि जेहि महेस मन लायो॥

३—सो०—तुम ज़ु हरी पर-बाल[9], ताते हम यहि हाल में।
नाथ बिदित सब काल, जो हन्नति सो हन्यते॥

४—चौपाई

बेद पुरान संत अस गावा। जो जस करै सो तस फल पावा॥

---

१ लोमड़ी। २ चंद्रमा। ३ गाड़ी। ४ घोड़ा। ५ कलंक। ६ अन्यायी। ७ निश्चिंत। ८ निश्चय। ९ दूसरे की स्त्री।

(५) आत्मतुष्टि प्रमाण

दो०—अपने अंग स्वभाव को, दृढ़ बिस्वास जहाँहि।
आतमतुष्टि प्रमान कबि, कोबिद कहैं तहाँहिं ॥

१—दो०—मोहि भरोसो रीझिहौ, उझकि[1] झाँकि इक बार।
रूप रिझावनहार वह, ये नैना रिझवार[2] ॥

२—चौपाई

मोहि अतिसय प्रतीत जिय केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी ॥

(६) अनुपलब्धि प्रमाण

दो०—जानि परै नहिं बस्तु कछु, अनुपलब्धि है सोय।

विवरण—जहाँ कोई कारण नहीं मिलता वहाँ किसी कल्पित कारण को मान लेते हैं, उसे ही अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं।

सूचना—नीचे कहे हुए छंद की घटनाओं का जब कोई मुख्य कारण समझ में आया तब कवि ने कह दिया कि "अदृष्ट बली है" ऐसे ही प्रमाण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं।

१—सवैया

बालि बिंध्यो बलिराज बँध्यो, कर सूली[3] के सूल कपाल-थली है।
काम जर्‌यो जग, काल[4] पर्‌यो बँदि सेष धर्‌यो बिप हाल[5] हली[6] है
सिंधु मथ्यो कल काली नथ्यो कहि 'केसव' इंद्र कुचाल चली है।
रामहु की हरी रावन बाम चहूँ जुग एक अदृष्ट बली है ॥

(७) संभव प्रमाण

दो०—जह संभव है बस्तु को, संभव जानो ताहि।

विवरण—जहाँ किसी बात का होना संभवित हो सकता हो, उसे संभव प्रमाण कहते हैं। इसमें यह जरूरी नहीं है कि

१ उचककर। २ मोहनेवाले। ३ महादेव। ४ यम (रावण के कैदखाने में)। ५ शराब। ६ बलराम।

वह बात होवे भी अवश्य, केवल उसकी संभावना मात्र से मतलब है। (संभावना अलंकार, देखो पृष्ठ २१२)

१—दो०—सुनी न देखी तुव सरिस, हे वृषभानुकुमारि।
जानत हौं कहुँ होयगी, बिपुला[1] धरनि बिचारि॥

२—दो०—उपजैंगे ह्वैहैं अजौं, हिंदूपति से दानि।
कहिय काल निर अवधि[2] लखि, बड़ी बसुमती जानि॥

३—कवित्त—'ठाकुर' कहत कछु कठिन न जानो याहि,
हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय॥
चारि जने चारिहू दिसा ते चारो कान गहि,
मेरु को हलाय कै उखारैं ता उखरि जाय॥

(८) अर्थापत्ति प्रमाण

दो०—जहाँ अर्थ में अर्थ को, और जोग ते थाप।
अर्थापत्ति प्रमान तहँ, कहैं सुकबि सह दाप॥

विवरण—जहाँ किसी अर्थ को किसी और ही योग से स्थापित किया जाय।

१—दो०—इतो पराक्रम करि गयो, जाको दूत निसंक।
कंत कहो दुस्तर[3] कहा, ताहि तोरिबो लंक॥

२—चौपाई

पिय तेहि ते जीतब संग्रामा। जाके दूत केर अस कामा॥

(१०८) हेतु (द्विबिध)

सूचना—इस 'हेतु' अलंकार में 'काव्यलिंग' के विरुद्ध केवल उत्पादने हेतु का ही वर्णन होता है।

(प्रथम)

दो०—कारज कारन संग ही जहँ बरनौं इक ठौर।
प्रथम हेतु तासों कहत जिनकी मति सिरमौर॥

---

१ विस्तृत। २ निस्सीम। ३ कठिन।

१—सवैया

भाग जगै 'लछिराम' दुहून में छाये तरंग सुप्रीति भली के।
रामसुरूप निहारत ही उर-मोद बढ़े मिथिलेस-लली[१] के॥

२—चौपाई

उयो अरुन[२] अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥

३—चौपाई

जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा[३]॥

४—दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद, उड़ गन ज्योति मलीन।

५—चौपाई

उयो भानु बिन श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा॥

६—दो०—आपुहिं सुनि खद्योत सम[४], रामहिं भानु-समान।
पुरुष बचन सुनि काढ़ि असि[५] बोला अति खिसियान॥

(दूसरा)

दो०—कारन कारज ये जबै लसत एकता पाय।
हेतु अलंकृत दूसरो ताहि कहैं कबिराय॥

विवरण—जहाँ कारण ही को कार्यरूप वर्णन करते हैं, वह दूसरा 'हेतु' है।

१—दो०—मेरी रिद्धि समृद्धि है, तुव दाया रघुनाथ।

२—दो०—परम पदारथ चारहू, श्रीराधा-गोबिंद।

३—दो०—कोऊ कोरिक संग्रहौं कोऊ लाख हजार।
मो संपति यदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार॥

४—दो०—मोहिं परमपद मुक्ति सब, तो पदरज घनस्याम।
तीन लोक को जीतिबो, मोहिं बसिबो ब्रजग्राम॥

---

१ जनक की पुत्री, सीता। २ सूर्य। ३ क्षुब्ध हुआ, चंचल हो गया। ४ जुगुनू। ५ तलवार।

तीसरा पटल

(उभयालंकार)

दो०—भूषन इक तें अधिक जहँ, सो उभयालंकार।
संसृष्टि रु संकर तहाँ, उभय भेद निरधार॥
तिल तंदुल के न्याय सों, है संसृष्टि बखान।
नीर-छीर के न्याय सों, संकर कहत सुजान॥

विवरण—जहाँ एक से अधिक अलंकार आ जाते हैं, ऐसे मिश्रण को उभयालंकार कहते हैं। इस मिश्रण के दो भेद हैं—

(१) संसृष्टि, (२) संकर।

(१) संसृष्टि

दो०—जुदे-जुदे भासैं सकल, अपने-अपने ठाम।
तिल तंदुल की रीति करि, सो संसृष्टि सुनाम॥

विवरण—जैसे तिल और चावल मिला देने से भी अपने अपने रंग से प्रत्यक्ष ही अलग-अलल देख पड़ते हैं, उसी प्रकार मिले हुए अलंकार यदि मिले हुए होने पर भी अपनी सिद्धि के लिये एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हों तो वह मिश्रण संसृष्टि कहलावेगा। इसके तीन भेद हो सकते हैं:—(१) शब्द+शब्द, (२) शब्द+अर्थ; (३) अर्थ+अर्थ।

(१) शब्दालंकार+अर्थालंकार

शब्दालंकार के वर्णन में 'तुरमुती तहखाने' वाला कवित्त देखिये। उसमें छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्यनुप्रास सब पृथक् पृथक् दिखाई पड़ते हैं।

(२) शब्दालंकार+अर्थालंकार

१—दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सीय रघुनंद।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानंद॥

इसमें पूर्वार्द्ध में 'म' अक्षर का अनुप्रास है। 'जनु' शब्द से उत्प्रेक्षा प्रगट है। मुनि-मंडली, सीय रघुनंदन कहके पुनः क्रम से ज्ञान-सभा, भक्ति और सच्चिदानंद क्रम से कहकर क्रमालंकार स्पष्ट किया गया है।

२—दो०—दंड यतिन कर[1] भेद जहँ, नरतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचंद्र के राज॥

यहाँ नर्तक और नृत्य में 'न' का और रामचंद्र और राज में 'र' का अनुप्रास है और कुल दोहा से परिसंख्या अलंकार सिद्ध है।

(३) अर्थालंकार+अर्थालंकार

३—दो०—ससि सो उज्ज्वल मुख लसै, खंजन हैं मनु नैन।
अधर नासिका बिंब सुक, मधुर सुधा से बैन॥

यहाँ प्रथम चरण में पूर्णोपमा, दूसरे में उत्प्रेक्षा, तीसरे में क्रम और चौथे में पुनः पूर्णोपमा, प्रत्यक्ष और अलग अलग स्पष्ट देखे जाते हैं।

४—सो०—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करो सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन॥

यहाँ प्रथम दो चरणों में लुप्तोपमा, और चौथे चरण में पर्यायोक्ति अलंकार है।

(२) संकर

दो०—पय पानी को रीति तें होयँ परस्पर लीन।
ता कहँ संकर नाम दै, भाषत सुकबि प्रबीन॥

---

१ हाथ।

विवरण—दूध पानी की तरह से मिले हुए (पृथक न होने योग्य) अलंकार हों उस मिश्रण को 'संकर' कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं (१) अगांगी भाव, (२) समप्राधान्य, (३) संदेह और (४) एक वाचकानुप्रवेश वा 'एक पद संकर'

(१) अंगांगी भाव

दो०—बीज बृक्ष के न्याय करि, इक इक को अँग होय
सो अंगांगो भाव है, कबि गुलाब मति जोय ॥

विवरण—जहाँ बीज वृक्ष के न्याय से मिले हुए अलंकार हों उसे 'अगांगी भाव संकर' कहते हैं अर्थात् जहाँ एक के बिना दूसरा सिद्ध ही न हो सके, जैसे बिना बीज के वृक्ष और बिना वृक्ष के बीज नहीं हो सकता। यथा:—

१—दो०—हलत पवन ते तरुन तर, दीखत छाँह अचूक।
ससि-हरि ने तम-गज[1] हनो, मानो ताके टूक॥

पवन से हिलते हुए वृक्षों के नीचे जो छाया देख पड़ती है वह मानो शशिसिंह के मारे हुए तमगज के टुकड़े हैं।

यहाँ 'मानो' शब्द से उत्प्रेक्षाअलंकार मुख्य है, सो अंगी है और शशिसिंह तथा तमगज 'अभेद रूपक' उसके अंग हैं।

२—दो०—तुव अरि तियगन बन भजत, लूटी सब बटमार।
अधर-बिंब-दुति गुंज गुनि, हरे न मुकुता-हार॥

तेरे शत्रुओं की स्त्रियों को बन में भागते समय लुटेरे भीलों ने लूट लिया, परंतु ओठों की द्युति से लाल हुए मोतियों को गुंजा समझ कर मोतियों के हार न लूटे।

यहाँ ओठों के संग से मोती गुंजा से हो गये यह तद्गुण अलंकार है, मोतियों के हार को गुंजा का हार समझ कर लुटेरों

---

१ अंधकार रूपी हाथी।

ने नहीं लूटा, इसमें भ्रांति अलंकार है। यहाँ तद्गुण के जोर से भ्रांति की सिद्धि है, और भ्रांति के जोर से तद्गुण की सबलता प्रगट हुई। अतः अगांगी भाव संकर है।

३—पिहित अलंकार के वर्णन में 'राम जानकी' वाला सवैया देखो। वहाँ तीन चरणों तक 'पिहित' अंग भाव है, तब चौथे चरण में 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अंगी भाव है। (पृष्ठ २४४, सं० ४)

४—चौपाई

साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमयफल[१] जासू।
जो सहि दुख पर छिद्र[२] दुरावा। वंदनीय जेहि जग जस पावा॥

इसमें श्लेषालंकार उपमा का अंग है। साधुचरित और कपास सरिस है यह उपमा है। उसके फल निरस, बिशद और गुणमय हैं। इन तीन विशेष गुणों के श्लिष्ट अर्थ साधु-चरित और कपास फल दोनों पर लगते हैं तब उपमा सिद्ध होती है। छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है।

(२) समप्राधान्य

दो०—दिन दिनपति के न्याय करि सँग प्रगटै सँग भासु।
नाम सु समप्राधान्य है कबि गुलाब कह तासु॥

विवरण—दिन और सूर्य की तरह साथ ही प्रगटैं और साथ ही लख पड़ें वह समप्राधान्य संकर हैं। यथा—

१—दो०—रघुपति कीरति कामिनी, क्यों कह 'तुलसीदासु'।
सरद प्रकास अकास छबि, चारु चिबुक तिल जासु॥

इसमें क, स और च के अनुप्रास, प्रतीप और रूपक दोहा पढ़ते ही भासित हो जाते हैं—

१ गुणों से युक्त, डोरों से युक्त। २ दूसरे का दोष, छेद।

२—पद—सेये सीता राम नहिं भजे न संकर गौरी।
जनम गँवायो वादि[1] ही परत पराई पौरी[2] ॥

इसमें स, र और प के अनुप्रास और दृष्टांत एक साथ ही भासते हैं।

(३) संदेह

एक मिटाये दूजो भासे । दूजो त्यागे प्रथम प्रकासे ॥
बोध न होय कौन को लीजै । तहँ संकर संदेह भनीजै ॥

विवरण—जहाँ पर दो वा अधिक अलंकार लख पड़ें, पर निश्चय न हो सके कि किसका ग्रहण करें वा किसका त्याग करें। एक के लिए न तो कोई साधक प्रमाण हो और न दूसरे के लिये निषेध वा वाचक वाक्य हो। ऐसे मिश्रण को 'संदेह-संकर' कहते हैं।

१—चौपाई

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन नलिन[3] भरे जलसिय के

इसमें 'लोचन नलिन' में उपमा मानें वा रूपक मानें ऐसा संदेह होता है। मनोहर पिय के मृदुवचनों से दुःख होना-भले उद्योग से बुरा फल होना विषम अलंकार है, अथवा लोचन नलिन भरे जल सिय के, इस कार्य के मिस सीताजी के दुःख रूपी कारण का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा है। न तो किसी के खंडन की कोई सामग्री इसमें है और न मंडन ही की। अतः निश्चय नहीं कह सकते कि कौन अलंकार मानना चाहिये।

२—दो०—जैसे निर्मल काँति अरु, रतन भरो गंभीर।
तैसे बिंधि या जलधि को, क्यों न किया मधुनीर[4] ॥

१ ब्यर्थ। २ दरवाजा। ३ कमल। ४ मीठा जलवाला।

यहाँ समुद्ररूप प्रस्तुत में अप्रस्तुत की प्रतीति होने से क्या यह समासोक्ति है, वा समुद्ररूप अप्रस्तुत द्वारा उसके समान गुणवाले प्रस्तुत किसी धनी पुरुष की प्रशंसा प्रतीत होने से क्या यह 'अप्रस्तुत प्रशंसा' है ऐसा संदेह होने से यह 'संदेह संकर' है।

३—दो०—नयनानँददायी लसत, यह ससि बिंब प्रकास।
अजहुँ न तम बिनस्यो कहा ? जेहि रोकी सब आस ॥

इसमें रूपकातिशयोक्ति रूपक, दीपक, तुल्ययोगिता और समासोक्ति इत्यादि कई एक अलंकारों का संदेह हो सकता है।

(४) एकवाचकानुप्रवेश

दो०—न्याय नृसिंहाकार करि एकहि पद के माहि।
युग भूषन, इकबाचकानुप्रवेस कहि ताहि ॥

विवरण—नृसिंहाकार न्याय से (एक ही देह में मनुष्य और सिंह को आकृतिवत्) जहाँ एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों हों वहाँ एक वाचकानुप्रवेश (वा संक्षेप से 'एकपद संकर' कहा जाता है। जैसे—

१—दो०—हे हरि दीन दयाल हौ, मैं माँगौं सिर नाय।
तुव पद-पंकज आसरे, मन-मधुकर लगि जाय ॥

इसमें 'पद-पंकज' में तथा 'मन-मधुकर' में शब्दालंकार अनुप्रास और अर्थालंकार रूपक का संकर है।

२—सवैया

केतकि[1] धूरि धरे सिर ऊपर गुंजत मंजु सुकुंजन में।
दान[2] झरै मधुनीर, समीर जँजीर सु आवत है छन में ॥

१ केवड़ा। २ मद।

मत्त छुटे नव पंकज थान ते दर्प अखंड करे मन में।
तोरि कै सौरभ-साँकर[1] को यह भृंग-मतंग फिरै बन में॥

यहाँ 'भृंग मतंग' इस एक ही पद में रूपक और वृत्यनुप्रास का संकर है।

३—चौपाई

सोइ जल अनल[2] अनिल[3] संघाता[4]। होय जलद जगजीवन दाता॥

यहाँ जलद, जग, जीवनदाता में अनुप्रास भी है और जीवन शब्द अर्थश्लेष होने से अर्थालंकार भी है क्योंकि जीवन का अर्थ है 'पानी' और 'प्राण'।

सूचना—थोड़ा सा नमूने के तौर पर लिख दिया गया। सब अलंकारों के सब प्रकार के 'संकरों' के उदाहरण एकत्र दिखलाना असंभव ही है।

(३) रसवत् अलंकार

यद्यपि कितने ही कवि सात प्रकार के 'रसवत्' अलंकार भी मानते हैं, पर हम उन्हें अलंकार नहीं मानते। इसीसे उन्हें हमने नहीं लिखा।

———

१ सुगंधरूपी सिकड़ी। २ आग। ३ वायु। ४ संमिश्रण।

(चौथा पटल)

दोषकोष

पाठकों को जानना चाहिये कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें गुण ही गुण हों और दोष न हों। इसी सिद्धान्त के अनुसार इन अलंकारों में भी कुछ दोष हुआ करते हैं। उन्हें भी समझ लेना चाहिए।

(१) शब्दालंकारों के दोष

शब्दालंकारों में सर्वप्रधान 'अनुप्रास' और "यमक" हैं, इसलिए इनके ही दोष खूब समझ लेना चाहिए।

(क) अनुप्रास के दोष

अनुप्रास अलंकार के मुख्य तीन दोष हैं—(१) प्रसिद्धाभाव, (२) वैफल्य और (३) वृत्ति-विरोध।

(१) प्रसिद्धाभाव

दो०—अप्रमान बातैं कहै, अनुप्रास के हेत।
दोष प्रसिद्धाभाव तेहि, भाषैं सुकबि सचेत॥

१—कवित्त—रबिजा कहे ते रन जीते जाम जारि जारि,
यमुना कहे ते यमुना के होत हेर[1] बिन।
भानु होति कीरति प्रभानु के परमपुँज,
भानुतनया के कहे ते ही फेर फेर बिन॥
'ग्वाल कबि' मंजु मारतंड-नंदिनी के कहे,
महिमा महा में होत दीनन के टेर बिन।

१ देखना।

दरि जात दारिद दिनेसतनया के कहे;
कहत कलिन्दी के कन्हैया होत देर बिन ॥

इसमें श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है। यमुना की महिमा से यद्यपि सब कुछ हो सकता है, तो भी 'रविजा' कहने से 'रण जीते', 'यमुना' कहने से 'यम' के नाके बंद हो जायँ, 'भानुतनया' कहने से 'भानु हो जाय', 'मारतंडनन्दिनी' कहने से 'महिमा बढ़ै' 'दिनेशतनया' कहने से 'दारिद दूर हो जाय' और 'कालिंदी' कहने से 'कन्हैया हो जाय' इन बातों का कोई प्रमाण नहीं है। कवि ने केवल अनुप्रास के हेतु ही ऐसा कहा है। अतः यह प्रसिद्धभाव दोष है।

(२) वैफल्य

चमत्कार का होय अभाव। तेहि वैफल्य कहैं कबिराव ॥

१—सवैया

का 'सरदार' कहौं तोहि सों सरदार सबै सरदार सचा हैं।
सासन सासन सासन में हम सासन सासन सासन चाहैं।
काननदी ननदी ननदीं ननदी ननदी जु न दीन दचा हैं।
का बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा वलमा हैं।

यहाँ वाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र है। अतः अनुप्रास व्यर्थ वा विफल है। ऐसे विफल अनुप्रास 'ग्वाल' और 'पजनेश' कवि की कविता में बहुधा पाये जाते हैं।

(३) वृत्ति-विरोध

उपनागरिकादि वृत्तियों के नियम विरुद्ध वर्णविन्यास को वृत्तिविरोध दोष कहते हैं।

१—दो०—पंचवटी गुनगन जटी, ठटनि ठटी नटरास।
अघट घटी दुख सुख पटी, कुटी करो तहँ बास ॥

२—सवैया

एक घटी न घटी सिय के दुख राम रहे मुनि के निकटी[१]।
घट के सुत[२] सो हित नारि जटी मनु धूरजटी[३] नहीं काम छटी[४] ॥
दुपटी फटि जात जहाँ तम की प्रगटी घट में गुरु ज्ञान गटी।
कहिंये कहुँ मुक्ति हटी बरटी[५] जहँ पर्नकुटी रघुनाथ ठटी ॥

३—दो०—तौ लगि या मन-सदन महँ हरि आवैं केहि बाट।
निपट विकट जौ लौं जुटे खुलैं न कपट-कपाट ॥

४—सवैया

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी, न रहैं जहँ एक घटीं[६]।
निघटी रुचि मीचु[७] घटी हुँ घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी[८]।
अघ-ओघ की बेरी[९] कटी विकटी निकटी प्रगटी गुरुज्ञान गटी[१०]।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटीबन पंचबटी ॥

यह शांत-रस संबंधी कविता 'कोमला' वृत्ति में होनी चाहिये थी, सो 'परुषा' वृत्ति में की गई है। 'राम' कवि कृत हनुमन्नाटक में ऐसी कविता बहुत है।

सूचना—'पजनेश' की कविता में यह दोष प्रायः पाया जाता है। इस कवि ने शृङ्गार वर्णन में परुषा वृत्ति टवर्गी अक्षरों का बहुतायत से प्रयोग किया है।

(ख) यमक का दोष

यमकालंकार के नियमानुसार यमक किसी छंद के एक चरण वा दो चरणों में वा चारों चरणों में होना चाहिये। इसके विरुद्ध यदि तीन चरणों में यमक हो तो 'अप्रयुक्त' दोष कहलाता है।

१—दो०—तो पर वारौं उरबसी[११], सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी[१२], ह्वै उर बसी[१३] समान ॥

---

१ पास। २ घड़े से उत्पन्न (अगस्त्य)। ३ महादेव। ४ छटा, शोभा। ५ बेचारी। ६ बड़ी। ७ मृत्यु। ८ ध्यान। ९ बेड़ी। १० गठरी। ११ अप्सरा। १२ हृदय में बस गई है। १३ पदिक; धुकधुकी।

यहाँ 'उरबसी' शब्द का यमक केवल तीन चरणों में है! अतः अप्रयुक्त दोष है।

२—दो०—बानीरूप अनूप बर, बरन बाम[1] ते बाम[2]।
कहैं बाम बिधि[3] बिधि करी[4], बामदेव[5] धनु बाम[6]॥

यहाँ बाम शब्द का यमक भी तीन ही चरणों में है। अतः अप्रयुक्त दोष है।

(२) अर्थालंकारों के दोष

(क) उपमा के दोष

अर्थालंकारों में मुख्य 'उपमा' अलंकार है। अतः इसके दोषों को भली भाँति समझ लेना चाहिए। उपमालंकार में मुख्यतः ६ दोष माने गए हैं। यथा—

(१) न्यूनता

जहाँ उपमेय से उपमान की न्यूनता दर्शित हो, उसे न्यूनता दोष कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—(क) जातिगत (ख) प्रमाणगत, (ग) धर्मगत।

(क) जातिगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—चतुर सखिन के मृदु बचन, बासर[7] जाय बिताय।
पै निसि में चंडाल लौं, मारत यह ससि आय।

यहाँ चंद्रमा का उपमान चांडाल कहा गया है। यह जाति गत न्यूनता दोष है।

(ख) प्रमाणगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—सोहत अग्नि-फुलिंग लौं, यह रबिरथ नभ थान।

१ श्रेष्ठ वर्णवाली स्त्रियाँ। २ बाएँ। ३ टेढ़ी रीति। ४ ब्रह्मा। ५ महादेव ६ टेढ़ा धनुष। ७ दिन।

यहाँ सूर्य के रथ को अग्नि की चिनगारी की उपमा दी गई है। यह बड़ी वस्तु की छोटी वस्तु से उपमा है। इसी को प्रमाणगत न्यूनता कहते हैं।

(ग) धर्मगत न्यूनता का उदाहरण

१—दो०—कृस्न-अजिन[१] पट लसत मुनि, सुचि मौंजी युत[२] गात।
नील मेघ के निकट जिमि, नभ दिनमनि बिलसात॥

यहाँ मुनि उपमेय के काली मृगछाला रूप धर्म के लिए तो सूर्य उपमान के नीलमेघ की निकटता रूप धर्म कहा गया है, परंतु मौंजी के समान दूसरा धर्म बिजली और भी कहना चाहिए था, सो नहीं कहा गया। यही धर्मगत न्यूनता दोष है।

(२) अधिकता

जहाँ उपमेय से उपमान की अधिकता प्रदर्शित हो, वहाँ 'अधिकता' नामक दोष होता है। न्यूनता की तरह अधिकता भी तीन भाँति की है—

(क) जातिगत अधिकता

१—दो०—कमलासन[३] आसीन यह, चक्रवाक बिलसाहि।

यहाँ चक्रवाक की उपमा ब्रह्मा से दी गई है। यह अधिकता दोष है। नीच पत्ती की उपमा अति उच्च देयता से ठहराना केवल हास्यास्पद है।

(ख) प्रमाणगत अधिकता

जहाँ किसी छोटे उपमेय की उपमा अत्यंत बड़े और भद्दे उपमान से दी जाय। जैसे—नख की उपमा खोंड़े से व दाँत की उपमा बज्रशिला से।

---

१ मृगचर्म। २ मूँज की कर्धनी। ३ कमल का आसन, ब्रह्मा।

(ग) धर्मगत अधिकता

१—दो०—लसत पीतपट चाप[1]-कर, मनहर बपु घनस्याम।
तड़ित इंद्रधनु ससि सहित, ज्यों निसि में घनस्याम॥

यहाँ उपमेय श्रीकृष्ण के पीताम्बर तथा धनुष के स्थान पर उपमान नीलघन बिजली तथा इंद्रधनुष सहित कहा गया सो ठीक है, किंतु उपमान चंद्र सहित कहा गया है इसके जोड़ की वस्तु (शंख) उधर कृष्ण के पास कथन नहीं की गई, अतः उपमान में अधिकता है।

(३) लिंग-भेद और (४) बचन-भेद

१—दो०—कहे जायँ कहु कौन बिधि, या नृप के गुन कूल[2]।
मधुरे बच हैं दाख[3] लौं चरित चाँदनी-तूल[4]॥

यहाँ उपमेय 'बच' एक बचन पुल्लिंग और क्रिया बहु वचन है। 'दाख' उपमान स्त्री लिंग और एकवचन है। 'चरित' पुलिंग है। यह अनुचित है। अतः दोषरूप है।

२—सवैया

दैत[5] समान लगै अति दारुन चैत की चाँदनी रामै सिया बिन।

३—दो०—मनमोहन तन घनसघन, रमनि राधिका मोर।
श्रीराधामुख-चंद को गोकुलचंद चकोर॥

यहाँ 'राधिका' स्त्रीलिंग के लिए 'मोर' पुलिंग की उपमा अनुचित है।

(५) काल भेद

उपमेय के साथ और काल की क्रिया लाना, उपमान के साथ और काल की। यथा—

१—दो०—रन में इमि सोभित भये, राम बान चहुँ ओर।
जिमि निदाघ मध्यान में, नभ रबि-कर खर घोर॥

१ धनुष। २ सब। ३ मुनक्का। ४ समान। ५ राक्षस।

इसमें 'रामबान इमि सोभित भये' (भूतकालिक क्रिया) और 'जिमि रबि-कर मध्यान में होते हैं' (वर्त्तमानकालिक क्रिया का अध्याहार) अनुचित होने से दोषरूप है।

(६) पुरुष भेद

जहाँ उपमेय को और पुरुष में और उपमान को और पुरुष में कहैं। यथा—

१—दो०—राजत हौं प्यारी! रुचिर पट कुसुंभ[1] तनु धारि।
लाल सुबाल प्रबालतरु-प्रभव[2] लता अनुहारि॥

यहाँ 'प्यारी' उपमेय 'मध्यम पुरुष' में और 'लता' उपमान 'अन्य पुरुष' में है। यह अनुचित होने से दोषरूप है।

(७) विधिभेद

जहाँ उपमेय और उपमान की विधि न मिले। जैसे—

१—दो०—नृप तव कीरति सम सदा, दिनकर करै प्रकास।

सूर्य स्वयं ही सदा प्रकाशमान है। कीर्ति सम प्रकाशित हो, ऐसा कथन नितांत असंगत है।

(८) अप्रसिद्धि

ऐसी उपमा देना जैसी लोक में प्रसिद्धि न हो। जैसे—

१—दो०—काव्य-चंद्र रचना करत, अर्थ किरन युत चारु।

काव्य को चंद्र और अर्थ को किरण कहना अप्रसिद्धि दोष है। इसे 'असादृश्य' भी कहते हैं।

(९) असम्भव

१—दो०—धनु-मंडल सों परत है, दीपत सर खर-धार।
ज्यौं रबि के परिवेष तें, परत ज्वलित जलधार॥

यहाँ धनुष से छूटे हुए दीप्तिमान बाणों को सूर्यमंडल से गिरती हुई ज्वलित जल-धाराओं की उपमा दी जाने के असंभव दोष है, क्योंकि ऐसा संभव ही नहीं है।

१ वासंती। २ मूँगे के वृक्ष से उत्पन्न।

(२) उत्प्रेक्षा के दोष

(क) 'उत्प्रेक्षा' में मनु, जनु, मानो, जानो, ध्रुव, खलु, इव, शब्दों से ही संभावना स्फुरित हो सकती है, 'यथा' ज्यौं शब्दों से नहीं। अतः उत्प्रेक्षा में 'ज्यौं' वा 'यथा' बाचक लाना दोष है। इसे 'अबाचकता' दोष कहते हैं।

(ख) उत्प्रेक्षा के समर्थन को अर्थांतरन्यास का कथन करना दूसरा दोष है जिसे 'अनुचितार्थता' दोष कहते हैं। जैसे—

१—दो०—रक्षत हिमगिरि तमहिं मनु, गुफा लीन रवि भीत।
सरनागत छोटेहु पर, करत बड़े जन प्रीत॥

यहाँ अचेतन 'तम' को सूर्य से भय होना ही संभव नहीं फिर हिमगिरि कृत रक्षा कैसी ? तिसपर तुर्रा यह कि अर्थांतरन्यास से उसी असंभव बात की पुष्टि करना मानो बिना आधार के चित्र खींचना है।

(३) समासोक्ति का दोष

'समासोक्ति' अलंकार में समान विशेषणों द्वारा ही उपमान विशेष्य का प्रकाशन होता है, उसके लिए उपमान वाचक पद कहना एक दोष है, जिसे 'पुनरुक्तता' वा अपुष्टार्थता, कहते हैं। जैसे

१—दो०—परस करत रबिकरन[१] दिसि, लखि उर ताप जुआन[२]।
कामिनि अरु चिर दिवस-श्री, ग्रहन कियो बहु मान॥

यहाँ सूर्य और दिशा के वर्णन मात्र से नायकत्व और नायिकत्व (पुल्लिंगता और स्त्रीलिंगता) प्रगट ही हो जाती है, फिर अप्रस्तुत का नायिकत्व प्रगट करने के लिए 'कामिनी' शब्द का कथन नितांत निष्प्रयोजनीय है।

(४) अन्योक्ति का दोष

इस अलंकार में भी समान विशेषणों से प्रस्तुत प्रगटहो जाता है। उसके लिए कोई वाचक शब्द लाना पुनरुक्ति दोष है।

१ किरन, हाथ। २ अन्न।

जातीय गान

बंदौं श्रीभरत-भूमि सर्व-सेव्य माता ।
चंदन-सम ताप हरनि, सस्यपूर्न स्याम-बरनि,
बिपुल-सुजल-सुफल-धरनि, धवल-सुजस-ख्याता,
हिम-गिरि के तुंग-शृंग[1], क्रीट-मुकुट-उत्तमंग[2],
युगल-बाहु कच्छ-बंग, अभय-बर-प्रदाता ।
सिंधु-ब्रह्मपुत्र-भेस, लहरैं युग-ओर-केस,
बदरी-बन मन सुवेश, बिमल-बुद्धि खाता ।
मध्यदेश मध्यदेश[3], बिंध्या कटि-पट-सुवेश,
उदर बार-बरार-देश, मदन लखि सिहाता ।
पूर्बी-पश्चिमी-घाट, युगल-जंघ जानु-ठाट,
सिंहलहू निज ललाट, चरन पै नवाता ।।
गंगा-जमुना-सुढार, पुष्टिप्रदा दुग्ध-धार,
छुवत पियत एक बार, जम-भय भगि जाता ।
चंद-ज्योति मुख-विकास, कुंद-कुमुद-सुमन हास,
खग-रव बानी-बिलास, सुखद-बरद-माता ।।
अतुल-अमल-रम्य-रूप, सफल सजल-बाग-कूप,
भव्य-दिव्य-छबि अनूप, नमो-नमो माता ।।
बन्दौं श्री भरत-भूमि सर्व-सेव्य माता ।

---

१ चोटी । २ सिर । ३ कमर ।

चंद-ज्योति मुख-विकास, कुंद-कुमुद-सुमन हास,
खग-रव बानी-बिलास, सुखद-बरद-माता ॥
अतुल-अमल-रम्य-रूप, सफल सजल-बाग-कूप,
भव्य-दिव्य-छबि अनूप, नमो-नमो माता ॥
बन्दौं श्री भरत-भूमि सर्व-सेव्य माता ॥